वंदना पथ

प्रस्तुति

श्रुतसंवेगी श्रमण आदित्यसागर

वंदना पथ

प्रस्तुति

श्रुतसंवेगी आदित्यसागर मुनि

प्रकाशक

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे

आशीषानुकंपा : शताब्दी देशनाचार्य 108
श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज
कृति : वंदना पथ
प्रस्तुति : श्रुतसंवेगी श्रमण आदित्यसागर जी मुनिराज
सम्पादन : श्रुतप्रिय श्रमण अप्रमितसागर जी मुनिराज
सहयोग : श्रमणरत्न सहजसागर जी मुनिराज
संस्करण : तृतीय (वर्ष 2023)
प्रतियाँ : 500
प्रकाशक एवं : समर्पण समूह, भारत
प्राप्ति स्थान : 91790-50222-भोपाल
98276-07171-जबलपुर
98260-10104-इन्दौर
94253-16840-इन्दौर
63766-49881-भीलवाड़ा (राज.)
आकल्पन : जैन राजेश कानूगो
मुद्रक : डीसेन्ट ग्राफिक्स, इंदौर
मो. 98260-14047

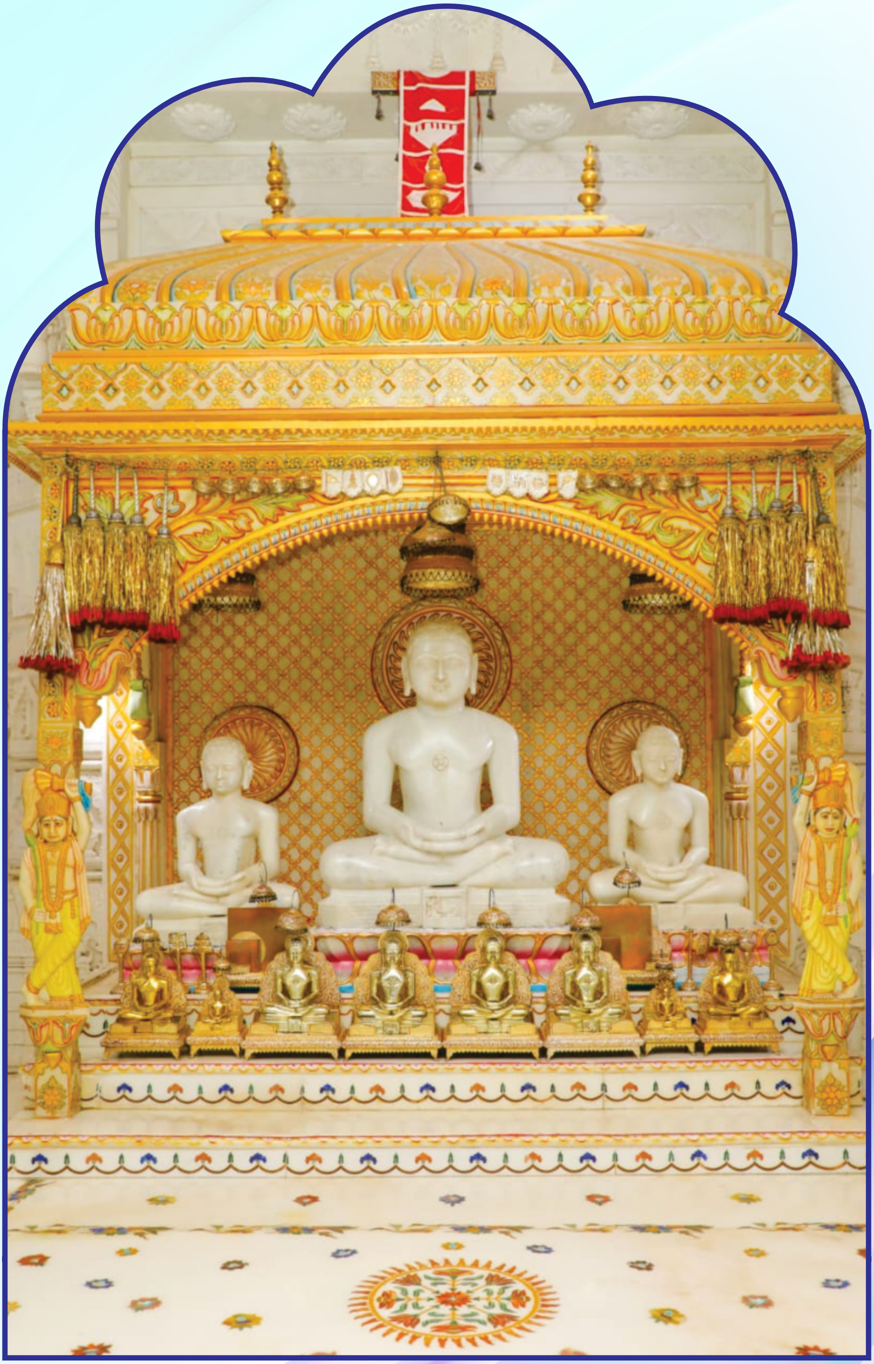

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर
आर.के. कॉलोनी, भीलवाड़ा (राज.)

पावन आशीर्वाद

परम पूज्य अध्यात्म योगी, चर्या शिरोमणि आचार्य रत्न, शताब्दी देशनाचार्य

श्री 108 विशुद्धसागरजी महाराज

पावन आशीर्वाद

श्रुतसंवेगी श्रमण मुनिश्री 108
आदित्यसागर जी महाराज

श्रुतप्रिय श्रमण मुनिश्री 108
अप्रमितसागर जी महाराज

सहजानंदी श्रमण मुनिश्री 108
सहजसागर जी महाराज

मंगलाशीष

पूर्व संचित अशुभ कर्मों के क्षय का प्रबल कारण पंचपरमेष्ठी की भक्ति है जो भव्यवर श्रीजिनभक्ति में लीन रहता है उसके अशुभकर्म प्रकृतियों की संवर-निर्जरा भी होती है यथायोग्य तथा शुभास्रव भी होता है।

भव्य चरम-शरीरी के लिए जिन-भक्ति मुक्ति का कारण है अर्थात् निःश्रेयस सुख-प्रदायिनी है, अचरम-शरीरी के लिए भक्ति भुक्ति प्रदायिनी है अर्थात् अभ्युदय-सुख देने वाली है। साक्षात् फल संक्लेशता से रहित विशुद्धि का रसपान कराने वाली द्वैत-अद्वैत भक्ति है।

इसी भावना के युक्त, श्रमण संस्कृति के परमोपासक मुनिवर श्री आदित्यसागर जी ने ''वन्दना पथ'' कृति का सम्यक्-संकलन कर भव्यों को कल्याण मार्ग का पथ दिखलाया है। श्री जिनवाणी की सेवा के लिए उन्हें शुभाशीष...।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

पावन वर्षायोग
18/08/2019
भिण्ड (म.प्र.)

आचार्यश्री विशुद्धसागर जी

शुभेच्छा

भारतीय तत्त्ववाङ्मय में श्रमण-संस्कृति का तत्त्ववाङ्मय अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस महान् संस्कृति में जहाँ आचार-शुद्धि का विशद महत्त्व है, वहीं विचार-शुद्धि और शाब्दिक-शुद्धि का भी अपना महत्त्व है। इस त्रिविध शुद्धि के आधार-भूत वाङ्मय/ग्रन्थ का विपुल-प्रचय जिनशासन में संप्रति भी समुपलब्ध है।

श्रुतधराचार्य-भगवन्तों ने अपनी मोक्षप्रदायिनी, शिवसुखदायिनी साधना के बहुमूल्य समय और शुभोपयोग का समावेश करके अकथनीय अनुभव, गुरु-परंपरा से संप्राप्त संज्ञान, आप्तकथितागम, अकाट्यतर्क और युक्त्यादि के सुसाधनों के माध्यम से विविध-विधाओं में समीचीन-वाङ्मय का सृजन किया। जिसमें समयसार-भूत श्रमणवृन्दों एवं समयसारोपासक-भूत श्रावकयूथ के लिए शब्दागम, तर्कागम और परमागम मिश्रित सिद्धान्त, नय-न्याय, प्रमाण-व्याख्या, अध्यात्म, भक्ति, पूजन, व्याकरण, छंद-अलंकार, कथावस्तु, उपासकाध्ययन, श्रमणाचार, नाट्यकथा, ज्योतिष, यंत्र-मंत्र-तंत्र विद्या प्रभृति वाङ्मय पठनीय, धारणीय और अनुकरणीय है।

जिनवाणी के माध्यम से जिनदेव की साक्षात् वाणी का रसास्वादन होता है, जिससे साम्यपरिणति का प्रादुर्भाव होता है। आगम में भी कहा है- "शास्त्रों का अध्ययन ही ध्यान है। इसी अध्ययन से पंचेन्द्रिय और कषायों का निग्रह होता" अत एव इस पंचमकाल में प्रकृष्टवचनों का/जिनागम का नित प्रति अभ्यास करणीय है।

भव्यजीव शुद्धात्मरसालुता के अभाव के कारण इस अपारासार भवकानन में अनादिकाल से विषयाकांक्षा का दास बनकर पंच परावर्तन में परिभ्रमण करता रहता है, परन्तु जब पुण्य-योग से गुरुचरणशरण की सन्निधि की लब्धि और स्वात्मकल्याण की अंतरंग में ललक जागृत होती है

तब कहीं जाकर के भव्य जीव के आगमाध्ययन और श्रुताराधना की ओर अभिमुखता होता है।

श्रुताराधना और आत्मभावना के प्रति अभिमुख हुए भव्यवरपुण्डरीक जीवों के अभ्यासार्थ, ज्ञानवर्धनार्थ एवं शुद्धोच्चारणार्थ प्रस्तुत है 'वंदना-पथ'। यह कृति सुव्यवस्थित, संशुद्ध एवं सर्वोपयोगी सिद्ध होगी ऐसी मेरी संकल्पना है। बृहद्कृत्यों में त्रुटियाँ होना कोई बड़ी बात नहीं है; अस्तु विद्वद्वर्ग इस कृति में उत्पन्न हुई त्रुटियों को विशुद्ध करके पठन-पाठन कराएँ एवं सूचित भी करें। अंत में जिन्होंने मुझे रत्नत्रयस्वरूप प्रदान किया उन रत्नत्रयचूड़ामणि गुरुदेव के कर पद्मों में यह कृति सभक्ति समर्पित करता हूँ।

॥ णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥

क्षायिकसुखाभिलाषी
श्रुतसंवेगी आदित्यसागर मुनि

वात्सल्य वर्षायोग
18/08/2019
मोराजी, सागर

सुमंगलभावना

वंदना पथ पर चल रहे जो
होती है उनकी ही वंदना,
और करते वंदना जो
होती उनकी कर्मों की खंडना,
वंदना के भाव न रख
कर प्रभु की वंदना,
स्वीकार करके ''वंदना पथ''
कर प्राणी, कर्मों की खंडना,
हे चेतन! होगी निश्चित हर पथ पर
तेरी भी वंदना ही वंदना !!!

भारतीय श्रमण-संस्कृति में नानाविध ग्रन्थों का सृजन हुआ, जिसमें केवल स्वात्मकल्याणार्थ शब्दब्रह्म की संरचना हुई। जब अशुद्धजीवात्मा शब्दब्रह्म का समाश्रय प्राप्त करके आत्मब्रह्म की ओर द्रुतगति से गतिमान होता है तब वही अशुद्धजीवात्मा शब्दब्रह्म को तजकर निजात्मब्रह्म में संस्थित निजशुद्धजीवात्मा का आश्रय प्राप्त करके निजात्मा से निजात्मा की वंदना करके ''**वंदना पथ**'' को संप्राप्त बनाता है।

व्यवहार वंदनार्थ निश्चयानुरागी जीवों के लिए प्रस्तुत है ''**वंदना पथ**'' कृति। प्रस्तुत कृति **श्रमणरत्न मुनि श्री आदित्यसागर जी** के सुश्रम का ही प्रतिफल है। इस कृति के संकलन, संपादन एवं समायोजन के माध्यम से मुनिश्री ने स्वतत्त्वकल्याण तो किया ही है, साथ ही साथ सर्वमानवकल्याणार्थ, जीव मात्र के हितार्थ सरस्वती के कोश को संवर्धित करके अमूल्य योगदान भी दिया है। उनके इस समुपक्रम से युगों-युगों तक मानवकल्याण का पथ प्रशस्त रहेगा।

मेरा यह परमाहोभाग्य है कि इस ''**वंदना पथ**'' कृति का पूर्णावलोकन करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। मैं उनके इस कृत्य के प्रति कृतज्ञ हूँ, नतमस्तक हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह अपूर्वकृति सर्वात्मरसिक मुमुक्षु-आत्माओं को अपूर्वानन्द प्रदान करके आत्मशोध का कारण बनेगी और उनका वंदना पथ प्रशस्त करेगी।

॥ विशुद्धात्मने नमः ॥

वात्सल्य वर्षायोग
18/08/2019 **श्रमण अप्रमितसागर मुनि**
मोराजी, सागर

विषयानुक्रम

(खण्ड -1)

1.	णमोकार महामंत्र	01
2.	त्रिकालवर्ती व विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों के नाम	03
3.	जाप्यमाला	04
4.	सुप्रभात- स्तोत्रम्	05
5.	लघुस्वयंभू-स्तोत्रम्	10
6.	महावीराष्टक-स्तोत्रम्	19
7.	भक्तामर-स्तोत्रम्	23
8.	विषापहार-स्तोत्रम्	45
9.	एकीभाव-स्तोत्रम्	60
10.	सरस्वती-नाम-स्तोत्रम्	74
11.	गोम्मटेस-स्तोत्रम्	76
12.	गणधर-वलय-स्तोत्रम्	79
13.	उवसग्गहर-थोत्तं	87
14.	कम्मरोग-हरं थोत्तं	89
15.	आदिवीर-शंकर स्तुतिः	90

(खण्ड-2)

16.	आलोचना पाठ	101
17.	मेरी भावना	104
18.	बारह भावना (लघु)	106
19.	बारह भावना (बृहद्)	107
20.	वैराग्य भावना	112
21.	समाधि भावना	115

22. समाधि भक्ति 115
23. छहढाला 118
24. सामायिक पाठ (संस्कृत) 133
25. सामायिक पाठ (हिन्दी) 136
26. श्रावक प्रतिक्रमण 139
27. आचार्य वंदना 145
28. आरती 148
29. सामायिक विधि 149

(खण्ड-3)

30. विनय पाठ (पूजन विधि) 151
31. श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन 158
32. श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन 162
33. श्री सोलहकारण पूजन 165
34. श्री पंचमेरु पूजन 168
35. श्री दशलक्षण-धर्म पूजन 172
36. निर्ग्रन्थ गुरु पूजन 178
37. अर्घ्यावलि 183
38. शान्तिपाठ 191

(खण्ड-4)

39. तत्त्वार्थसूत्रम् 193
40. इष्टोपदेशः 316
41. दव्वसंगहो 332
42. स्वरूप-संबोधनम् 350
43. प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका 357
44. जिन-जिनवाणी (भजन) 365

(खण्ड–1)

णमोकार मंत्र

णमो अरहंताणं,
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं॥

---अर्थ---

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो,
आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो,
लोक के सभी साधुओं को नमस्कार हो।

❋ ❋ ❋

णमोकार मंत्र का महत्त्व

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं।।

---अर्थ---

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है, सब मंगलों में पहला मंगल है। इसके पढ़ने से हर प्रकार का मंगल होता है।

श्री भूत, भविष्यत्, वर्तमान विदेहक्षेत्रस्थतीर्थंकराः

क्र.	भूतकालीन तीर्थंकराः	वर्तमानकालीन तीर्थंकराः	भविष्यकालीन तीर्थंकराः
1.	श्री निर्वाण जी	श्री ऋषभनाथ जी	श्री महापद्म जी
2.	श्री सागर जी	श्री अजितनाथ जी	श्री सुरदेव जी
3.	श्री महासाधु जी	श्री संभवनाथ जी	श्री सुपार्श्व जी
4.	श्री विमलप्रभ जी	श्री अभिनन्दन जी	श्री स्वयंप्रभ जी
5.	श्री धर जी	श्री सुमतिनाथ जी	श्री सर्वात्मभूत जी
6.	श्री सुदत्त जी	श्री पद्मप्रभ जी	श्री देवपुत्र जी
7.	श्री अमलप्रभ जी	श्री सुपार्श्वनाथ जी	श्री कुलपुत्र जी
8.	श्री उद्धर जी	श्री चन्द्रप्रभ जी	श्री उदंक जी
9.	श्री अंगिर जी	श्री पुष्पदंत जी	श्री प्रोष्ठिल जी
10.	श्री सन्मति जी	श्री शीतलनाथ जी	श्री जयकीर्ति जी
11.	श्री सिंधु जी	श्री श्रेयांसनाथ जी	श्री मुनिसुव्रत जी
12.	श्री कुसुमांजलि जी	श्री वासुपूज्य जी	श्री अर (अप्तम) जी
13.	श्री शिवगण जी	श्री विमलनाथ जी	श्री निष्पाप जी
14.	श्री उत्साह जी	श्री अनन्तनाथ जी	श्री निष्कषाय जी
15.	श्री ज्ञानेश्वर जी	श्री धर्मनाथ जी	श्री विपुल जी
16.	श्री परमेश्वर जी	श्री शान्तिनाथ जी	श्री निर्मल जी
17.	श्री विमलेश्वर जी	श्री कुन्थुनाथ जी	श्री चित्रगुप्त जी
18.	श्री यशोधर जी	श्री अरनाथ जी	श्री समाधिगुप्त जी
19.	श्री कृष्णमति जी	श्री मल्लिनाथ जी	श्री स्वयंभू जी
20.	श्री ज्ञानमति जी	श्री मुनिसुव्रतनाथ जी	श्री अनिवर्तक जी
21.	श्री शुद्धमति जी	श्री नमिनाथ जी	श्री जय जी
22.	श्री भद्र जी	श्री नेमिनाथ जी	श्री विमल जी
23.	श्री अतिक्रांत जी	श्री पार्श्वनाथ जी	श्री देवपाल जी
24.	श्री शान्त जी	श्री वर्द्धमान जी	श्री अनन्तवीर्य जी

विदेहक्षेत्रस्थ विंशति तीर्थंकरा:

1. श्री सीमंधर जी, 2. श्री युगमंधर जी, 3. श्री बाहु जी, 4. श्री सुबाहु जी, 5. श्री सुजातजी, 6. श्री स्वयंप्रभु जी, 7. श्री वृषभानन जी, 8. श्री अनन्तवीर्य जी, 9. श्री सूरप्रभ जी, 10. श्री विशालकीर्ति जी, 11. श्री वज्रधर जी, 12. श्री चंद्रानन जी, 13. श्री भद्रबाहु जी, 14. श्री भुजंगम जी, 15. श्री ईश्वर जी, 16. श्री नेमप्रभ (नेमि) जी, 17. श्री वीरसेन जी, 18. श्री महाभद्र जी, 19. श्री देवयश जी, 20. श्री अजितवीर्यांश्चेति विदेहक्षेत्रस्थविंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

卐 卐 卐

दशलक्षण जाप्य मंत्र	षोडशकारण जाप्य मंत्र
ॐ ह्रीं उत्तम क्षमा-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं दर्शन-विशुद्धि-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम मार्दव-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं विनय-संपन्नता-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम आर्जव-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं शीलव्रतेष्वनतिचार-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम शौच-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम सत्य-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं संवेग-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम संयम-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं शक्तितस्त्याग-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम तप-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं शक्तितस्तपो-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम त्याग-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं साधुसमाधि-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम आकिञ्चन्य-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं वैयावृत्यकरण-भावनायै नमः।
ॐ ह्रीं उत्तम ब्रह्मचर्य-धर्मांगाय नमः।	ॐ ह्रीं अर्हं अर्हद्भक्ति-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं आचार्य-भक्ति-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं बहुश्रुत-भक्ति-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं प्रवचन-भक्ति-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं आवश्यकापरिहाणि-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं मार्गप्रभावना-भावनायै नमः।
	ॐ ह्रीं अर्हं प्रवचन-वत्सलत्व-भावनायै नमः।

卐 卐 卐

नन्दीश्वर व्रत (अष्टाह्निका व्रत) जाप्य मंत्र

1. ॐ ह्रीं नन्दीश्वर संज्ञाय नमः।
2. ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूति संज्ञाय नमः।
3. ॐ ह्रीं त्रिलोकसार संज्ञाय नमः।
4. ॐ ह्रीं चतुर्मुख संज्ञाय नमः।
5. ॐ ह्रीं पंचमहालक्षण संज्ञाय नमः।
6. ॐ ह्रीं स्वर्गसोपान संज्ञाय नमः।
7. ॐ ह्रीं सिद्धचक्र सज्ञाय नमः।
8. ॐ ह्रीं इन्द्रध्वज संज्ञाय नमः।

卐 卐 卐

लघु शांतिमंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

卐 卐 卐

रत्नत्रय जाप्यमंत्र

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः।

卐 卐 卐

सरस्वती मंत्र

ॐ अर्हन्मुख कमलवासिनी पापमल क्षयंकारी श्रुत ज्ञान ज्वाला सहस्र प्रज्वलिते सरस्वती मम पापं हन हन दह दह क्षां क्षी क्षूं क्षौ क्षः क्षीरवर धवले अमृतं संभवे अमृतं स्रावयं वं वं हूँ फट् स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं हंसवाहिनी मम जिह्वाग्रे आगच्छ आगच्छ स्वाहा।

ॐ ह्रीं वद् वद् वाग्वादिनी नमः।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

सुप्रभात-स्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञान-प्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाण-गमोत्सवे जिनपते: पूजाद्भुतं तद्भवै:,
संगीत-स्तुति- मंगलै: प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सव:॥ 1 ॥

अर्थ :- श्री जिनेश के स्वर्ग से माता के गर्भ में आने के समय किए गए उत्सव में, जन्माभिषेक के समय किए गए उत्सव में, दीक्षाग्रहण करने के समय किए गए व में, केवलज्ञान प्रगट होने के समय किए गए उत्सव में एवं मोक्ष प्राप्ति के समय किए गए उत्सव के प्रसंग पर श्री जिनेन्द्र भगवान् की जो आश्चर्यकारी पूजा हुई, उसी प्रकार मंगलरूप गायन और स्तुति से मेरा प्रातःकाल का भी उत्सव हो॥ 1 ॥

श्रीमन्नतामर - किरीटमणि - प्रभाभि-
रालीढ - पाद - युग - दुर्द्धर - कर्म - दूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! सम्भवाख्य!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ 2॥

अर्थ :- अणिमादि विभूति युक्त और नम्रित देवों के मुकुटों की मणियों की कान्ति से जिनके दोनों चरण स्पर्श किए गए तथा जिन्होंने दुर्धर कर्मों को दूर कर दिया, ऐसे हे आदिनाथ! अजितनाथ! और सम्भवनाथ भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय हमेशा आपके ध्यान में व्यतीत हो॥2॥

छत्रत्रय - प्रचल - चामर - वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र !
पद्म-प्रभा-रुण-मणि-द्युति-भासुरांग!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ 3 ॥

अर्थ :- जिनके मस्तक पर तीन छत्र सुशोभित होते हैं तथा जिनके दोनों पार्श्व में चौंसठ चमर ढुरते हैं, ऐसे हे अभिनन्दन! और सुमतिनाथ

जिनेन्द्र! तथा पद्मराग मणि की कान्ति के समान जिनका शरीर सुशोभित होता है, ऐसे हे पद्मप्रभ भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय सर्वदा आपके ध्यान में व्यतीत हो॥ 3॥

अर्हन् सुपार्श्व! कदलीदल- वर्णगात्र!
प्रालेय-तार-गिरि-मौक्तिक-वर्णगौर!
चन्द्रप्रभ! स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ 4॥

अर्थ :- केले के पत्ते के समान जिनके शरीर का रंग है ऐसे हे सुपार्श्व जिन! तथा हिमालय पर्वत, चाँदी के विजयार्ध पर्वत और मोती के समान जिनके शरीर का शुभ्र वर्ण है, ऐसे हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! तथा स्फटिक मणि के समान निर्मल कान्ति के धारक ऐसे हे पुष्पदन्त भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय सर्वदा आपके ध्यान में व्यतीत हो॥ 4॥

सन्तप्त - काञ्चन - रुचे! जिनशीतलाख्य!
श्रेयान्विनष्ट - दुरिताष्ट - कलंक - पंक!
बन्धूक - बन्धुर - रुचे! जिनवासुपूज्य!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ 5॥

अर्थ :- तपाये हुए सोने के समान जिनके की कान्ति है, ऐसे हे शीतलनाथ भगवान्! पाप-स्वरूप आठ कर्म-रूपी कीचड़ जिन्होंने नष्ट कर दिया है, ऐसे हे श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र! तथा दुपारी के फूल के समान जिनके शरीर की कान्ति सुन्दर है, ऐसे हे वासुपूज्य भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय आपके ध्यान में सर्वदा व्यतीत हो॥ 5॥

उद्दण्ड - दर्प - करिपो विमलामलांग!
स्थेमन्ननन्तजिदनन्त - सुखाम्बुराशे!
दुष्कर्मकल्मष - विवर्जित धर्मनाथ !
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ 6॥

अर्थ :- उद्दण्ड ऐसे काम का नाश करने वाले तथा सुन्दर शरीर को धारण करने वाले हे विमलनाथ जिनेन्द्र! अनन्त सुख के समुद्र तथा स्थिर/धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तनाथ जिनेन्द्र! दुष्ट कर्म-रूपी मल से रहित ऐसे हे धर्मनाथ भगवान्! मेरा यह प्रातः काल का समय आपके ध्यान में सर्वदा व्यतीत हो ॥ 6 ॥

देवामरी - कुसुम - सन्निभ शान्तिनाथ!
कुन्थो दयागुणविभूषण - भूषितांग!
देवाधिदेव - भगवन्नर - तीर्थनाथ!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ 7 ॥

अर्थ :- अमरी नाम के फूल के समान जिनके शरीर का रंग है, ऐसे हे शान्तिनाथ भगवान्! दयारूपी भूषण से विभूषित है अंग जिनका ऐसे हे कुन्थुनाथ भगवान्! देवाधिदेव तथा तीर्थ के अधिपति ऐसे हे अरनाथ जिनेन्द्र! मेरा प्रातःकाल का समय आपके ध्यान में सर्वदा व्यतीत हो ॥ 7 ॥

यन्मोहमल्लमद - भञ्जन - मल्लिनाथ!
क्षेमंकरावितथ - शासन - सुव्रताख्य!
यत्सम्पदाप्रशमितो नमिनामधेय!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ 8 ॥

अर्थ :- मोह-रूपी मल्ल के मद को नाश करने वाले हे मल्लिनाथ भगवान्! कल्याणकारी और सत्य है शासन जिनका ऐसे हे मुनिसुव्रतनाथ भगवान्! उत्तम-परम वैराग्य सम्पत्ति से परम प्रशान्त अवस्था को प्राप्त ऐसे हे नमिनाथ भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय आपके ध्यान में सर्वदा व्यतीत हो ॥ 8 ॥

तापिच्छगुच्छ - रुचिरोज्ज्वल - नेमिनाथ!
घोरोपसर्ग - विजयिन्! जिनपार्श्वनाथ!
स्याद्वादसूक्ति - मणिदर्पण - वर्द्धमान!
त्वद्-ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥ 9 ॥

अर्थ:- तमाल वृक्ष के समुदाय के समान कान्ति को धारण करने वाले हे नेमिनाथ भगवान्! भयंकर उपसर्ग को सहन करने वाले ऐसे हे पार्श्वनाथ जिनेन्द्र! स्याद्वाद सूक्तिरूपी मणि के लिए दर्पण के समान ऐसे हे वर्द्धमान भगवान्! मेरा प्रातःकाल का समय आपके ध्यान में सर्वदा व्यतीत हो॥ 9॥

प्रालेयनील - हरितारुण - पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय - सुखावसथं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,
त्वद्-ध्यानतोऽस्तुसततं मम सुप्रभातम्॥10॥

अर्थ :- जिनके शरीर की कान्ति सफेद, नील, हरित, लाल और पीत (पीला) है, जो अविनाशी सुख के स्थान हैं तथा जिन एक सौ सत्तर (170) तीर्थंकरों का मुनीश्वर ध्यान करते हैं- ऐसे तीर्थंकरों के ध्यान में मेरा प्रातःकाल का समय सर्वदा व्यतीत हो॥ 10॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशति तीर्थाणां, सुप्रभातं दिने-दिने॥11॥

अर्थ :- चौबीस तीर्थंकरों का प्रातःकाल प्रत्येक दिन सबके लिए उत्तम नक्षत्र में तथा मंगल रूप एवं कीर्तन करने योग्य माना गया है॥ 11॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने-दिने॥ 12॥

अर्थ :- देवता, ऋषि और सिद्ध- ये प्रत्येक दिन के सुप्रभात रूप हैं और सुप्रभात उत्तम नक्षत्र रूप तथा उत्तम मंगल रूप माना गया है॥ **12**॥

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्य-सत्त्व-सुखावहम्॥ 13॥

अर्थ:-जिसने भव्यजीवों को सुख देने वाले तीर्थ को चलाया है, ऐसे महात्मा आदिनाथ भगवान् को ही प्रातःकाल उत्तम मानने योग्य हैं॥13॥

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलित-चक्षुषाम्।
अज्ञान-तिमिरान्धानां, नित्य-मस्तमितो रविः ॥ 14 ॥

अर्थः- जिन्होंने अपने केवलज्ञान के द्वारा दूसरे जीवों के चक्षु खोल दिए हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् का सुप्रभात, अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे पुरुषों के लिए शुभ हो अर्थात् ये संसारी अज्ञानी जन जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदेश किए हुए सन्मार्ग का आश्रय कर अपने अज्ञानान्धकार को दूर करें। यह दिखने वाला सूर्य हमेशा अस्त स्वरूप है अर्थात् यह सूर्य बाह्य प्रकाश देता है, तो भी अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करने में समर्थ नहीं है ॥ 14 ॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धा, शुक्ल-ध्यानोग्रवह्निना ॥ 15 ॥

अर्थः- कमल के समान जिनके नेत्र हैं, ऐसे जिन वीर भगवान् ने शुक्ल ध्यान रूपी उग्र वह्नि (अग्नि) से कर्म-रूपी जंगल जला दिया, उन वीर जिनेन्द्र का सुप्रभात सब के लिए हो ॥ 15 ॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम्।
त्रैलोक्यहित-कर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥ 16 ॥

अर्थः- तीन लोक का हित करने वाले जिनेन्द्र देव का शासन ही सुप्रभात रूप, नक्षत्र रूप, कल्याण रूप और मंगल स्वरूप है ॥ 16 ॥

॥ इति सुप्रभात-स्तोत्रम् ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

लघु स्वयंभू-स्तोत्रम्

उपजातिछन्दः

येन स्वयं बोधमयेन लोका, आश्वासिताः केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिताः केचन मोक्षमार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्॥ 1॥

अन्वयार्थ :- (स्वयं बोधमयेन) स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञान से **(येन)** जिन्होंने **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(वित्तकार्ये)** आजीविका के कार्यों में **(आश्वासिताः)** आश्वस्त/प्रोत्साहित किया **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(प्रबोधिताः)** प्रबुद्ध/जागृत किया; **(तम्)**; उन **(आदिनाथं)** आदिनाथ जिनेन्द्र को **(नित्यम्)** सदा **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम/नमस्कार करता हूँ।

इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्र-तोयैः, संस्नापितो मेरुगिरौ जिनन्द्रः।
यः कामनेता जनसौख्यकारी, तं शुद्ध-भावादजितं नमामि॥2॥

अन्वयार्थ :- (यः) जो **(कामजेता)** काम को जीतने वाले **(जन-सौख्यकारी)** प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने वाले **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् **(इन्द्रादिभिः)** इन्द्र आदि के द्वारा **(क्षीरसमुद्र-तोयैः)** क्षीरसागर के जल से **(मेरुगिरौ)** सुमेरुपर्वत पर **(संस्नापितः)** अभिषेक को प्राप्त हुए; **(तं)**; उन **(अजितम्)** अजितनाथ भगवान् को **(शुद्ध भावात्)** शुद्धभाव से **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन येन, निहत्य कर्म-प्रकृतीः समस्ताः।
मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं प्रपेदे, तं संभवं नौमि महानुरागात्॥3॥

अन्वयार्थ :- (येन) जिन्होंने **(ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन)** ध्यान के निरन्तर प्रभाव से **(समस्ताः कर्म-प्रकृतीः)** सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियों को **(निहत्य)** नष्ट करके **(मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं)** मोक्षस्वरूप पदवी/स्थान को **(प्रपेदे)** प्राप्त किया; **(तं)**; उन **(संभवं)** संभवनाथ जिनवर को **(महानुरागात्)** बड़े अनुराग से **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि-वह्नयन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं, नौमि प्रमोदादभिनन्दनं तम्॥ 4 ॥

अन्वयार्थ :- (**यदीया**) जिनकी (**जननी**) माता ने (**क्षपायां**) रात्रि में (**स्वप्ने**) स्वप्न में (**इदम् गजादि-वह्नयन्तम्**) हाथी से लेकर अग्नि तक सोलह स्वप्ने (**ददर्श**) देखे, (**यत् तातः**) जिनके पिता ने (**अयं**) ये (**परः गुरुः**) श्रेष्ठ गुरु हैं (**इति आह**) इस प्रकार बतलाया था; (**तं अभिनंदनं**) उन अभिनंदननाथ जिनेश्वर को (**प्रमोदात्**) हर्ष से (**नौमि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

कुवादि-वादं जयतः महान्तं, नय-प्रमाणैर्वचनै-र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देव-देवं सुमतिं नमामि॥ 5॥

अन्वयार्थ :- (**येन**) जिन्होंने (**महान्तं**) बड़े-बड़े (**कुवादि-वादं**) कुवादियों के वादों को (**नय-प्रमाणैः**) नय और प्रमाणरूपी (**वचनैः**) वचनों के द्वारा (**जयतः**) विजय से (**च**) और (**जगत्सु**) त्रिलोकों में (**जैनं मतं**) जिनशासन को (**विस्तरितं**) विस्तारित किया; (**तं देवदेवम्**) उन देवों के देव/देवाधिदेव (**सुमतिं**) सुमतिनाथ जिन को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात्।
धनाधिपः षण्णव-मासपूर्वं, पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम्॥ 6॥

अन्वयार्थ :- (**यस्य**) जिनके (**अवतारे सति**) जन्म होने पर (**हरेः निदेशात्**) इन्द्र की आज्ञा से (**धनाधिपः**) धन के अधिपति कुबेर ने (**पितृधिष्ण्ये**) पिता के घर के प्रांगण में (**षण्णव-मासपूर्वं**) पन्द्रह महीने पहले (**रत्नानि**) रत्नों को (**ववर्ष**) बरसाया; (**तं**) उन (**पद्मप्रभं**) पद्मप्रभ भगवान् को (**प्रणमामि**) मैं प्रणाम करता हूँ।

नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथै, र्वाणीं भवन्तीं जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभाया-महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि॥ 7 ॥

अन्वयार्थ :- (**भवन्तीं**) जिनकी (**वाणीं**) दिव्यध्वनि को (**नरेन्द्र सर्पेश्वर-नाकनाथैः**) नरेन्द्र, धरणेन्द्र और देवन्द्रों ने (**स्वचित्ते**) अपने चित्त में (**जगृहे**) ग्रहण/धारण किया और (**यस्य**) जिनका (**आत्मबोधः**) आत्मज्ञान (**सभायाम्**) समवसरण सभा में (**प्रथितः**) विस्तरित/प्रसिद्ध हुआ; (**ननु**) निश्चय से (**तं सुपार्श्वं**) उन सुपार्श्वनाथ जिन को (**अहं नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्प्रातिहार्यातिशय-प्रपन्नो, गुण-प्रवीणो हत-दोष-सङ्गः।
यो लोक-मोहान्धतमः प्रदीप, चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात्॥ 8॥

अन्वयार्थ :- (**यः**) जो (**सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपत्रः**) सुन्दर प्रातिहार्यरूप अतिशयों को प्राप्त (**गुणप्रवीणः**) गुणों में चतुर (**हतदोष-सङ्गः**) दोषों की संगति को नष्ट करने वाले (**लोक-मोहान्धतमः प्रदीपः**) जीवों के मोहरूपी महान् अंधकार को दूर करने के लिए अलौकिक दीपक स्वरूप केवलज्ञानी (**तं चन्द्राप्रभं**) उन चन्द्रप्रभ भगवान् को (**भावात्**) भावपूर्वक (**प्रणमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

गुप्तित्रयं पञ्च-महाव्रतानि, पञ्चोपदिष्टाः समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवम्॥ 9॥

अन्वयार्थ :- (**येन**) जिन्होंने (**गुप्तित्रयं**) तीन गुप्तियाँ (**पञ्च-महाव्रतानि**) पाँच महाव्रत (**पञ्च समितिः**) पाँच समितियाँ (**उपदिष्टाः**) कहीं और (**यः**) जिन्होंने (**द्वादशधा**) बारह प्रकार के (**तपांसि**) तपों को (**बभाण**) कहा (**तं**) उन (**पुष्पदंतं देवम्**)पुष्पदंत देव को (**प्रणमामि**) मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्म-व्रतान्तो जिन नायकेनोत्तम-क्षमादिर्दशधापि धर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रत-बन्ध-बुद्ध्या, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥ 10॥

अन्वयार्थ :- (**येन**) जिन (**जिननायकेन**) जिनों में प्रधान/ जिनवर ने (**व्रत-बन्ध-बुद्ध्या**) व्रतों को धारण की बुद्धि से

(उत्तमक्षमादिः) उत्तमक्षमा आदि **(ब्रह्म-व्रतान्तः)** ब्रह्मचर्यव्रत पर्यन्त **(दशधा धर्मः अपि)** दश प्रकार का धर्म भी **(प्रयुक्तः)** प्रयोग में लाए **(तं)** उन **(शीतलं)** शीतलनाथ **(तीर्थंकरं)** तीर्थंकर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

गणे जनानंदकरे धरान्ते, विध्वस्त-कोपे प्रशमैक-चित्ते।
यो द्वादशाङ्ग-श्रुतमादिदेश, श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम्॥ 11॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जिन्होंने **(विध्वस्त कोपे)** क्रोध के नाश होने पर अर्थात् क्षमाशील होने पर और **(प्रशमैक-चित्ते)** प्रशान्तरूप एकाग्रचित होने पर **(धरान्ते)** पृथ्वी के मध्य में **(जनानन्दकरे)** प्राणियों को आनन्द करने वाले **(गणे)** बारहगण से युक्त समवसरण सभा में **(द्वादशाङ्गश्रुतम्)** बारह अंगरूप श्रुत को **(आदिदेशः)** उपदेशित किया/कहा **(तं)** उन **(श्रेयांसं ईशम्)** श्रेयोनाथ **(जिनं)** जिनेश्वर को **(आनौमि)** मैं सब ओर से नमस्कार करता हूँ।

मुक्त्यङ्गनायै रचिता विशाला, रत्नत्रयी-शेखरता च येन।
यत्कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा, तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात्॥12॥

अन्वयार्थ :- **(येन)** जिन्होंने **(मुक्त्यङ्गनायैः)** मुक्तिरूपी वधू के लिये **(विशाला)**विशाल **(रत्नत्रयी-शेखरता)** रत्नत्रयरूपी मुकुट **(रचिता)** निर्मित किया/बनाया **(च)** और **(यत्कण्ठं)** जिनके कण्ठ को **(आसाद्य)** प्राप्त कर **(श्रेष्ठा)** वह मुक्तिरूपी वधु श्रेष्ठ/उत्तम **(बभूव)** हो गई **(तं)** उन **(वासुपूज्यं)** वासुपूज्य जिनेन्द्र को **(वेगात्)** शीघ्रता से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी, ध्यानी व्रती प्राणि-हितोपदेशी।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी, बभूव यस्तं विमलं नमामि॥ 13॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(ज्ञानी)** ज्ञानवान् **(विवेकी)** विवेकवान् **(परम-स्वरूपी)** उत्कृष्ट आत्मस्वरूप के धारी **(ध्यानी)** ध्यानी **(व्रती)**

व्रतधारी **(प्राणि-हितोपदेशी)** प्राणियों के हितोपदेशक **(मिथ्यात्वघाती)** मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले और **(शिवसौख्यभोजी)** मोक्षसुख के भोगी **(बभूव)** हुए **(तं)** उन **(विमलं)** विमलनाथ को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

आभ्यन्तरं बाह्यमनेकधा यः, परिग्रहं सर्वमपाचकार।
यो मार्ग-मुद्दिश्य हितं जनानां, वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनन्तम्॥ 14॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जिन्होंने **(जनानां हितं)** सब जीवों के हितरूप **(मार्गम् उद्दिश्य)** मार्ग को लक्ष्य कर **(आभ्यान्तरं)** आभ्यान्तर/भीतरी और **(बाह्यम्)** बाह्य/बाहरी **(अनेकधा)** अनेक प्रकार के **(सर्वपरिग्रहं)** सभी परिग्रह को **(अपाचकार)** त्यागा **(तं)** उन **(अनन्तं जिनं)** अनन्तनाथ जिनेन्द्र को **(प्रणमामि वन्दे)** मैं प्रणाम व वन्दना करता हूँ।

सार्द्धं पदार्था नव-सप्त-तत्त्वैः, पञ्चास्तिकायाश्च न कालकायाः।
षड्द्रव्यनिर्णीति-रलोकयुक्ति-र्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम्॥ 15॥

अन्वयार्थ :- **(येन)** जिन्होंने **(सप्त-तत्त्वैः)** सात तत्त्वों के **(सार्द्धं)** साथ **(नव पदार्थाः)** नौ पदार्थों **(पञ्चास्तिकायाः)** पाँच अस्तिकायों **(कालकायाः न)** काल द्रव्यें काय वाली नहीं हैं अर्थात् एक प्रदेशी हैं ऐसी **(षड्द्रव्यनिर्णीतिः)** छह द्रव्यों का निर्णय **(च)** और **(अलोकयुक्तिः)** अलोकाकाश का औचित्य **(उदिता)** कहा **(तं)** उन **(धर्मम्)** धर्मनाथ जिन को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

यः चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्छ्रीनन्दनो द्वादशको गुणानाम्।
निधिः प्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्तं शान्तिनाथं प्रणमामि भेदात्॥ 16॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(भुवि)** पृथ्वी पर **(गुणानाम्)** अनेक गुणों के और **(निधि-प्रभुः)** निधियों के स्वामी **(पञ्चमः)** पाँचवें **(चक्रवर्ती)** चक्रवर्ती **(द्वादशकः)** बारहवें **(श्रीनन्दनः)** कामदेव

(षोडशकः) सोलहवें **(जिनेन्द्रः)** कषाय और इन्द्रिय विजेता तीर्थंकर **(अभूत्)** हुए **(तं)** उन **(शान्तिनाथं)** शान्तिनाथ को **(भेदात्)** तीर्थंकर आदि पदों के अनुसार पृथक्-पृथक् **(प्रणमामि)** प्रणाम करता हूँ।

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं, विरोधितो यो न करोति रोषम्।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात्॥ 17॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(प्रशंसितः)** प्रशंसित होते हुए **(हर्षं)** हर्ष को **(न बिभर्ति)** धारण नहीं करते और **(विरोधितः)** निन्दित होते हुए **(रोषं)** क्रोध को **(न करोति)** नहीं करते तथा **(यः)** जो **(शीलव्रताद्)** शीलव्रत से **(ब्रह्मपदं)** ब्रह्म/मोक्षपद को **(गतः)** प्राप्त हुए **(तं)** उन **(कुन्थुनाथं)** कुन्थुनाथ को **(हर्षात्)** आनन्द से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां, यः सेवितोऽन्तर्गणपूरणाय।
पदच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम्॥ 18॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(सभायां)** समवसरण सभा में **(पदच्युतैः)** अविनाशी पद प्राप्त **(केवलिभिः)** अन्य केवली भगवन्तों के द्वारा **(न संस्तुतः)** न स्तुति को प्राप्त हुए **(न प्रणतः)** न नमस्कृत हुए किन्तु **(अन्तर्गणपूरणाय)** अन्तर्गण की पूर्ति के लिए **(जिनस्य)** तीर्थंकर जिनेन्ददेव का **(सेवितः)** सेवन/आश्रय हुआ **(तं)** उन **(देवाधिदेवं)** देवाधिदेव **(अरं)** अरनाथ जिन को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

रत्नत्रयं पूर्व-भवान्तरे यो, व्रतं पवित्रं कृतवानशेषम्।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या॥19॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जिन्होंने **(पूर्व-भवान्तरे)** पूर्वभव में **(मनसा वाचा कायेन)** मन, वचन, काय से **(विशुद्ध्या)** विशुद्धि द्वारा **(पवित्रं)** पवित्र **(रत्नत्रयं व्रतं)** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप व्रत को **(अशेषम्)** पूरी तरह **(कृतवान्)** पालन किया **(तं मल्लिनाथं)** उन मल्लिनाथ भगवान् को **(भक्तया)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदाय वाक्य-मित्य-ग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम्।
लौकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम् ॥ 20 ॥

अन्वयार्थ :- (**यः**) जिन्होंने (**लौकान्तिकेभ्यः**) लौकान्तिक देवों के द्वारा (**स्तवनं**) स्तुति को (**निशम्य**) सुनकर (**सिद्ध-पदाय**) सिद्धपद के वास्ते सिद्ध पद के धारी सिद्धों के लिए (**नमः**) नमस्कार हो (**इति**) इस प्रकार (**वाक्यम् ब्रुवन्**) वाक्य को बोलते हुए (**स्वयमेव**) स्वयं ही (**लोचम्**) केशलोंच को (**अग्रहीत्**) ग्रहण किया (**तं मुनिसुव्रतं**) उन मुनिसुव्रतनाथ (**जिनेशं**) जिनेश्वर को (**वन्दे**) मैं प्रणाम करता हूँ।

विद्यावते तीर्थकराय तस्मादाहार-दानं ददतो विशेषात्।
गृहे नृपस्याजानि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रमाणान्नयतो नमिं तम् ॥ 21 ॥

अन्वयार्थ :- (**विद्यावते**) चार ज्ञानधारी (**तीर्थकराय**) तीर्थंकर के लिए (**विशेषात्**) श्रावक के श्रद्धा आदि सात गुण ओर पड़गाहन आदि नवधाभक्ति की विशेषता से (**आहारदानं**) आहारदान को (**ददतः**) देते हुए (**नृपस्य**) राजा के (**गृहे**) घर में (**रत्नवृष्टिः**) रत्नों की वर्षा (**अजनि**) हुई (**तस्मात्**) इसलिए (**तं**) उन (**नमिं**) नमिनाथ भगवान् की (**प्रमाणात्**) प्रमाण/सामान्य/समग्ररूप से और (**नयतः**) नय/विशेष/पृथक्रूप से (**अहं**) मैं (**स्तौमि**) स्तुति करता हूँ।

राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥ 22 ॥

अन्वयार्थ :- (**सर्वेषु**) सभी (**जीवेषु**) जीवों पर (**दयां दधानः**) दया को धारण करते हुए (**यः**) जिन्होंने (**अपुनरागमाय**) पुनरागमन से रहित मोक्ष के लिये (**राजीमतीं**) सुन्दर राजमति को (**प्रविहाय**) छोड़कर (**मोक्षे**) मोक्ष में (**स्थितिं**) स्थिरतारूप निवास को (**चकार**) किया (**तं**) उन (**नेमिनाथं**) नेमिनाथ भगवान् को (**भक्त्या**) भक्ति से (**प्रणमामि**) मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्पाधिराजः कमठारितो यै, र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण॥ 23॥

अन्वयार्थ :- (**ध्यानस्थितस्य**) ध्यान में बैठे हुए (**यस्य**) जिनके (**कमठारितः**) कमठ वैरी के द्वारा किए गए (**उपसर्गं**) उपसर्ग को (**सर्पाधिराजः**) नागेन्द्र/धरणेन्द्र ने (**यैः फणावितानैः**) जिन फणों के विस्तार/फैलाव द्वारा (**एव**) ही (**निरवर्तयत्**) निवारण किया (**तं**) उन (**पार्श्वं**) पार्श्वनाथ भगवान् को (**महता आदरेण**) बड़े आदरभाव से (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

भवार्णवे जन्तु-समूह-मेन-माकर्षयामास हि धर्म-पोतात्।
मज्जन्तमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्री वर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तम्॥ 24॥

अन्वयार्थ :- (**एनसा**) पाप से (**भवार्णवे**) संसाररूपी समुद्र में (**मज्जन्तं**) डूबते हुए (**एनम् जन्तु-समूहं**) इस प्राणी समूह को (**उद्वीक्ष्य**) देखकर (**धर्म-पोतात्**) धर्मरूपी जहाज से (**यः**) जिन्होंने (**हि**) निश्चित ही (**आकर्षया-मास**) खींच लिया/बाहर निकाल लिया (**तं**) उन (**श्री वर्द्धमानं**) अन्तरंग व बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त वर्द्धमान भगवान् को (**अपि**) भी (**अहं**) मैं (**प्रणमामि**) नमस्कार करता हूँ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञ-ध्वनि-संभवं त्रिकरण,-व्यापार-शुद्ध्यानिशम्।
भव्यानां जयमालया विमलया, पुष्पाञ्जलिं दापयन्,
नित्यं स श्रियमातनोति सकलां, स्वर्गापवर्ग-स्थितिम्॥25॥

अन्वयार्थ :- (**यः पुरुष वा स्त्री**) जो पुरुष या स्त्री (**भव्यानां कृतोपस्कृतं**) भव्यपुरुषों के किए गये उपकार को (**नित्यं**) सदा

(विमलया जय-मालया) निर्मल गुणानुवाद के साथ **(पुष्पाञ्जलिं दापयन्)** पुष्पाञ्जलि समर्पण करता हुआ **(त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्या)** मन, वचन और काय की प्रवृत्ति की शुद्धि से **(सर्वज्ञध्वनि-संभवं)** सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि से उत्पन्न **(दशआ धर्मम्)** दश प्रकार के धर्म को **(अनिशं करोति)** निरन्तर करता है/पालता है **(सः)** वह **(स्वर्गापवर्ग-स्थितम्)** स्वर्ग और मोक्ष में स्थित **(सकलां श्रियम्)** समस्त लक्ष्मी को **(आतनोति)** विस्तारित करता है/प्राप्त करता है।

॥ इति स्वयंभू स्तोत्रम् ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

महावीराष्टक-स्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भांति-ध्रौव्यव्ययजनि-लसंतोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥1॥

अन्वयार्थ :- **(यदीये)** जिनके **(चैतन्ये)** चैतन्यरूप ज्ञान में **(ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसंतः)** ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद से युक्त **(अन्तरहिताः)** अनन्त **(चिदचितः)** चेतन और अचेतन **(भावाः)** पदार्थ **(मुकुर)** दर्पण के **(इव)** समान **(समं)** एक साथ **(भान्ति)** प्रतिबिम्बित होते हैं और **(जगत्साक्षी)** जगत् के साक्षात्कार करने वाले **(भानुः इव)** सूर्य के समान **(यः)** जो **(मार्ग-प्रकटनपरः)** मोक्षमार्ग के प्रकाशक हैं **(महावीरस्वामी)** वे महावीर स्वामी **(मे)** मेरे **(नयनपथगामी)** नेत्रों के मार्गगामी-प्रत्यक्ष **(भवतु)** होवें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं,
जनान् कोपाऽपायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाऽति विमला,
महावीरस्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 2॥

अन्वयार्थ :- **(अताम्रं)** लालिमा रहित, **(स्पंद-रहितं)** परिस्पंद रहित **(यच्चक्षुः कमल-युगलं)** जिनके नयन कमल युगल **(जनान्)** मनुष्यों को **(आभ्यन्तरं)** भीतरी **(वा)** अथवा बाह्य **(कोपअपायं)** क्रोध के अभाव को **(अपि)** भी **(प्रकटयति)** प्रकट करते हैं **(यस्य)** जिनकी **(मूर्तिः)** मुद्रा या आकृति **(स्फुटं)** स्पष्ट रूप से **(प्रशमितमयी)** परम शान्ति की धारक है **(वा)** और **(अति-विमला)** अत्यन्त निर्मल है, **(महावीरस्वामी)** वे महावीर स्वामी **(नयन-पथगामी भवतु मे)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु-भृताम्।
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 3॥

अन्वयार्थः- (**यदीयं**) जिनके (**नमन्नाकेन्द्राली**) नमन करते हुए देवेन्द्रों के समूह के (**मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं**) शिरोमुकुटों की मणियों की प्रभा-पुंज से व्याप्त (**लसत्पादाम्भोज-द्वयम्**) सुशोभित चरण-कमल-युगल (**इह**) इस लोक में (**तनुभृताम्**) शरीर-धारियों की (**भवज्वाला-शान्त्यै**) संसार-रूपी ज्वाला की शांति के लिए (**प्रभवति**) समर्थ हैं (**वा**) अथवा (**स्मृतं अपि**) जिनका स्मरण भी (**जलं**) जल के समान (**भवज्वाला-शान्त्यै**) भवज्वाला की शांति के लिए (**प्रभवति**) समर्थ हैं, वे (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**मे**) मेरे (**नयनपथगामी भवतु**) नेत्रों के मार्गगामी होवें।

यदर्चा - भावेन प्रमुदित - मना दर्दुर इह ,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ता शिव-सुख समाजं किमु तदा,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे ॥ 4॥

अन्वयार्थ :- (**यदर्चा भावेन**) जिनकी पूजा के भाव से (**प्रमुदितः मनाः**) हर्षित चित्तवाला (**दर्दुर**) मेंढक (**इह**) लोक में (**क्षणात्**) क्षण भर में (**गुण-गण-समृद्धः**) गुण-गणों से सम्पन्न (**सुखनिधिः**) सुख का निधान (**स्वर्गी**) स्वर्ग का देव (**आसीत्**) हो गया (**सद्भक्ता**) फिर सच्चे भक्त-जन (**शिवसुखसमाजं**) मोक्ष के सुखसमूह को (**लभंते**) पावें (**तदा किमु**) तो इसमें क्या आश्चर्य है? (**महावीर-स्वामी**) वे महावीर स्वामी (**नयन-पथगामी भवतु मे**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

कनत्स्वर्णाभासोप्यपगत - तनुर्ज्ञान - निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति - वर - सिद्धार्थ - तनयः।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुत-गतिः,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 5॥

अन्वयार्थ :- (**कनत्स्वर्णाभासः अपि**) तपाये हुए सुवर्ण के समान कांति वाले भी (**अपगत-तनुः**) शरीर से रहित (**विचित्रात्मा अपि**) विचित्र आत्मा होकर भी (**एकः**) अद्वितीय (**अजन्मा अपि**) अजन्मा होकर भी (**नृपतिवर-सिद्धार्थ-तनयः**) महाराज सिद्धार्थ के नन्दन (**श्रीमान्**) श्रीमान हैं, फिर भी (**विगत-भवरागः**) सांसारिक राग से रहित हैं (**अद्भूत-गतिः**) ऐसी अद्भुत शक्ति के धारक (**ज्ञान-निवहो**) ज्ञान पुंज (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**नयनपथ-गामी भवतु मे**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध - जन - मरालैः परिचिता ,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 6॥

अन्वयार्थ:- (**यदीया**) जिनकी (**या**) यह (**विविध-नयकल्लोल**) अनेक नय रूप तरंगों से (**विमला**) उज्ज्वल (**वाग्गंगा**) वाणी रूपी गंगा (**बृहज्-ज्ञानाम्भोभिः**) विपुल ज्ञान रूप जल से (**जगति**) इस लोक में (**जनतां**) प्राणियों का (**स्नपयति**) अभिषेक करके उनके सन्ताप को शान्त करती है (**इदानीं अपि**) और आज भी (**एषा**) यह (**बुधजनमरालैः**) विद्वज्जन रूपी हंसों से (**परिचिता**) परिचित हो रही है, (**महावीरस्वामी**) वे महावीर स्वामी (**नयनपथगामी भवतु**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन - जयी काम - सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद् येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द - प्रशम - पदराज्याय स जिनः,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 7॥

अन्वयार्थ:- (**येन**) जिसने (**कुमारावस्थायाम्**) कुमार अवस्था में (**अपि**) भी (**स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय**) स्फुरायमान नित्य आनन्द वाले प्रशान्त-शिव पद के राज्य को पाने के लिए (**निज-बलात्**) अपने आत्मबल से (**अनिर्वारोद्रेकः**) दुर्निवार उद्रेक वाले (**त्रिभुवन-जयी**) त्रिभुवन-विजेता (**काम-सुभटः**) कामरूपी महान् योद्धा को (**विजितः**) जीता है, वे (**जिनः**) जिनेन्द्र (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**नयनपथगामी भवतु मे**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

महा- मोहातंक - प्रशमन - पराकस्मिक -भिषक्
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा-मंगल-करः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तम-गुणो,
महावीर-स्वामी नयन-पथगामी भवतु मे॥ 8॥

अन्वयार्थ:- (**महा-मोहातंक-प्रशमन**) महान् मोह के आतंक को सर्वथा शान्त (**पराकस्मिकभिषक्**) करने में तत्पर आकस्मिक वैद्य (**निरापेक्षः**) अपेक्षा रहित (**बन्धुः**) परम बन्धु (**विदितमहिमा**) सर्वविदित महिमा वाले (**मंगल-करः**) मंगलकारक (**भव-भय-भृताम्**) संसार के भय से भरे हुए (**साधूनाम्**) साधुजनों का (**शरण्यः**) शरण देने वाले (**उत्तमगुणः**) परमोत्कृष्ट गुणशाली, (**महावीरस्वामी**) वे महावीर स्वामी (**नयनपथगामी भवतु मे**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी होवें।

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छ्रणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्॥ 9॥

अन्वयार्थ:- (**भागेन्दुना**) भागचन्द द्वारा (**भक्त्या**) भक्तिपूर्वक (**कृतं**) रचित (**महावीराष्टकं**) इस आठ पद्यमय महावीराष्टक (**स्तोत्रं**) स्तोत्र को (**यः**) जो (**पठेत्**) पढ़ेगा (**च अपि**) और अथवा (**शृणुयात्**) सुनेगा (**सः**) वह (**परमाम्**) परम (**गतिं**) गति को (**याति**) जाएगा।

॥ इति पण्डितभागचन्दकृतं महावीराष्टक-स्तोत्रम्॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

भक्तामर-स्तोत्रम्

भक्तामर - प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा -
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥ 1॥

अन्वयार्थः- (**भक्त**) भक्तिमान् (**अमर**) देवों के (**प्रणत**) नम्रीभूत (**मौलि**) मुकुटों के (**मणि**) मणियों की (**प्रभाणाम्**) प्रभा को (**उद्योतकम्**) प्रकाशित करने वाले (**पाप**) पापरूप (**तमो**) अन्धकार के (**वितानम्**) विस्तार को (**दलित**) नष्ट करने वाले (**भवजले**) संसाररूप समुद्र में (**पततां**) गिरते हुए (**जनानाम्**) जीवों को (**युगादौ**) युग के आदि में कर्मभूमि के प्रारम्भ में (**आलम्बनम्**) सहारा देने वाले (**जिन-पादयुगं**) श्री ऋषभ जिनके चरण युगल को (**सम्यक्**) भलीभांति से (**प्रणम्य**) प्रणाम करके।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रै - र्जगत्त्रितय - चित्तहरैरुदारैः ,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥ 2॥

अन्वयार्थः- (**सकल**) समस्त (**वाङ्मय**) द्वादशांग रूप जिनवाणी के (**तत्त्वबोधात्**) परम रहस्य के परिज्ञान से (**उद्भुत्**) उत्पन्न हुई (**बुद्धिपटुभिः**) बुद्धि की कुशलता वाले (**सुरलोकनाथैः**) देवलोक के स्वामी इन्द्रों के द्वारा (**जगत्-त्रितय**) तीन जगत् के (**चित्तहरैः**) चित्त को हरण करने वाले (**उदारैः**) महान् (**स्तोत्रैः**) स्तोत्रों से (**यः**) जो ऋषभदेव (**संस्तुतः**) सम्यक् प्रकार स्वतन किए गए, ऐसे (**तम्**) उन (**प्रथमम्**) प्रथम (**जिनेन्द्रं**) जिनेन्द्र तीर्थंकर का (**किल**) निश्चय से (**अहम्**) मैं मानतुंग (**अपि**) भी (**स्तोष्ये**) स्तवन करूँगा।

बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥ 3॥

अन्वयार्थः- (**विबुध**) देवों के द्वारा (**अर्चित**) पूजित है (**पादपीठ**) चरण रखने का आसन जिनका, ऐसे हे जिनेन्द्र देव! (**विगतत्रपः**) निर्लज्ज (**बुद्धया**) बुद्धि से (**विना अपि**) बिना भी रहित होने पर (**अहम्**) मैं मानतुंग (**स्तोतुम्**) आपकी स्तुति करने के लिए (**समुद्यतमतिः**) उद्यत बुद्धि हुआ हूँ (**बालम्**) बालक के (**विहाय**) सिवाय (**अन्यः**) अन्य (**कः**) कौन (**जनः**) मनुष्य (**जल-संस्थितम्**) जल में स्थित (**इन्दुबिम्बम्**) चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को (**सहसा**) एकाएक (**ग्रहीतुम्**) पकड़ने के लिए (**इच्छति**) इच्छा करता है।

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतु-मलमम्बु-निधिं भुजाभ्याम्॥4॥

अन्वयार्थः- (**गुण-समुद्र**) हे गुणों के सागर! (**ते**) तुम्हारे (**शशाङ्क**) चन्द्रमा के समान (**कांतान्**) उज्ज्वल (**गुणान्**) गुणों को (**वक्तुं**) कहने के लिए (**बुद्धया**) बुद्धि से (**सुर-गुरु**) देवों के गुरु बृहस्पति के (**प्रतिमः**) सदृश (**अपि**) भी (**कः**) कौन (**क्षमः**) समर्थ है? (**कल्पान्तकाल**) प्रलयकाल की (**पवन**) प्रचण्ड वायु से (**उद्धत**) उछलते हुए (**नक्रचक्रं**) मगरमच्छों से युक्त (**अम्बुनिधिम्**) समुद्र को (**भुजाभ्याम्**) दो भुजाओं से (**तरीतुम्**) तैरने के लिए (**को वा**) कौन पुरुष (**अलम्**) समर्थ हो सकता है? कोई भी नहीं।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत - शक्तिरपि प्रवृत्तः।

प्रीत्यात्म-वीर्य-मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥ 5॥

अन्वयार्थः- (**मुनीश**) हे मुनियों के ईश्वर! (**तथापि**) तो भी (**सः अहम्**) वह मैं (**विगतशक्तिः**) शक्ति-रहित होकर (**अपि**) भी (**तव**) तुम्हारी (**स्तवं**) स्तुति (**कर्तुं**) करने के लिए (**भक्तिवशात्**) भक्ति के वश से (**प्रवृत्तः**) प्रवृत्त हुआ हूँ। (**मृगः**) हरिण (**आत्मवीर्यम्**) अपनी शक्ति को (**अविचार्य**) नहीं विचार करके (**प्रीत्या**) प्रीति के वश में होकर (**निजशिशोः**) अपने शिशु को (**परिपालनार्थं**) बचाने के लिए (**किम्**) क्या (**मृगेन्द्रम्**) सिंह के सन्मुख (**न अभ्येति**) नहीं जाता है? अर्थात् जाता है।

अल्प - श्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम -
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतुः॥6॥

अन्वयार्थः- (**अल्पश्रुतं**) अल्प शास्त्रों के ज्ञाता (**श्रुतवतां**) विद्वानों की (**परिहास-धाम**) हसी के पात्र (**माम्**) मुझको (**त्वद्-भक्तिः**) आपकी भक्ति (**एव**) ही (**बलात्**) बलपूर्वक (**मुखरीकुरुते**) वाचाल-प्रेरित कर रही है। (**कोकिलः**) कोयल (**किल**) निश्चय से (**मधौ**) बसन्त ऋतु में (**यत्**) जो (**मधुरं**) मधुर (**विरौति**) कूकती-बोलती है। (**तत् च**) उसमें (**आम्र**) आम की (**चारुकलिका**) सुन्दर मंजरी का (**निकर**) समुदाय ही (**एकहेतुः**) एकमात्र कारण है।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीर - भाजाम्।
आक्रांत - लोकमलि - नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम्॥ 7॥

अन्वयार्थः- (**त्वत्संस्तवेन**) आपके स्तवन से (**शरीरभाजाम्**) शरीरधारी प्राणियों के (**भवसन्तति**) अनेक भवों की परम्परा में (**सन्निबद्धम्**) बँधे हुए (**पापं**) पाप (**क्षणात्**) क्षणभर में (**क्षयम्**) क्षय को (**उपैति**) प्राप्त हो जाते हैं। (**इव**) जैसे (**आक्रान्तलोकम्**) लोक में फैले (**अलिनीलम्**) भौंरों के समान काला (**शार्वरम्**) रात्रि का (**अन्धकारं**) अन्धकार (**आशु**) शीघ्र (**सूर्यांशुभिन्नं**) सूर्य की किरणों से छिन्न-भिन्न हो जाता है।

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु ,
मुक्ताफल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः॥ 8॥

अन्वयार्थः- (**हे नाथ**) हे स्वामिन्! (**इति मत्वा**) ऐसा मानकर (**तनुधिया**) अल्प बुद्धि (**मया**) मेरे द्वारा (**अपि**) भी (**इदं**) यह (**तव**) तुम्हारा (**संस्तवनं**) स्तवन (**आरभ्यते**) प्रारम्भ किया जा रहा है। (**तव**) आपके (**प्रभावात्**) प्रभाव से यह स्तवन (**सतां**) सज्जनों के (**चेतः**) चित्त को (**हरिष्यति**) हरण करेगा। (**ननु**) निश्चय से (**उदबिन्दुः**) जल की बूँद (**नलिनी-दलेषु**) कमलिनी के पत्तों पर (**मुक्ताफल**) मुक्ताफल या मोती की (**द्युतिं**) कांति को (**उपैति**) प्राप्त होती है।

आस्तां तव स्तवनमस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र - किरणः कुरुते प्रभैव ,
पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि॥ 9॥

अन्वयार्थः- (**तव**) हे भगवान्! तुम्हारा (**अस्तसमस्तदोषं**) समस्त दोषों से रहित-निर्दोष (**स्तवनं**) स्तवन तो (**दूरे**) दूर (**आस्ताम्**) रहे (**त्वत्सङ्कथा अपि**) तुम्हारे नाम की कथा भी (**जगतां**) जगत्‌जनों के

(दुरितानि) पापों को **(हन्ति)** नष्ट कर देती है। **(सहस्रकिरणः)** सूर्य **(दूरे आस्तां)** दूर ही रहे **(प्रभा)** उसकी प्रभा **(एव)** ही **(पद्माकरेषु)** सरोवरों में **(जलजानि)** कमलों को **(विकासभाञ्जि)** विकसित **(कुरुते)** कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टु - वन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥ 10॥

अन्वयार्थः- **(भुवन-भूषण)** हे तीन भुवन के आभूषण! **(भूतनाथ)** हे जगन्नाथ! **(भूतैः)** वास्तविक **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(भवन्तं)** आपकी **(अभिष्टुवन्तः)** स्तुति करने वाले पुरुष **(भुवि)** भूतल पर **(भवतः)** आपके **(तुल्या)** समान **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(इति)** यह बात **(अति अद्भुतं)** अति आश्चर्य-कारक **(न)** नहीं है **(वा)** अथवा **(ननु)** निश्चय से **(तेन)** उस स्वामी से **(किम्)** क्या लाभ है **(य)** जो **(इह)** इस लोक में **(आश्रितम्)** अपने आश्रित मनुष्य को **(भूत्या)** वैभव से **(आत्मसमम्)** अपने समान **(न करोति)** नहीं करता है।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष - विलोकनीयं ,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्॥ 11॥

अन्वयार्थः- **(अनिमेष)** अपलक दृष्टि से **(विलोकनीयम्)** देखने के योग्य **(भवन्तम्)** आपको **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जनस्य)** मनुष्य की **(चक्षुः)** आँख **(अन्यत्र)** और कहीं पर **(तोषम्)** सन्तोष को **(न उपयाति)** नहीं पाती है। **(शशिकरद्युति)** चन्द्रकिरणों के समान कांति वाले **(दुग्ध-सिन्धोः)** क्षीरसागर के **(पयः)** जल को **(पीत्वा)** पीकर

(कः) कौन मनुष्य **(जलनिधेः)** लवणसमुद्र के **(क्षारं)** खारे **(जलं)** जल को **(असितुं)** पीने के लिए **(इच्छेत्)** इच्छा करेगा? कोई भी नहीं।

यैः शान्त-राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललाम - भूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥ 12॥

अन्वयार्थः- **(त्रिभुवनैक)** हे त्रिभुवन में एक मात्र अद्वितीय **(ललामभूत)** सौन्दर्य धारक भगवन्! **(यैः)** जिन **(शान्तरागरुचिभिः)** शांति भावों के धारक कांति वाले **(परमाणुभिः)** परमाणुओं से **(त्वं)** तुम **(निर्मापितः)** बनाये गए हो **(ते)** वे **(अणवः)** परमाणु **(अपि)** भी **(खलु)** निश्चय से **(तावन्त)** उतने **(एव)** ही थे। **(यत्)** क्योंकि **(पृथिव्यां)** पृथिवी पर **(ते समानम्)** आपके समान **(अपरं)** दूसरा **(रूपं)** रूप **(नहि)** नहीं **(अस्ति)** है।

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्र - हारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम्॥ 13॥

अन्वयार्थः- **(सुर)** देव **(नर)** मनुष्य और **(उरग)** नागों के **(नेत्र)** नेत्रों को **(हारि)** हरण करने वाला एवं **(निःशेष)** समस्त रूप से **(निर्जित)** जीत लिया है **(जगत्त्रितय)** तीन जगत् की **(उपमानम्)** उपमाओं को जिसने ऐसा **(ते)** आपका **(वक्त्रं)** मुख **(क्व)** कहाँ? और **(निशाकरस्य)** चन्द्रमा का **(कलङ्कमलिनम्)** कलंक से मलिन **(बिम्बं)** बिंब **(क्व)** कहाँ? **(यत्)** जो कि **(वासरे)** दिन में **(पाण्डु)** पीले फीके **(पलाशकल्पम्)** पलाश पत्र के समान **(भवति)** हो जाता है।

संपूर्ण- मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥ 14 ॥

अन्वयार्थः- (**त्रिजगदीश्वर**) हे तीन जगत् के ईश्वर! (**तव**) आपके (**सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क**) पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल के (**कला-कलाप**) कलासमूह के समान (**शुभ्रा**) उज्ज्वल (**गुणाः**) गुण (**त्रिभुवनम्**) तीनों लोकों को (**लङ्घयन्ति**) लाँघ रहे हैं (**ये**) जिन्होंने (**एकं**) एकमात्र (**नाथं**) आप जैसे स्वामी का (**संश्रिता**) आश्रय लिया है (**तान्**) उन्हें (**यथेष्ट**) स्वेच्छानुसार (**सञ्चरतः**) विचरण करने से (**कः**) कौन (**निवारयति**) रोक सकता है? कोई भी नहीं।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिता-चलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥ 15 ॥

अन्वयार्थः- (**यदि**) यदि (**त्रिदशाङ्गनाभिः**) देवांगनाओं के द्वारा (**ते**) आपका (**मनः**) मन (**मनाक्**) जरा सा (**अपि**) भी (**विकारमार्गम्**) विकारभाव को (**न नीतं**) नहीं प्राप्त हुआ तो (**अत्र**) इसमें (**किं**) क्या (**चित्रं**) आश्चर्य है? (**चलिताचलेन**) पर्वतों को चलायमान करने वाले (**कल्पान्तकाल**) प्रलयकाल के (**मरुता**) पवन से (**किं**) क्या (**मन्दराद्रिशिखरम्**) सुमेरु का शिखर (**कदाचित्**) कभी (**चलितम्**) चलायमान हुआ है?

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥ 16 ॥

अन्वयार्थः- (**नाथ! त्वं**) हे भगवन्! तुम (**निर्धूमवर्तिः**) धूम और बत्ती से रहित हो (**अपवर्जिततैलपुरः**) तैल पूर से रहित हो, फिर भी (**इदं**) इस (**कृत्स्नम्**) समस्त (**जगत्त्रयं**) त्रिजगत् को (**प्रकटीकरोषि**) प्रकाशित कर रहे हो तथा (**चलिताचलानां**) पर्वतों को चलायमान करने वाली (**मरुतां**) वायु के (**जातु**) कदाचित् भी (**गम्यः**) गम्य (**न**) नहीं हो (**जगत्प्रकाशः**) अतः आप जगत्-प्रकाशक (**अपरः**) अपूर्व (**दीपः**) दीपक (**असि**) हो।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भो - धरोदर - निरुद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके॥ 17॥

अन्वयार्थः- (**मुनीन्द्र!**) हे मुनीश्वर! (**कदाचित्**) तुम कभी भी (**अस्तं**) अस्त (**न उपयासि**) नहीं होते हो (**न राहुगम्यः**) न राहु के गम्य हो (**सहसा**) शीघ्र ही (**जगन्ति**) तीनों लोकों को (**युगपत्**) एक साथ (**स्पष्टीकरोषि**) प्रकाशित करते हो (**अम्भोधरोदर**) मेघों के द्वारा आपका (**निरुद्धमहाप्रभावः**) महाप्रभाव निरुद्ध (**न**) नहीं होता है,इसलिए (**लोके**) लोक में आप (**सूर्यातिशायि**) सूर्य से भी अतिशय युक्त (**महिमा**) महिमा वाले (**असि**) हो।

नित्योदयं दलित मोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥ 18॥

अन्वयार्थः- (**तव**) आपका (**मुखाब्जम्**) मुख कमल (**नित्योदयं**) सदा उदित रहने वाला (**दलितमोहमहान्धकारं**) मोह-रूप महान्धकार का विनाशक (**अनल्पकांति**) महा कांतिशाली है (**न**) न (**राहुवदनस्य**) राहु मुख के या केतु के (**गम्यं**) गम्य है (**न वारिदानां**)

न मेघों के **(गम्यं)** गम्य है किन्तु **(जगत्)** जगत् को **(विद्योतयत्)** प्रकाशित करता हुआ **(अपूर्वशशाङ्कबिम्बम्)** अपूर्व चन्द्रबिम्ब के समान **(विभ्राजते)** सुशोभित हो रहा है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमःसु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥ 19 ॥

अन्वयार्थः- **(नाथ)** हे स्वामिन्! **(तमःसु)** समस्त अन्धकार **(युष्मन्मुखेन्दु)** आपके मुखचन्द्र द्वारा **(दलितेषु)** नष्ट कर दिए जाने पर **(शर्वरीषु)** रात्रि में **(शशिना)** चन्द्रमा से **(किं)** क्या प्रयोजन है **(वा)** और **(अह्नि)** दिन में **(विवस्वता)** सूर्य से **(किं)** क्या प्रयोजन है? **(जीवलोके)** संसार में **(निष्पन्नशालिवनशालिनि)** खेतों में धान्य के पक जाने पर **(जलभारनम्रैः)** जल से भरे हुए **(जलधरैः)** मेघों से **(किं)** क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि - हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन् मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥ 20 ॥

अन्वयार्थः- **(कृतावकाशं)** पूर्णरूप से विकसित **(ज्ञानं)** ज्ञान **(यथा)** जैसा **(त्वयि)** आप में **(विभाति)** सुशोभित हो रहा है **(एवं)** ऐसा **(हरि-हरादिषु)** हरिहर या विष्णु महेश आदि **(नायकेषु)** देवों में **(न)** नहीं है **(यथा)** जैसा **(स्फुरन्मणिषु)** प्रकाशमान् मणियों में **(तेजः)** तेज **(महत्त्वं)** महत्त्व को **(याति)** प्राप्त होता है **(तथा)** वैसा **(किरणाकुले अपि)** सूर्य कि करणों से चमकते हुए भी **(काच शकले)** काँच से टुकड़े में **(न विभाति)** नहीं शोभित होता है।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि॥ 21॥

अन्वयार्थः- (**नाथ**) हे स्वामिन्! (**हरि-हरादयः**) हरि-हर-आदि देवों को (**दृष्टा**) देखा (**एव**) यही (**वरं**) उत्तम है (**मन्ये**) ऐसा मैं मानता हूँ (**येषु**) क्योंकि उनके (**दृष्टेषु**) देख लेने पर ही (**हृदयं**) हृदय (**त्वयि**) आप में (**तोषं**) सन्तोष को (**एति**) प्राप्त होता है (**भवता**) अथवा आपको (**वीक्षितेन**) देखने से (**किं**) क्या लाभ? (**येन**) जिससे कि (**भुवि**) भूमण्डल पर (**अन्यः**) अन्य (**कश्चित्**) कोई देव (**भवान्तरे**) जन्मान्तर में (**अपि**) भी (**मनो**) मेरे मन को (**न हरति**) हरण नहीं कर सकता है।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥ 22॥

अन्वयार्थः- (**शतानि**) सैकड़ों (**स्त्रीणां**) स्त्रियाँ (**शतशः**) सैकड़ों (**पुत्रान्**) पुत्रों को (**जनयन्ति**) जन्म देती हैं, परन्तु (**अन्या**) अन्य कोई (**जननी**) माता (**त्वदुपमं**) आप जैसे (**सुतं**) पुत्र को (**न प्रसूता**) जन्म नहीं दे सकी (**सर्वाः**) सभी (**दिशः**) दिशाएँ (**भानि**) ताराओं को (**दधति**) धारण करती हैं किन्तु (**स्फुरद्**) देदीप्यमान (**अंशुजालम्**) किरणों के समूह वाले (**सहस्ररश्मिं**) सूर्य को (**प्राची एव**) एक पूर्व ही (**दिक्**) दिशा (**जनयति**) उत्पन्न करती है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिव-शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥ 23 ॥

अन्वयार्थः- (**मुनीन्द्र**) हे मुनीश्वर! (**मुनयः**) मुनिजन (**त्वां**) आपको ही (**आदित्यवर्णम्**) सूर्य के समान तेजस्वी (**अमलं**) निर्मल (**तमसः पुरस्तात्**) अन्धकार से परे (**परमं**) परम (**पुमान्सम्**) पुरुष (**आमनन्ति**) मानते हैं और (**त्वां एव**) आपको ही (**सम्यक्**) भलीभाँति (**उपलभ्य**) प्राप्त करके (**मृत्युं**) मृत्यु को (**जयन्ति**) जीतते हैं, अतः आपके सिवाय (**शिवपदस्य**) मोक्ष पद का (**अन्यः**) दूसरा (**शिवः**) कल्याणकारी (**पन्थाः**) मार्ग (**न अस्ति**) नहीं है।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य - मसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्त - मनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित योगमनेक - मेकं
ज्ञान-स्वरूप ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ 24 ॥

अन्वयार्थः- (**सन्तः**) सन्त पुरुष (**त्वां**) आपको (**अव्ययम्**) अक्षय (**विभुम्**) ज्ञानरूप से व्यापक (**अचिन्त्यं**) चिन्तन में नहीं आने वाले (**असंख्यं**) असंख्य गुणों से युक्त (**आद्यम्**) प्रथम (**ब्रह्माणम्**) ब्रह्मा (**ईश्वरं**) ईश्वर (**अनन्तम्**) अनन्त (**अनंगकेतुम्**) अनंगकेतु-काम विनाशक (**योगीश्वरं**) योगियों के ईश्वर (**विदितयोगं**) योग के ज्ञायक (**अनेकं**) गुण-पर्याय की अपेक्षा अनेकरूप (**एकं**) जीवद्रव्य की अपेक्षा एक रूप (**ज्ञानस्वरूपं**) केवलज्ञान स्वरूप (**अमलं**) कर्ममल से रहित (**प्रवदन्ति**) कहते हैं।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय - शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥ 25 ॥

अन्वयार्थ:- (**विबुध**) देवताओं के द्वारा (**अर्चित**) पूजित (**बुद्धिबोधात्**) केवलज्ञानी होने से (**त्वं एव**) तुम ही (**बुद्धः**) बुद्ध हो (**भुवनत्रय**) तीन भुवन में (**शङ्करत्वात्**) सुख करने से (**त्वं**) तुम ही (**शङ्करः**) शंकर (**असि**) हो (**धीर**) हे धीरवीर! (**शिवमार्ग**) मोक्षमार्ग की (**विधेःविधानात्**) विधि के विधान से (**त्वं धाता**) तुम ही विधाता (**असि**) हो (**भगवन्**) इस प्रकार हे भगवन्! (**व्यक्तं**) स्पष्ट रूप से (**त्वं एव**) आप ही (**पुरुषोत्तमः**) पुरुषोत्तम विष्णु (**असि**) हो।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति - हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल- भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ,
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि-शोषणाय॥ 26 ॥

अन्वयार्थ:- (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**त्रिभुवन**) तीन भुवन की (**आर्तिहराय**) पीड़ा के हरने वाले (**तुभ्यं**) आपको (**नमः**) नमस्कार है (**क्षितितल**) भूतल के (**अमलभूषणाय**) निर्मल आभूषण (**तुभ्यं**) आपको (**नमः**) नमस्कार है (**त्रिजगतः**) तीन जगत् के (**परमेश्वराय**) परमेश्वर (**तुभ्यं**) आपको (**नमः**) नमस्कार हो। (**जिन**) हे जिनेन्द्र! (**भवोदधि**) भवसागर के (**शोषणाय**) सुखाने वाले (**तुभ्यं**) आपको (**नमः**) नमस्कार है।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश! ।
दोषैरुपात्त - विबुधाश्रय जातगर्वैः ,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥ 27 ॥

अन्वयार्थ:- (**मुनीश!**) हे मुनियों के ईश्वर! (**यदि नाम**) यदि (**त्वं**) आप (**निरवकाशतया**) अवकाश रहित ठसाठस (**अशेषैः**) समस्त (**गुणैः**) गुणों के द्वारा (**संश्रितः**) आश्रय को प्राप्त हुए हैं, तो

(अत्र) इसमें **(कः)** कौन-सा **(विस्मयः)** आश्चर्य है? **(उपात्त)** प्राप्त किया है **(विविध)** अनेक पुरुषों का **(आश्रयजात)** आश्रय जिन्होंने, अतएव **(गर्वैः)** गर्व को प्राप्त **(दोषैः)** दोषों के द्वारा **(कदाचित्)** कभी **(स्वप्नान्तरे अपि)** स्वप्न दशा में भी **(न ईक्षितः)** नहीं देखे गए हों **(अत्रापि कः विस्मयः)** इसमें भी क्या आश्चर्य है?

उच्चैरशोक - तरु - संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरण-मस्त-तमो वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति॥ 28॥

अन्वयार्थः- **(उच्चैः)** ऊँचे **(अशोकतरु)** अशोक वृक्ष के नीचे **(संश्रितम्)** विराजमान **(उन्मयूखम्)** जिसकी किरणें ऊपर की ओर जा रही हैं, ऐसा **(भवतः)** आपका **(नितान्तम्)** अत्यन्त **(अमलम्)** निर्मल **(रूपं)** स्वरूप **(स्पष्ट)** स्पष्ट रूप से **(उल्लसत्)** चमकती हुई **(किरणं)** किरणों वाले तथा **(अस्ततमोवितानं)** अन्धकार के विस्तार को नाश करने वाले **(पयोधर)** मेघों के **(पार्श्ववर्ति)** समीपवर्ती **(रवेः बिम्बं)** सूर्य के बिम्ब के **(इव)** समान **(आभाति)** शोभायमान हो रहा है।

सिंहासने मणिमयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता वितानं ,
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः॥ 29॥

अन्वयार्थः- **(मणि-मयूख)** मणियों की किरणों के **(शिखा-विचित्रे)** विचित्र अग्रभाग से शोभित **(सिहांसने)** सिंहासन पर **(तव)** आपका **(कनकावदातम्)** सुवर्ण के समान स्वच्छ **(वपुः)** शरीर **(तुङ्गोदयाद्रि)** ऊँचे उदयाचल के **(शिरसि)** शिखर पर **(वियद्-विलसद्)** आकाश में शोभित **(अंशुलतावितानं)** किरणरूप लतासमूह

वाले **(सहस्ररश्मे:)** सूर्य के **(बिम्बं)** बिम्ब **(इव)** के समान **(विभ्राजते)** शोभायमान हो रहा है।

कुन्दावदात - चल - चामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपु: कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशांक - शुचि - निर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥ 30॥

अन्वयार्थ:- (कुन्दावदात) कुन्दपुष्प के समान निर्मल श्वेत **(चल-चामर)** हिलते हुए चँवरों की **(चारुशोभम्)** सुन्दर शोभा से युक्त **(कलधौत)** सुवर्ण के समान **(कान्तम्)** कांति वाला **(तव)** आपका **(वपु:)** शरीर **(उद्यच्छशांक)** उदय होते हुए चन्द्रमा के समान **(शुचि-निर्झर)** निर्मल झरनों की **(वारिधारम्)** जलधारा से युक्त **(सुरगिरे:)** सुमेरु पर्वत के **(शातकौम्भम्)** सुवर्णमयी **(उच्चैस्तटं)** ऊँचे तट के **(इव)** समान **(विभ्राजते)** सुभोभित हो रहा है।

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चै:स्थितं - स्थगितभानुकर - प्रतापम्।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगत: परमेश्वरत्वम्॥ 31॥

अन्वयार्थ:- (उच्चै: स्थितं) ऊपर स्थित **(शशाङ्ककांतम्)** चन्द्र के समान कांति वाले, **(स्थगित)** रोका है **(भानुकर)** सूर्य की किरणों के **(प्रतापम्)** प्रचंड ताप को जिन्होंने ऐसा तथा **(मुक्ताफल)** मोतियों के **(प्रकरजाल)** समूह वाली झालर से **(विवृद्धशोभम्)** बढ़ रही है शोभा जिनकी, ऐसे **(छत्रत्रयं)** तीन छत्र **(तव)** आपके **(त्रिजगत:)** तीन जगत् की **(परमेश्वरत्वम्)** परमेश्वरता को **(प्रख्यापयत्)** प्रकट करते हुए **(विभाति)** शोभायमान हो रहे हैं।

गंभीर - तार - रव - पूरित - दिग्विभाग -
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभसङ्गम-भूति-दक्ष:।

सद्धर्मराजजयघोषण - घोषकः सन् ,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ 32 ॥

अन्वयार्थः- (**गम्भीर**) गम्भीर (**तार-रव-पूरित**) उच्च सुन्दर शब्द से पूर दिया है (**दिग्विभागः**) दिशाओं के विभाग को जिसने ऐसा (**त्रैलोक्य**) तीन लोकों के (**लोक**) लोगों को (**शुभ**) शुभ (**सङ्गम**) समागम की (**भूति**) विभूति देने में (**दक्षः**) कुशल (**सद्धर्मराज**) सद्धर्मराज तीर्थंकर देव की (**जयघोषण**) जय घोषणा को (**घोषकः**) घोषित करने वाला (**दुन्दुभिः**) नगाड़ा या दुन्दुभि वाद्य (**ते**) आपके (**यशसः**) यश को (**प्रवादी**) सब ओर फैलाता (**सन्**) हुआ (**खे**) आकाश में (**ध्वनति**) शब्द कर रहा है।

मंदार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात -
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा।
गंधोद - बिन्दु - शुभमन्दमरुत् प्रपाता ,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां तति र्वा ॥33॥

अन्वयार्थः- (**गन्धोदबिन्दु**) सुगन्धित जल बिन्दुओं से युक्त (**शुभमन्द**) शुभ मन्द-मन्द (**मरुत्प्रपाता**) वायु के साथ गिरती हुई (**उद्धा**) ऊर्ध्वमुखी (**दिव्या**) दिव्य (**मन्दार**) मन्दार जाति के (**सुन्दर**) सुन्दर (**नमेरू**) नमेरु (**सुपारिजात**) पारिजात (**सन्तानकादि**) और सन्तानक आदि जाति के (**कुसुमोत्करवृष्टिः**) कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा (**ते**) आपके (**वचसां**) वचनों की (**ततिः वा**) पंक्ति के समान (**दिवः**) आकाश में (**पतति**) हो रही है।

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते ,
लोक - त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर - निरन्तर - भूरि - संख्या -
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥ 34 ॥

अन्वयार्थः- (**लोकत्रये**) तीनों लोकों के (**द्युतिमतां**) कान्ति वाले पदार्थों की (**द्युतिम्**) कांति को (**आक्षिपन्ती**) तिरस्कृत करती हुई (**ते विभो**) आपके (**शुम्भत्**) प्रकाशमान (**प्रभावलय**) भामण्डल की (**भूरिविभा**) अतिशय प्रभा (**प्रोद्यद्दिवाकर**) उदित होते हुए सूर्यों की (**निरन्तर**) निरन्तर (**भूरिसंख्या**) भारी संख्यावाली (**दीप्त्या अपि**) कान्ति से भी (**सोमसौम्याम्**) चन्द्र से शोभायमान (**निशाम् अपि**) रात्रि को भी (**जयति**) जीत रही है।

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्टः ,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटु-स्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणामगुणैः प्रयोज्यः॥ 35॥

अन्वयार्थः- (**स्वर्ग**) स्वर्ग और (**अपवर्ग**) मोक्ष (**गम-मार्ग**) जाने के मार्ग का (**विमार्गणेष्टः**) अन्वेषण करने के लिए अभीष्ट (**त्रिलोक्याः**) त्रिलोकवर्ती प्राणियों को (**सद्धर्मतत्त्व**) सत्य धर्म का तत्त्व (**कथनैकपटुः**) कथन करने में समर्थ (**विशदार्थ**) विशद अर्थ और (**सर्वभाषा**) सर्व भाषाओं के (**स्वभावपरिणाम**) स्वभाव में परिणत होने के (**गुणैः**) गुणों से (**प्रयोज्यः**) युक्त (**ते दिव्यध्वनि**) आपकी दिव्य ध्वनि (**भवति**) होती है।

उन्निद्र - हेम - नव - पङ्कज - पुञ्ज-कान्ति
पर्युल्लसन्नख-मयूख- शिखा-भिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥ 36॥

अन्वयार्थः- (**जिनेन्द्र**) हे जिनेन्द्र! (**उन्निद्र**) खिले हुए (**हेम**) स्वर्ण के (**नव**) नवीन (**पङ्कज**) कमलों के (**पुञ्ज**) समूह के समान (**कान्ति**) कान्ति वाले (**पर्युल्लसन्**) सर्व ओर फैलने वाली (**नखमयूख**) नखों की किरणों की (**शिखाभिरामौ**) प्रभा से सुन्दर

(**तव**) आपके (**पादौ**) चरण (**यत्र**) जहाँ पर (**पदानि**) कदम (**धत्तः**) रखते हैं (**तत्र**) वहाँ पर (**विबुधः**) देवगण (**पद्मानि**) कमलों की (**परिकल्पयन्ति**) रचना करते हैं।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि॥ 37॥

अन्वयार्थ:- (**जिनेन्द्र**) हे जिनेन्द्र! (**तव**) आपके (**धर्मोपदेशनविधौ**) धर्मोपदेश के समय (**इत्थं**) इस प्रकार (**यथा**) जैसी आठ प्रतिहार्य रूप (**विभूतिः**) विभूति (**अभूत्**) हुई (**तथा**) वैसी (**परस्य**) अन्य किसी देव की (**न**) नहीं हुई, (**प्रहतान्धकारा**) अन्धकार को नाश करने वाली (**यादृक्**) जैसी (**प्रभाः**) प्रभा (**दिनकृतः**) सूर्य की होती है (**तादृक्**) वैसी (**विकासिनः**) चमकते हुए (**अपि**) भी (**ग्रहगणस्य**) तारागणों की (**कुतः**) कैसे हो सकती है?

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद विवृद्धकोपम्।
ऐरावताभ - मिभमुद्धतमापतन्तं ,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भव-दाश्रितानाम्॥ 38॥

अन्वयार्थ:- (**श्च्योतन्**) झरते हुए (**मदाविल**) मद से मलिन (**विलोल**) चंचल (**कपोलमूल**) कपोल मूल-गण्डस्थल पर (**मत्त**) उन्मत्त (**भ्रमद्**) परिभ्रमण करते हुए (**भ्रमर**) भौरों के (**नाद**) शब्द से (**विवृद्धकोपम्**) जिसका क्रोध बढ़ रहा है, ऐसे (**ऐरावताभम्**) ऐरावत हाथी के समान विशाल (**आपतन्तम्**) सामने आते हुए (**उद्धतम्**) उद्धत (**इभम्**) हाथी को (**दृष्ट्वा**) देखकर भी (**भवदाश्रितानाम्**) आपके आश्रित जनों को (**भयं**) भय (**नो**) नहीं (**भवति**) होता है।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित -भूमि-भागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि ,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥ 39॥

अन्वयार्थः-(भिन्नेभ) विदारण किए गए हाथी के **(कुम्भगलद्)** मस्तक से झरते हुए **(उज्ज्वल)** उज्ज्वल वर्णवाले **(शोणिताक्त)** रक्त से सने हुए **(मुक्ताफल)** मोतियों के **(प्रकर)** समूह से **(भूषित)** भूषित किया है **(भूमिभागः)** भूमिभाग को जिसने ऐसा **(हरिणाधिपः अपि)** मृगराज भी **(क्रमगतं)** पंजों के मध्य में पड़े हुए **(ते)** आपके **(क्रमयुगाचल)** चरण-युगल रूप पर्वत के **(संश्रितम्)** आश्रित पुरुष पर **(बद्धक्रमः)** बंधे हुए पैरों वाला जैसा होकर **(न आक्रामति)** आक्रमण नहीं करता है।

कल्पान्त - कालपवनोद्धत - वह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वल-मुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तनजलं शमयत्यशेषम्॥ 40॥

अन्वयार्थः- (कल्पान्तकाल) प्रलय काल के **(पवनोद्धत)** पवन से उत्तेजित **(वह्निकल्पम्)** अग्नि के सदृश **(ज्वलितम्)** जलती हुई **(उज्ज्वलम्)** धधकती हुई **(मुत्स्फुलिंगं)** ऊपर की ओर उठते हुए फुलिंगों वाली **(इव)** मानो **(विश्वम्)** समस्त संसार को **(जिघत्सुं)** भस्म करने की इच्छुक हो, ऐसी **(सम्मुखं)** सामने **(आपतन्तम्)** आती हुई **(दावानलं)** दावाग्नि को **(त्वन्नामकीर्तनजलं)** आपका नामोच्चारणरूप जल **(अशेषं)** पूर्णरूप से **(शमयति)** शान्त कर देता है।

रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ - नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन - मुत्फण मापतन्तम्।
आक्रामति क्रम - युगेन निरस्तशङ्क -
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥41॥

अन्वयार्थः- (**यस्य**) जिस (**पुंसः**) पुरुष के (**हृदि**) हृदय में (**त्वन्नाम्**) आपके नाम रूपी (**नागदमनी**) नागदमनी जड़ी बूटी है (**सः**) वह (**निरस्तशङ्क**) निःशंक होकर (**रक्तेक्षणं**) लाल नेत्रों वाले (**समदकोकिल**) मदयुक्त कोयल के (**कण्ठनीलम्**) कण्ठ के समान काले (**क्रोधोद्धतं**) क्रोध से फुंकारते हुए (**उत्फणं**) ऊपर को फन उठाये हुए (**आपतन्तं**) सामने आते हए (**फणिनं**) साँप को (**क्रमयुगेन**) पाद युगल से (**आक्रामति**) लाँघ जाता है।

वल्गत्तुरङ्ग - गज - गर्जित - भीम - नाद -
माजौ बलं बलवतामपि - भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर - मयूख - शिखा - पविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति॥ 42॥

अन्वयार्थः- (**आजौ**) युद्ध के मैदान में (**त्वत्कीर्तनात्**) आपके नाम का कीर्तन करने से (**बलवताम्**) बलवन्त (**अरिभूपतीनां**) शत्रु राजाओं के (**वल्गत्**) उछलते हुए (**तुरङ्ग**) घोड़ों और (**गज-गर्जित**) हाथियों की गर्जना से (**भीमनादम्**) भयानक शब्द वाली (**बलं**) सेना (**उद्यद्-दिवाकर**) उदित होते हुए सूर्य की (**मयूखशिखा**) किरणों की शिखा से (**अपविद्धम्**) नष्ट हुए (**तम इव**) अन्धकार के समान (**आशु**) शीघ्र ही (**भिदां**) छिन्नभिन्न (**उपैति**) हो जाती है।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुरयोध - भीमे ।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जयेपक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते॥ 43॥

अन्वयार्थः- (**कुन्ताग्र**) भालों के अग्रभाग से (**भिन्न**) छिन्न-भिन्न हुए (**गज**) हाथियों के (**शोणित**) रक्तरूपी (**वारिवाह**) जल के प्रभाव में (**वेगावतार**) वेग से उतरने और (**तरणातुर**) तैरने के लिए आतुर (**योधभीमे**) योद्धाओं के कारण भयानक (**युद्धे**) युद्ध में (**त्वत् पादपङ्कज**) आपके चरण कमलरूपी (**वनाश्रयिणः**) वन का आश्रय लेने वाले पुरुष (**विजितदुर्जयजेयपक्षाः**) दुर्जय शत्रुपक्ष को पराजित करके (**जयं**) विजय (**लभन्ते**) प्राप्त करते हैं।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन पीठ-भयदोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग - शिखर - स्थित - यान - पात्रा -
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥44॥

अन्वयार्थः- (**क्षुभित**) क्षोभ युक्त (**भीषण**) भयंकर (**नक्र-चक्र**) मगर समूह और (**पाठीन-पीठ**) मच्छों की पीठ की टक्कर से (**भयदोल्वण**) भयोत्पादक एवं भयानक (**वाडवाग्नौ**) बड़वानल से युक्त (**अम्भोनिधौ**) समुद्र में (**रंगत्तरंग**) लहराती हुई लहरों के (**शिखरस्थित**) शिखर पर डगमगाते हुए (**यानपात्राः**) जहाज वाले भक्त (**भवतः**) आपके (**स्मरणात्**) स्मरण से (**त्रासं**) घबराहट को (**विहाय**) छोड़कर (**व्रजन्ति**) गमन करते हैं।

उद्भूत - भीषण - जलोदर - भार भुग्नाः ,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत - जीविताशाः।
त्वत्पाद - पङ्कज - रजोऽमृत - दिग्ध - देहाः,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्य-रूपाः ॥45॥

अन्वयार्थः- (**उद्भूत**) उत्पन्न हुए (**भीषण**) भयानक (**जलोदर**) जलोदर रोग के (**भारभुग्नाः**) भार से पीड़ित (**शोच्यां**) शोचनीय (**दशाम्**) दशा को (**उपगताः**) प्राप्त तथा (**च्युतजीविताशाः**) छोड़ दी है जीने की आशा जिन्होंने, (**मर्त्या**) ऐसे मनुष्य (**त्वत्पादपङ्कज**)

आपके चरण-कमलों की (**रजोऽमृत**) रजरूपी अमृत से (**दिग्धदेहाः**) देह का लिप्त करके (**मकरध्वज**) कामदेव के (**तुल्यरूपाः**) समान रूप वाले (**भवन्ति**) हो जाते हैं।

आपाद-कण्ठ-मुरुशृङ्खल-वेष्टिताङ्गाः,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवन्ति ॥ 46 ॥

अन्वयार्थः- (**आपादकण्ठं**) पैरों से लेकर कण्ठ तक (**उरुशृंङ्ख**) बड़ी-बड़ी सांकलों से (**वेष्टिताङ्गः**) वेष्टित शरीर वाले (**गाढम्**) अत्यन्त कस कर बाँधी गई (**बृहत्निगडकोटि**) बड़ी-बड़ी बेड़ियों के किनारों से (**निघृष्टाजङ्घा**) जिनकी जंघाएँ घिस गई हैं (**मनुजाः**) ऐसे मनुष्य (**त्वत्नाममन्त्रं**) आपके नामरूपी मन्त्र को (**अनिशं**) निरन्तर (**स्मरन्तः**) स्मरण करते हुए (**सद्यः**) शीघ्र ही (**स्वयं**) स्वयं अपने आप (**विगतबन्धभया**) बन्धन-भय से रहित (**भवन्ति**) हो जाते हैं।

मत्त - द्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि,
संग्राम - वारिधि - महोदर - बन्धनोत्थं।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥ 47 ॥

अन्वयार्थः- (**यः**) जो (**मतिमान्**) बुद्धिमान् (**तावकम्**) आपके (**इमं**) इस (**स्तवं**) स्तोत्र को (**अधीते**) पढ़ता है (**तस्य**) उसका (**मत्तद्विपेन्द्र**) मत्त गजराज (**मृगराज**) सिंह (**दवानल**) दावाग्नि (**अहि**) सर्प (**संग्राम**) युद्ध (**वारिधि**) समुद्र (**महोदर**) जलोदर और (**बन्धनोत्थम्**) बेड़ी-बन्धन से उत्पन्न हुआ (**भयं**) भय (**भिया इव**) डर कर ही मानो (**आशु**) शीघ्र (**नाशम्**) नाश को (**उपयाति**) प्राप्त हो जाता है।

स्तोत्र - स्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण विचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं ,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ 48 ॥

अन्वयार्थः- (**जिनेन्द्र**) हे जिनेश्वर देव! (**इह**) इस लोक में (**भक्त्या**) भक्तिपूर्वक (**मया**) मेरे द्वारा (**तव**) आपके (**गुणैः**) गुणों से (**निबद्धाम्**) निबद्ध (**रुचिर**) सुन्दर (**वर्ण**) वर्णरूपी (**विचित्र**) विविध प्रकार के (**पुष्पाम्**) पुष्पों द्वारा रचित (**स्तोत्रस्रजम्**) स्तुतिरूपी माला को (**यः जनः**) जो मनुष्य (**अजस्रं**) निरन्तर (**कण्ठगताम्**) कण्ठ में (**धत्ते**) धारण करता है (**तम्**) उस (**मानतुंग**) मानतुंग आचार्य को (**अवशा**) विवश होकर (**लक्ष्मीः**) सर्वप्रकार की लौकिक और पारलौकिक लक्ष्मी (**समुपैति**) प्राप्त होती है।

॥ इति मानतुंगाचार्यविरचितं भक्तामरस्तोत्रम् ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

विषापहार-स्तोत्रम्

स्वात्मस्थित: सर्वगत: समस्त-व्यापारवेदी विनिवृत्तसंग:।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्य:, पायादपायात्पुरुष: पुराण: ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :- (**स्वात्मस्थित: अपि सर्वगत:**) आत्म स्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक, (**समस्तव्यापारवेदी अपि**) सब व्यापारों के जानकार होकर भी (**विनिवृत्तसंग:**) परिग्रह से रहित, (**प्रवृद्धकाल: अपि अजर:**) दीर्घ आयु वाले होकर भी बुढ़ापे से रहित तथा (**वरेण्य:**) श्रेष्ठ (**पुराण: पुरुष:**) प्राचीन पुरुष-भगवान् वृषभनाथ (**न:**) हम सबको (**अपायात्**) विनाश से (**पायात्**) बचावें-रक्षित करें।

परैरचिन्त्यं युगभारमेक:, स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्य:।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानो:, किमप्रवेशे विशति प्रदीप: ॥ 2 ॥

अन्वयार्थ:- (**परै:**) दूसरों के द्वारा (**अचिन्त्यम्**) चिंतवन करने के अयोग्य (**युगभारम्**) कर्मयुग के भार को (**एक:**) अकेले ही (**वहन्**) धारण किये हुये तथा (**योगिभि: अपि**) मुनियों के द्वारा भी (**स्तोतुम् अशक्य:**) जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है ऐसे (**असौ वृषभ:**) वे भगवान् वृषभनाथ (**अद्य**) आज (**मे स्तुत्य:**) मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ। सो ठीक है (**भानो:**) सूर्य का (**अप्रवेश**) प्रवेश नहीं होने पर (**किम्**) क्या (**प्रदीप:**) दीपक (**न विशति**) प्रवेश नहीं करता? अर्थात् करता है।

तत्याज शक्र: शकनाभिमानं, नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं, वातायनेनेव निरूपयामि ॥ 3 ॥

अन्वयार्थ:- (**शक्र:**) इन्द्र ने (**शकनाभिमानम्**) स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान (**तत्याज**) छोड़ दिया था किन्तु (**अहम्**) मैं (**स्तवनानुबन्धम्**) स्तुति के उद्योग को (**न त्यजामि**) नहीं छोड़ रहा

हूँ। मैं **(वातायनेन इव)** झरोखे की तरह **(स्वल्पेन बोधेन)** थोड़े से ज्ञान के द्वारा **(ततः)** झरोखे और ज्ञान से **(अधिकार्थम्)** अधिक अर्थ को **(निरूपयामि)** निरूपित कर रहा हूँ।

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो, विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः।
वक्तुं कियान् कीदृश इत्यशक्यः,स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥4॥

अन्वयार्थः– (त्वम्) आप **(विश्वदृश्वा अपि)** सबको देखने वाले हैं किन्तु **(सकलैः)** सबके द्वारा **(अदृश्यः)** नहीं देखे जाते, आप **(अशेषम् विद्वान्)** सबको जानते हैं पर **(निखिलैः अवेद्यः)** सबके द्वारा नहीं जाने जाते। आप **(कियान् कीदृशः)** कितने और कैसे हैं **(इति)** यह भी **(वक्तुम् अशक्यः)** नहीं कहा जा सकता **(ततः)** उससे **(तव स्तुतिः)** आपकी स्तुति **(अशक्तिकथा)** मेरी असामर्थ्य की कहानी ही **(अस्तु)** हो।

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै–रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः, सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः॥ 5॥

अन्वयार्थः– (त्वम्) आपने **(बालम् इव)** बालक की तरह **(आत्मदोषैः)** अपने द्वारा किये गये अपराधों से **(व्यापीडितम्)** अत्यन्त पीड़ित **(लोकम्)** संसारी मनुष्यों को **(उल्लाघताम्)** नीरोगता **(अवापिपः)** प्राप्त कराई है। निश्चय से आप **(हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः)** भले–बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए **(सर्वस्य जन्तोः)** सब प्राणियों के **(बालवैद्यः)** बालवैद्य हैं।

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा–नद्यश्व इत्यच्युत! दर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्ताः, क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय॥ 6॥

अन्वयार्थः– (अच्युत) हे उदारता आदि गुणों से सहित जिनेन्द्रदेव! **(विवस्वान्)** सूर्य **(न दाता न हर्त्ता)** न देता है न अपहरण करता है सिर्फ **(अद्यश्वः)** आजकल **(इति)** इस तरह **(दर्शिताशः)** आशा

(दूसरे पक्ष में दिशा को) दिखाता हुआ **(अशक्तः सन्)** असमर्थ हो **(एवम्)** ऐसे ही-बिना लिए दिये ही **(सव्याजम्)** कपट सहित **(दिवसम्)** दिन को **(गमयति)** बिता देता है, किन्तु आप **(नताय)** नम्र मनुष्य के लिए **(क्षणेन)** क्षणभर में **(अभिमतम्)** इच्छित वस्तु **(दत्से)** दे देते हैं।

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्।
सदावदातद्युतिरेकरूपः, तयोस्त्वमादर्श इवावभासि॥ 7॥

अन्वयार्थः- **(त्वयि सुमुखः)** आपके अनुकूल चलने वाला पुरुष **(भक्त्या)** भक्ति से **(सुखानि)** सुखों को **(उपैति)** प्राप्त होता है **(च)** और **(विमुखः)** प्रतिकूल चलने वाला पुरुष **(स्वभावात्)** स्वभाव से ही **(दुःखम् 'उपैति')** दुःख पाता है। किन्तु **(त्वम्)** आप **(तयोः)** उन दोनों के आगे **(आदर्श इव)** दर्पण की तरह **(सदा)** हमेशा **(अवदातद्युतिः)** उज्ज्वल कान्तियुक्त तथा **(एकरूपः)** एक सदृश **(अवभासि)** शोभायमान रहते हैं।

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिः, मेरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव, व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि॥ 8॥

अन्वयार्थः- **(अब्धेः)** समुद्र की **(अगाधता)** गहराई **(तत्र अस्ति)** वहाँ है **(यतः सः पयोधिः)** जहाँ समुद्र है **(मेरोः)** सुमेरुपर्वत की **(तुंगा प्रकृतिः)** उन्नत प्रकृति-ऊँचाई **(तत्र)** वहाँ है **(यत्र सः)** जहाँ वह सुमेरुपर्वत है **(च)** और **(द्यावापृथिव्योः)** आकाश-पृथिवी की **(पृथुता)** विशालता भी **(तदैव)** उसी प्रकार है अर्थात् जहाँ आकाश और पृथिवी हैं वहीं उनकी विशालता है। परन्तु **(त्वदीया 'अगाधता, तुंगा प्रकृतिः पृथुता च')** आपकी गहराई, उन्नत प्रकृति और हृदय की विशालता ने **(भुवनान्तराणि)** तीनों लोकों के मध्यभाग को **(व्याप)** व्याप्त कर लिया है।

तवानवस्था परमार्थतत्त्वं, त्वया न गीतः पुनरागमश्च।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीः, विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वम्॥ 9॥

अन्वयार्थः- (**अनवस्था**) भ्रमणशीलता, परिवर्तनशीलता (**तव**) आपका (**परमार्थतत्त्वम्**) वास्तविक सिद्धान्त है (**च**) और (**त्वया**) आपके द्वारा (**पुनरागमः न गीतः**) मोक्ष से वापिस आने का उपदेश दिया नहीं गया है तथा (**त्वम्**) आप (**दृष्टम्**) प्रत्यक्ष इस लोक सम्बन्धी सुख को (**विहाय**) छोड़कर (**अदृष्टम्**) परलोक सम्बन्धी सुख को (**ऐषीः**) चाहते हैं, इस तरह (**त्वम्**) आप (**विरुद्धवृत्तः अपि**) विपरीत प्रवृत्तियुक्त होने पर भी (**समंजसः**) उचितता से युक्त हैं।

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मि, नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः, किं गृह्यते येन भवानजागः॥10॥

अन्वयार्थः- (**स्मरः**) काम (**भवता एव**) आपके द्वारा (**सुदग्धः**) अच्छी तरह भस्म किया गया है (**यदि नाम शम्भुः**) यदि आप कहें कि महादेव ने भी तो भस्म किया था, तो वह कहना ठीक नहीं, क्योंकि बाद में वह (**तस्मिन्**) उस काम के विषय में (**उद्धूलितात्मा**) कलंकित हो गया था और (**विष्णु अपि**) विष्णु ने भी (**वृन्दोपहतः 'सन्'**) वृन्दा-लक्ष्मी नामक स्त्री से प्रेरित हो (**अशेत**) शयन किया था (**येन**) यतश्च (**भवान् अजागः**) आप जागृत रहे अर्थात् काम निद्रा में अचेत नहीं हुए, इसलिए (**किं गृह्यते**) कामदेव के द्वारा आपकी कौन-सी वस्तु ग्रहण की जाती है, अर्थात् कोई भी नहीं।

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा, तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम्।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव!, स्तोकापवादेन जलाशयस्य॥ 11॥

अन्वयार्थः- (**वा**) अथवा (**स**) वह ब्रह्मादि देवों का समूह (**नीरजाः**) पाप रहित (**स्यात्**) हो और (**अपरः**) दूसरा देव (**अघवान् 'स्यात्'**) पाप सहित हो, इस तरह (**तद्दोषकीर्त्या एव**) उनके दोषों के

वर्णन करने मात्र से ही **(ते)** आपकी **(गुणित्वम् न)** गुण सहितता नहीं हैं। **(देव)** हे देव! **(अम्बुराशेः)** समुद्र की **(महिमा)** महिमा **(स्वतः 'स्यात्')** स्वभाव से ही होती है **(जलाशयस्य स्तोकापवादेन न)** 'यह छोटा है' - इस तरह तालाब वगैरह की निन्दा से नहीं होती।

कर्मस्थितिं जन्तुरनेकभूमिं,नयत्यमुं सा च परस्परस्य।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ, जिनेन्द्र नौनाविकयोरिवाख्यः॥ 12॥

अन्वयार्थः- **(जन्तुः)** जीव **(कर्मस्थितिम्)** कर्मों की स्थिति को **(अनेकभूमि)** अनेक जगह **(नयति)** ले जाता है **(च)** और **(सा)** वह कर्मों की स्थिति **(अमुम्)** उस जीव को **(अनेक-भूमिम्)** अनेक जगह ले जाती है। इस तरह **(जिनेन्द्र)** हे जिनेन्द्रदेव! **(त्वम्)** आपने **(भवाब्धे)** संसाररूप समुद्र में **(नौनाविकयोः इव)** नाव और खेवटिया की तरह **(तयोः)** उन दोनों में **(हि)** निश्चय से **(परस्परस्य)** एक दूसरे का **(नेतृभावम्)** नेतृत्व **(आख्यः)** कहा है।

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरंति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहम्, निपीडयंति स्फुटमत्वदीयाः॥ 13॥

अन्वयार्थः- जिस प्रकार **(बालाः)** बालक **(तैलाय)** तेल के लिए **(सिकतासमूहम्)** बालू के समूह को **(निपीडयन्ति)** पेलते हैं, **(स्फुटम्)** ठीक उसी प्रकार **(अत्वदीयाः)** आपके प्रतिकूल चलने वाले पुरुष **(सुखाय)** सुख के लिए **(दुःखानि)** दुःखों को, **(गुणाय)** गुण के लिए **(दोषान्)** दोषों को और **(धर्माय)** धर्म के लिए **(पापानि)** पापों को **(समाचरन्ति)** समाचरित करते हैं।

विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ 14॥

अन्वयार्थः-**(अहो)** आश्चर्य है कि लोग **(विषापहारम्)** विष को दूर करने वाले **(मणिम्)** मणि को, **(औषधानि)** औषधियों को,

(मन्त्रम्) मन्त्र को **(च)** और **(रसायनं)** रसायन को **(समुद्दिश्य)** उद्देश्य कर **(भ्राम्यन्ति)** यहाँ-वहाँ घूमते हैं, किंतु **(त्वम्)** आप ही मणि हैं, औषधि हैं, मन्त्र हैं और रसायन हैं **(इति)** ऐसा **(स्मरन्ति)** ख्याल नहीं करते। क्योंकि **(तानि)** वे मणि आदि **(तव एव)** आपके ही **(पर्यायनामानि)** पर्यायवाची शब्द हैं।

चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं, देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं, सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः॥ 15॥

अन्वयार्थः- **(त्वम्)** आप **(चित्ते)** अपने हृदय में **(किंचित्)** कुछ भी **(न कृतवान् असि)** नहीं करते हैं- रखते हैं, किन्तु **(येन)** जिसके द्वारा **(देवः)** आप **(चेतसि)** हृदय में **(कृतः)** धारण किये गये हैं **(तेन)** उसके द्वारा **(सर्वम्)** समस्त **(जगत्)** संसार **(हस्ते कृतम्)** हाथों में कर लिया गया है- अर्थात् उसने सब कुछ पा लिया है यह **(विचित्रम्)** आश्चर्य की बात है और आप **(चित्तबाह्यः अपि)** चित्त से रहित हुए भी **(सुखेन जीवति)** सुख से जीवित हैं यह आश्चर्य है।

त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी, स्वामीति संख्यानियतेरमीषाम्।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यत्, तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम्॥ 16॥

अन्वयार्थः- **(त्वम्)** आप **(त्रिकालतत्त्वम्)** भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों कालों के पदार्थों को **(अवैः)** जानते हैं तथा **(त्रिलोकी स्वामी)** ऊर्ध्व, मध्य, पाताल, तीनों लोकों के स्वामी हैं। **(इति संख्या)** इस प्रकार की संख्या **(अमीषां नियतेः)** उन पदार्थों के निश्चित संख्या वाले होने से **(युज्यते)** ठीक हो सकती है, परन्तु **(बोधाधिपत्यं प्रति न)** ज्ञान के साम्राज्य के प्रति पूर्वोक्त प्रकार की संख्या ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि **(इदम्)** ज्ञान **(चेत्)** यदि **(ते अन्ये अपि अभविष्यन्)** वे तथा और भी पदार्थ होते **(तर्हि)** तो **(अमून् अपि)** उन्हें भी **(व्याप्स्यत्)** व्याप्त कर लेता, जान लेता।

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं, नागम्यरूपस्य तवोपकारी।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो, रुद्बिभ्रतच्छत्रमिवादरेण॥ 17॥

अन्वयार्थः- (**नाकस्य पत्युः**) इन्द्र की (**रम्यम्**) मनोहर (**परिकर्म**) सेवा (**अगम्यरूपस्य**) अज्ञेय है स्वरूप जिनका ऐसे (**तव**) आपका (**उपकारी न**) उपकार करने वाली नहीं है, किन्तु जिसका स्वरूप अप्राप्य है, ऐसे (**भानोः**) सूर्य के लिए (**आदरेण**) आदरपूर्वक (**छत्रम् उद्बिभ्रतः इव**) छत्र धारण करने वाले की तरह (**तस्य एव**) उस इन्द्र के ही (**स्वसुखस्य**) आत्म-सुख का (**हेतुः**) कारण है।

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः,स चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं,तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते॥ 18॥

अन्वयार्थः- (**उपेक्षकः त्वम् क्व**) रागद्वेष रहित आप कहाँ? और (**सुखोपदेशः क्व**) सुख का उपदेश देना कहाँ? (**चेत्**) यदि (**सः**) सुख का उपदेश आप देते हैं (**तर्हि**) इच्छा के विरुद्ध बोलना ही कहाँ है? अर्थात् आपके इच्छा नहीं है, ऐसा कथन क्यों किया जाता है? (**असौ क्व**) इच्छा के प्रतिकूल बोलना कहाँ? (**वा**) और (**सर्वजगत्प्रियत्वम् क्व**) सब जीवों को प्रिय होना कहाँ? इस तरह जिस कारण से आपका प्रत्येक बात में विरोध है, (**तत्**) उस कारण से मैं (**ते यथातथ्यम् नो अवेविचम्**) आपकी वास्तविकता-असली रूप का विवेचन नहीं कर सकता।

तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेः, नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः॥ 19॥

अन्वयार्थः- (**तुगांत् अकिंचनात् च**) उदार चित्त वाले दरिद्र मनुष्य से भी (**यत्फलम्**) जो फल (**प्राप्यम् अस्ति**) प्राप्त हो सकता है, (**तत्**) वह (**समृद्धात् धनेश्वरादेः न**) सम्पत्तिशाली धनाढ्यों से नहीं प्राप्त हो सकता है। ठीक ही तो है, (**निरम्भसः अपि उच्चतमात् अद्रेः**

इव) पानी से शून्य होने पर भी अत्यन्त ऊँचे पहाड़ के समान **(पयोधेः)** समुद्र से **(एका अपि धुनी)** एक भी नदी **(न निर्याति)** नहीं निकलती है।

त्रैलोक्यसेवानियमायदण्डम्, दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यम्, तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु॥ 20॥

अन्वयार्थः- (यत्) जिस कारण से **(इन्द्रः)** इन्द्र ने **(विनयेन)** विनयपूर्वक **(त्रैलोक्यसेवानियमाय)** तीन लोक के जीवों की सेवा के नियम के लिए अर्थात् मैं त्रिलोक के जीवों की सेवा करूँगा और उन्हें धर्म के मार्ग पर लगाऊँगा; इस उद्देश्य से **(दण्डम्)** दण्ड **(दध्रे)** धारण किया था **(तत्)** उस कारण से **(प्रातिहार्यम्)** प्रतीहारपना **(तस्य स्यात्)** इन्द्र के ही हो **(भवतः कुतस्त्यम्)** आपके कहाँ से आया? **(यदि वा)** अथवा **(तत्कर्मयोगात्)** तीर्थंकर नामकर्म का संयोग होने से या इन्द्र के उस कार्य में प्रेरक होने से **(तव अस्तु)** आपके भी प्रातिहार्य-प्रतीहारपना हो।

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः, श्रीमान्न कश्चित् कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकार-स्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम्॥ 21॥

अन्वयार्थः- (निःस्वः) निर्धन पुरुष **(श्रिया परम्)** लक्ष्मी से श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को **(साधु)** अच्छी तरह आदरभाव से **(पश्यति)** देखता है, किन्तु **(त्वदन्यः)** आपसे भिन्न **(कश्चित्)** कोई **(श्रीमान्)** सम्पत्तिशाली पुरुष **(कृपणम्)** निर्धन को **(साधु न पश्यति)** अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है **(अन्धकारस्थायी)** अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य **(प्रकाशस्थितम्)** उजाले में ठहरे हुए पुरुष को **(यथा)** जिस प्रकार **(ईक्षते)** देख लेता है **(तथा)** उसी प्रकार **(असौ)** उजाले में स्थित पुरुष **(तमःस्थम्)** अँधेरे में स्थित पुरुष को **(न ईक्षते)** नहीं देख पाता।

स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि, प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥ 22॥

अन्वयार्थः- **(प्रत्यक्षम्)** यह प्रकट है कि **(यः)** जो मनुष्य **(स्ववृद्धिनिः श्वासनिमेषभाजि)** अपनी वृद्धि, श्वासोच्छ्वास और आँखों की टिमकार को प्राप्त **(आत्मानुभवे अपि)** अपने आपके अनुभव करने में **(मूढः)** मूर्ख है, **(स लोकः)** वह मनुष्य **(चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-स्वरूपम्)** सम्पूर्ण पदार्थों को जाने वाला ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसे **(अध्यक्षम्)** अध्यात्मस्वरूप आपको **(किं च अवैति)** कैसे जान सकता है?

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव, त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यम्, पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति ॥ 23 ॥

अन्वयार्थः- **(देव)** हे नाथ! **(ये)** जो मनुष्य **(तस्य आत्मजः)** आप उसके पुत्र हो और **(तस्य पिता)** उसके पिता हो **(इति)** इस प्रकार **(कुलम् प्रकाश्य)** कुल का वर्णन कर **(त्वाम् अवगायन्ति)** आपका अपमान करते हैं, **(ते)** वे **(अद्य अपि)** अब भी **(पाणौ कृतम्)** हाथ में आये हुए **(हेम)** सुवर्ण को **(आश्मनम्)** पत्थर से पैदा हुआ है, **(इति)** इस हेतु से **(पुनः)** फिर **(अवश्यं त्यजन्ति)** अवश्य ही छोड़ देते हैं?

दत्तश्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः, सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुं, मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥ 24 ॥

अन्वयार्थः- मोह के द्वारा **(त्रिलोक्याम्)** तीनों लोकों में **(पटहः)** विजय का नगाड़ा **(दत्तः)** दिया गया- बजाया गया उससे जो **(सुरासुराः)** सुर और असुर **(अभिभूताः)** तिरस्कृत हुए **(सः)** वह **(तस्य)** उस मोह का **(महान् लाभः)** बड़ा लाभ हुआ, किन्तु **(त्वयि)** आपके विषय में **(विरोद्धुम्)** विरोध करने के लिए **(मोहस्य)** मोह को **(कः)** कौन-सा **(मोहः)** भ्रम हो सकता था अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि **(बलवद्विरोधः)** बलवान् के साथ विरोध करना **(मूलस्य नाशः)** मानो मूल का नाश करना है।

मार्गत्वयैको ददृशे विमुक्तेः, चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन, त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोकः ॥ 25 ॥

अन्वयार्थः- (**त्वया**) आपके द्वारा (**एकः**) एक (**विमुक्तेः**) मोक्ष का ही (**मार्गः**) मार्ग (**ददृशे**) देखा गया है और (**परेण**) दूसरों के द्वारा (**चतुर्गतीनाम्**) चारों गतियों का (**गहनम्**) सघन वन (**ददृशे**) देखा गया है, मानो इसलिए (**त्वम्**) आपने (**मया सर्वदृष्टम्**) मैंने सब कुछ देखा है, (**इति स्मयेन**) इस अभिमान से (**कदाचित्**) कभी भी (**भुजम्**) अपनी भुजा को (**मा आलुलोकः**) नहीं देखा था।

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।
संसारभोगस्य वियोगभावो, विवक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥ 26 ॥

अन्वयार्थः- (**स्वर्भानुः**) राहु (**अर्कस्य**) सूर्य का, (**अम्भः**) पानी (**हविभुर्जः**) अग्नि का (**कल्पांतवातः**) प्रलयकाल की वायु (**अम्बुनिधेः**) समुद्र का तथा (**वियोगभावः**) विरहभाव (**संसारभोगस्य**) संसार के भोगों का (**विघातः**) नाश करने वाला है, इस तरह (**त्वदन्ये**) आपसे भिन्न सब पदार्थ (**विपक्षपूर्वाभ्युदयाः 'सन्ति'**) विनाश के साथ ही उदय होते हैं।

अजानतस्तवां नमतः फलं यत्, तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधानः, तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥ 27 ॥

अन्वयार्थः- (**त्वाम्**) आपको (**अजानतः**) बिना जाने ही (**नमतः**) नमस्कार करने वाले पुरुष को (**यत् फलम्**) जो फल होता है, (**तत्**) वह फल (**अन्यं देवता इति जानतः**) दूसरे को 'देवता है' इस तरह जानने वाले पुरुष को (**न तु**) नहीं होता। क्योंकि (**हरिन्मणिम्**) हरे मणि को (**काचधिया**) काँच की बुद्धि से (**दधानः**) धारण करने वाले पुरुष (**तं तस्य बुद्ध्या वहतः**) हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करने वाले पुरुष की अपेक्षा (**रिक्तः न**) दरिद्र नहीं है।

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैः, दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं, दुष्टं कपालस्य च मंगलत्वम्॥ 28॥

अन्वयार्थः- (**प्रशस्तवाचः**) सुन्दर बोली बोलने वाले (**चतुराः**) चतुर मनुष्य (**कषायैः दग्धस्य**) कषायों से जले हुए पुरुष के भी (**देवव्यवहारम् आहुः**) देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है (**हि**) क्योंकि (**गतस्य दीपस्य**) बुझे हुए दीपक का (**नंदितत्वं**) बढ़ना (**च**) और (**कपालस्य**) फूटे हुए घड़े का (**मंगलत्वम्**) मंगलपन (**दृष्टम्**) देखा गया है।

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं, हितं वचस्ते निशम्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति, ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण॥ 29॥

अन्वयार्थः- (**नानार्थम्**) अनेक अर्थों के प्रतिपादक तथा (**एकार्थम्**) एक ही प्रयोजन युक्त (**त्वदुक्तम्**) आपके कहे हुए (**अदः हितं वचः**) इन हितकारी वचनों को (**निशम्य**) सुनकर (**के**) कौन मनुष्य (**ते वक्तुः**) आपके जैसे वक्ता को (**निर्दोषताम्**) निर्दोषता को (**न विभावयन्ति**) नहीं अनुभव करते हैं, अर्थात् सभी करते हैं। जैसे (**यः**) जो (**ज्वरेण मुक्तः 'भवति'**) ज्वर से मुक्त हो जाता है (**सः**) वह (**स्वरेण सुगमः 'भवति'**) स्वर से सुगम हो जाता है अर्थात् स्वर से उसकी अच्छी तरह पहिचान हो जाती है।

न क्वापि वांछाववृते च वाक्ते, काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः।
न पूरयाम्यंबुधिमित्युदंशुः, स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति॥ 30॥

अन्वयार्थः- (**ते**) आपकी (**क्वापि**) किसी भी वस्तु में (**वांछा न**) इच्छा नहीं है (**च**) और (**वाक् ववृते**) वचन प्रवृत्त होते हैं। सचमुच में (**क्वचित् काले**) किसी काल में (**तथा**) वैसा (**कः अपि नियोगः**) कोई नियोग-नियम ही होता है। (**हि**) क्योंकि (**शीतद्युतिः**) चन्द्रमा (**अम्बुधिम् पूरयामि**) मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ (**इति**) इसलिए (**उदंशुः न भवति**) उदित नहीं होता किन्तु (**स्वयम् अभ्युदेति**) स्वभाव से ही उदित होता है।

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्नाः, बहुप्रकारा बहवस्तवेति।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवनेन तेषां, गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति॥ 31॥

अन्वयार्थः- (**तव**) आपके (**गुणाः**) गुण (**गभीराः**) गम्भीर, (**परमाः**) उत्कृष्ट, (**प्रसन्नाः**) उज्ज्वल (**बहुप्रकाराः**) अनेक प्रकार के और (**बहवः**) बहुत हैं; (**इति अयम्**) इस प्रकार (**स्तवनेन**) स्तुति के द्वारा ही (**तेषां गुणानां**) उन गुणों का (**अन्तो दृष्टः**) अन्त देखा गया है। (**अतः परः गुणानां अन्तः किम् अस्ति**) इसके सिवाय गुणों का अन्त क्या होता है? अर्थात् नहीं।

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्॥ 32॥

अन्वयार्थः- (**स्तुत्या हि**) स्तुति के द्वारा ही (**अभिमतम् न**) इच्छित वस्तु की सिद्धि नहीं होती, (**परम्**) किन्तु (**भक्त्या स्मृत्या च प्रणत्या**) भक्ति, स्मृति और नमस्कृति से भी होती है, (**ततः**) इसलिए मैं (**नित्यम्**) हमेशा (**देवम् भजामि,स्मरामि, प्रणमामि**) आपकी भक्ति करता हूँ, आपका स्मरण करता हूँ और प्रणाम करता हूँ। (**हि**) क्योंकि (**फलम्**) इच्छित वस्तु की प्राप्तिरूप फल को (**केन अपि उपायेन**) किसी भी उपाय से (**साध्यम्**) सिद्ध कर लेना चाहिए।

ततस्त्रिलोकी नगराधिदेवं, नित्यं परंज्योतिरनन्तशक्तिम्।
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं, नमाम्यहं वन्द्यमवंदितारम्॥ 33॥

अन्वयार्थः- (**ततः**) इसलिए (**अहम्**) मैं (**त्रिलोकीनगराधिदेवम्**) तीनलोक रूप नगर के अधिपति (**नित्यम्**) विनाश रहित, (**परम्**) श्रेष्ठ (**ज्योतिः**) ज्ञानज्योति स्वरूप (**अनन्तशक्तिम्**) अनन्तवीर्य से सहित, (**अपुण्यपापम्**) स्वयं पुण्य और पाप से रहित होकर भी (**परपुण्यहेतुम्**) दूसरे के पुण्य के कारण तथा (**वन्द्यम्**) वन्दना करने के योग्य होकर भी स्वयं (**अवन्दितारम्**) किसी को वन्दना नहीं करने वाले (**भवन्तम्**) आपको (**नमामि**) नमस्कार करता हूँ।

अशब्दमस्पर्शमरूपगन्धं, त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम्।
सर्वस्य मातारममेयमन्यैः, जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि॥ 34॥

अन्वयार्थः- (**अशब्दम्**) शब्दरहित, (**अस्पर्शम्**) स्पर्शरहित (**अरूप-गन्धम्**) रूप और गन्धरहित तथा (**नीरसम्**) रसरहित होकर भी (**तद्विषयावबोधम्**) उनके ज्ञान से सहित (**सर्वस्य मातारम्**) सबके जानने वाले होकर भी (**अन्यैः**) दूसरों के द्वारा (**अमेयम्**) नहीं जानने के योग्य तथा (**अस्मार्यम्**) जिनका स्मरण नहीं किया जा सकता ऐसे (**जिनेन्द्रम् अनुस्मरामि**) जिनेन्द्र भगवान् का प्रतिक्षण स्मरण करता हूँ- ध्यान करता हूँ।

अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं, निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं, पतिं जिनानां शरणं व्रजामि॥ 35॥

अन्वयार्थः- (**अगाधम्**) गम्भीर (**अन्यैः**) दूसरों के द्वारा (**मनसा अपि-अलंघ्यम्**) मन से भी उल्लंघन करने के अयोग्य अर्थात् अचिन्त्य (**निष्किंचनम्**) निर्धन होने पर भी (**अर्थवद्भिः**) धनाढ्यों के द्वारा (**प्रार्थितम्**) याचित (**विश्वस्य पारम्**) सबके पारस्वरूप होने पर भी (**अदृष्टपारम्**) जिनका पार अन्त कोई देख नहीं सका है, ऐसे (**तम् जिनानाम् पतिम्**) उन जिनेन्द्रदेव की (**शरणम्**) शरण को प्राप्त होता हूँ।

त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते, यो वर्द्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रिकल्पः, पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोऽभूत्॥ 36॥

अन्वयार्थः- (**त्रैलोक्यदीक्षागुरवे ते नमः**) त्रिभुवन के जीवों के दीक्षागुरु स्वरूप आपके लिए नमस्कार हो, (**यः**) जो आप (**वर्धमानः अपि**) क्रम से उन्नति को प्राप्त होते हुए भी (**निजोन्नतः**) स्वयमेव उन्नत (**अभूत्**) हुए थे। (**मेरुः**) मेरुपर्वत (**प्राक्**) पहले (**गण्डशैलः**) गोल पत्थरों का ढेर, (**पुनः**) फिर (**अद्रिकल्पः**) पहाड़ और (**पश्चात्**) फिर (**कुलपर्वतः**) कुलाचल (**न अभूत्**) नहीं हुआ था किन्तु स्वभाव से ही वैसा था।

स्वयं प्रकाशस्य दिवा निशा वा, न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेकरूपं, वन्दे विभुं कालकलामतीतम्॥ 37॥

अन्वयार्थः- **(स्वयं प्रकाशस्य यस्य)** स्वयं प्रकाशमान रहने वाले जिसके **(दिवा निशा वा)** दिन और रात की तरह **(न बाध्यता, न बाधकत्वम्)** न बाध्यता है और न बाधकपना भी। इसी प्रकार जिनके **(न लाघवं गौरवम्)** न लाघव है न गौरव भी, उन **(एकरूपम्)** एकरूप रहने वाले और **(कालकलाम् अतीतम्)** काल-कला से रहित अर्थात् अन्त रहित **(विभुम् वन्दे)** परमेश्वर की वन्दना करता हूँ।

इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्यात्, वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्,कश्छायया याचितयात्मलाभः॥38॥

अन्वयार्थः- **(देव)** हे देव! **(इति स्तुतिम् विधाय)** इस प्रकार स्तुति करके मैं **(दैन्यात्)** दीनभाव से **(वरम् न याचे)** वरदान नहीं माँगता, क्योंकि **(त्वम् उपेक्षकः असि)** आप उपेक्षक हैं, राग-द्वेष से रहित हैं अथवा **(तरुम् संश्रयतः)** वृक्ष का आश्रय करने वाले पुरुष को **(छाया स्वतः स्यात्)** छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। अतः **(याचितया छायया कः आत्मलाभः)** छाया की याचना से क्या लाभ है?

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधः, त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिं।
करिष्यते देव! तथा कृपां मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः॥ 39॥

अन्वयार्थः- **(अथ दित्सा अस्ति)** यदि आपकी कुछ देने की इच्छा है **(यदि वा)** अथवा वरदान माँगो ऐसा **(उपरोधः 'अस्ति')** आग्रह है तो **(त्वयि एवं सक्ताम्)** आपमें लीन **(भक्तिबुद्धिम्)** भक्तिमयी भगवान् को **(दिश)** देओ। मेरा विश्वास है कि **(देव)** हे देव! **(मे)** मुझ पर **(तथा)** वैसी **(कृपाम् करिष्यते)** दया करेंगे **(आत्मपोष्ये)** अपने द्वारा पोषण करने के योग्य शिष्य पर **(को वा सूरिः)** कौन पण्डित पुरुष **(सुमुखो न 'भवति')** अनुकूल नहीं होता! अर्थात् सभी होते हैं।

वितरति विहिता यथा कंथचित्, जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषात्, दिशति सुखानि यशो धनं जयं च॥40॥

अन्वयार्थः- (**जिन**) हे जिनेन्द्र! (**यथाकथञ्चित्**) जिस किसी तरह (**विहिता**) की गई (**भक्तिः**) भक्ति (**विनताय**) नम्र मनुष्य के लिए (**मनीषितानि**) इच्छित वस्तुएँ (**वितरति**) देती हैं, (**पुनः**) फिर (**त्वयि**) आपके विषय में की गई (**नुतिविषया**) स्तुति विषयक भक्ति (**विशेषात्**) विशेषरूप से (**सुखानि**) सुख, (**यशः**) कीर्ति, (**धनम्**) धन-सम्पत्ति (**च**) और (**जयम्**) जीत को (**दिशति**) देती है।

॥ इति धनञ्जयकविकृतं विषापहार-स्तोत्रम्॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

एकीभाव-स्तोत्रम्

(छंद-मंदाक्रांता)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो,
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्,
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :- (**जिनरवे**) हे जिनसूर्य! (**मया सह**) मेरी आत्मा के साथ (**स्वयं**) अपने आप (**एकीभावं**) तन्मयता को (**गत इव**) प्राप्त हुये की तरह (**दुर्निवारः**) बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य (**यः**) जो (**कर्मबंधः**) ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से होने वाला चार प्रकार का कर्मबंध (**भव-भवगतः**) (**सन्**) प्रत्येक पर्याय में साथ जाता हुआ (**घोरम्**) भयानक (**दुःखम्**) दुःख को (**करोति**) करता है। (**त्वयि**) आपके विषय में होने वाली (**भक्ति**) भक्ति-अनुरागविशेष (**चेत्**) यदि (**तस्यापि अस्य**) उस कर्मबन्ध और इस दुःख के भी (**उन्मुक्तये**) छुड़ाने-दूर करने के लिए है (**तर्हि**) तो फिर (**तया**) उस भक्ति के द्वारा (**अपरः**) दूसरा (**कः**) कौन (**तापहेतुः**) सन्ताप का कारण (**जेतुं शक्यः न भवति**) जीता नहीं जा सकता? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है।

ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्त - विध्वंस - हेतुं,
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानः,
तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ 2 ॥

अन्वयार्थः- (**हे जिनवर**) कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हे जिनेन्द्र! जब कि (**तत्त्वविद्याभियुक्ताः**) तत्त्वज्ञानी गणधरादिदेव (**चिरं**) चिरकाल से (**त्वाम् एव**) आपको ही (**दुरितनिवहध्वान्त-**

विध्वंसहेतु) पाप समूहरूपी अन्धकार के नाश करने में कारणभूत (**ज्योतीरूपम्**) तेजरूप ज्ञानस्वरूप (**आहुः**) कहते हैं। (**च**) और आप (**मम**) मेरे (**चेतोवासे**) मनरूपी मन्दिर में (**स्फारं**) अत्यन्त रूप से निरन्तर (**उद्भासमानः**) प्रकाशमान (**भवसि**) हो रहे हो तब (**तस्मिन्**) उस मन्दिर में (**वस्तुतः**) निश्चय से (**अंहः तमः**) पापरूपी अन्धकार (**वस्तुं**) निवास करने के लिए-ठहरने के लिए (**कथमिव**) किस तरह (**ईष्टे**) समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्र - मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीक - मध्यान्,
निष्कास्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः॥ 3॥

अन्वयार्थः- हे जिनेन्द्र! (**आनन्दाश्रुस्नपितवदनं च गद्गदं**) आनन्दाश्रुओं-हर्षरूपी आँसुओं से मुख को प्रक्षालित करता हुआ और अव्यक्त ध्वनि से (**अभिजल्पन्**) स्तुति करता हुआ (**यः**) जो मनुष्य (**स्वयं**) आपमें (**दृढ़मनाः**) स्थिर चित्त होकर (**स्तोत्रमंत्रैः**) स्तवनरूप मंत्रों से (**भवन्तम्**) आपको (**अयेत्**) पूजता है-स्तुति करता है।(**तस्य**) उसके (**सुचिरम्**) चिरकाल से (**अभ्यस्तात् अपि**) परिचित भी (**देहवल्मीकमध्यात्**) शरीर रूपी वामी के मध्य से-बीच से (**विविध-विषमव्याधयः**) अनेक प्रकार के कठिन रोग रूपी (**काद्रवेयाः**) साँप (**निष्कास्यन्ते**) बाहर निकाल दिये जाते हैं।

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वांत गेहं प्रविष्टः,
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी करोषि ॥4॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे भगवन्! (**भव्यपुण्यात्**) भव्यजीवों के पुण्य के द्वारा (**इह**) यहाँ पर (**त्रिदिवभवनात्**) स्वर्ग लोक से माता के

गर्भ में **(एष्यता)** आने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(प्राक्एव)** पहले ही जब **(इदम्)** यह **(पृथ्वीचक्रम्)** भूमण्डल पृथ्वी-मण्डल **(कनकमयतां)** सुवर्णमयता को **(निन्ये)** प्राप्त कराया गया था, तब **(जिन)** हे जिनेन्द्र! **(ध्यानद्वारं)** ध्यानरूपी दरवाजे से युक्त **(मम)** मेरे **(रुचिकरम्)** सुन्दर **(स्वांतगेहं)** मन रूप मन्दिर में **(प्रविष्टं)** प्रविष्ट हुए **(इदं वपुः)** इस शरीर को-कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को **(यत्)** जो **(सुवर्णीकरोषि)** सुवर्णमय कर रहे हो **(तत्किं चित्रम्)** उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ नहीं।

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुः,
त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां,
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ 5 ॥

अन्वयार्थः- **(भगवन्)** हे भगवन्! जब **(त्वम्)** आप **(लोकस्य)** संसार के प्राणियों के **(निर्निमित्तेन)** स्वार्थ रहित-बिना किसी प्रयोजन के **(एकः)** अद्वितीय **(बन्धु असि)** बन्धु-हित करने वाले हो और **(असौ)** यह **(सकलविषया शक्तिः)** सब पदार्थों को विषय करने वाली शक्ति भी **(त्वयि)** आपमें ही **(अप्रत्यनीका)** बाधा रहित है, **(ततः)** तब **(भक्तिस्फीताम्)** भक्ति के द्वारा विस्तृत **(मामिकां)** मेरी-हमारी **(चित्तशय्याम्)** मन रूपी पवित्र शय्या पर **(अधिवसन्)** निवास करने वाले आप **(मयि उत्पन्नम्)** मुझमें उत्पन्न हुए **(क्लेशयूथं)** दुःख समूह को **(कथमिव)** कैसे **(सहेथाः)** सहन करोगे अर्थात् नहीं करोगे।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी।
तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ 6 ॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे स्वामिन्! (**मया**) मेरे द्वारा (**जन्माटव्यां**) संसार रूपी अटवी में (**दीर्घं**) बहुत काल तक (**भ्रमित्वा**) घूमकर अथवा घूमने के बाद (**तव**) आपकी (**इयम्**) यह (**नयकथा**) स्याद्वाद नय कथा रूपी (**स्फारपीयूषवापी**) बड़ी भार अमृत रस से भरी हुई बावड़ी (**कथमपि**) किसी तरह बड़े कष्ट से (**प्राप्ता एव**) प्राप्त ही कर ली गई है। फिर भी, (**हिमकरहिमव्यूहशीते**) चन्द्रमा और बर्फ के समूह से भी शीतल (**तस्याः**) उसके (**मध्ये**) बीच में (**नितान्तम्**) अत्यन्त (**निर्मग्नं**) डूबे हुए (**माम्**) मुझको (**दुःखदावोपतापाः**) दुःखरूपी दावानल का सन्ताप (**कथं न जहति**) क्यों नहीं छोड़ता है।

पादन्यासादपि च पुनतो, यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः, श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्नमामभ्युपैति॥ 7॥

अन्वयार्थः- हे जिनेन्द्र! (**यात्रया**) विहार के द्वारा (**त्रिलोकीम्**) तीनों लोकों को (**पुनतः**) पवित्र करने वाले (**ते**) आपके (**पादन्यासादपि**) चरणों के रखने मात्र से ही जब (**पद्म**) कमल (**हेमाभासः**) सुवर्ण-सी कान्ति वाला (**सुरभिः**) सुगन्धित (**च**) और (**श्रीनिवासः**) लक्ष्मी का गृह-शोभा का स्थान हो जाता है, तब (**भगवन्**) हे स्वामिन्! (**त्वयि**) आपके (**मे**) मेरे (**अशेषम्**) समस्त (**मनः**) मन को (**सर्वांगेण**) सर्व अंगो के द्वारा (**स्पृशति सति**) स्पर्श करने पर (**तत्**) वह (**किं श्रेयः**) कौन-सा कल्याण है (**यत्**) जो (**माम्**) मुझे (**अहरहः**) प्रतिदिन (**स्वयं**) अपने आप (**न अभ्युपैति**) प्राप्त नहीं होता है।

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं, भक्तिपात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्पुरुष - मसमानन्दधामप्रविष्टम्।
त्वां दुर्वारस्मर - मदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका:निर्लुठन्ति॥ 8॥

अन्वयार्थः- हे नाथ! (**कर्मारण्यात्**) कर्मरूपीवन से (**असमानन्दधाम-प्रविष्टम्**) अनुपम सुख के स्थान मोक्ष में प्रविष्ट हुए तथा (**दुर्वारस्मर-मदरहरं**) दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले आपको (**पश्यन्तम्**) देखने वाले और (**भक्तिपात्र्या**) भक्ति रूपी कटोरों से (**त्वद्वचनममृतम्**) आपके वचनरूपी अमृत को पीने वाले (**त्वत्प्रसादैकभूमिम्**) आपकी प्रसन्नता के स्थानभूत (**पुरुषं**) पुरुष को (**क्रूराकाराः**) भयंकर आकार वाले (**रुजाकण्टकाः**) रोग रूपी काँटे (**कथमिव?**) किस तरह (**निर्लुठन्ति**) सता सकते हैं- पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते।

पाषाणात्मा तदितरसमः, केवलं रत्नमूर्ति -
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं, मानरोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः॥ 9॥

अन्वयार्थः- हे देव! (**पाषाणात्मा**) पत्थररूप (**मानस्तम्भः**) मानस्तम्भ (**तदितरसमः**) दूसरे पत्थरों के समान ही है, (**केवलम्**) सिर्फ (**रत्नमूर्तिः**) रत्नमयी है परन्तु (**परः रत्नवर्गः**) दूसरे रत्नों का समूह भी वैसा ही है- ऐसा होने पर (**यदि**) यदि (**तस्य**) उस मानस्तम्भ की (**तच्छक्तिहेतुः**) वैसी शक्ति में कारणस्वरूप (**भवतः**) आपकी (**प्रत्यासत्तिः**) निकटता न होती तो (**सः**) वह मानस्तम्भ (**दृष्टिंप्राप्तः**) देखने मात्र से ही (**नराणाम्**) मनुष्यों के (**मानरोगं**) मान-अहंकार रूपी रोग को (**कथं हरति**) कैसे हर सकता है? अर्थात् नहीं हर सकता।

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलि - बन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं, यस्य तु त्वं प्रविष्टः,
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥ 9॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे स्वामिन्! जब (**भवन्मूर्तिशैलोपवाही**) आपके शरीर रूपी पर्वत के पास से बहने वाली (**हृद्यः**) मनोहर

(मरुद्अपि) हवा भी **(प्राप्तः) (सन्)** प्राप्त होती हुई **(पुंसां)** पुरुषों के **(निरवधिरुजाधूलिबन्धम्)** मर्यादारहित रोग रूपी धूली के संसर्ग को **(सद्यः)** शीघ्र ही **(धुनोति)** दूर कर देती है, **(तु)** तब **(ध्यानाहूतः)** ध्यान के द्वारा बुलाये गये **(त्वम्)** आप **(यस्य)** जिसके **(हृदयकमलं)** हृदय रूपी कमल में **(प्रविष्टः)** प्रविष्ट हुए हैं **(तस्य)** उस पुरुष को **(इह भुवने)** इस संसार में **(कः)** कौन सा **(लोकोपकारः)** लोगों पर उपकार **(अशक्यः)** अशक्य है–नहीं करने योग्य है अर्थात् कोई भी नहीं।

जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम्॥ 11॥

अन्वयार्थः- **(देव)** हे भगवन्! **(मम)** मुझे **(भवभवे)** प्रत्येक पर्याय में **(यत् च यादृक् च)** जो और जैसा–जिस तरह का **(दुःखम्)** दुःख–कष्ट **(जातम्)** प्राप्त हआ है **(तत् त्वं जानासि)** उसको आप जानते ही हैं और **(यस्य)** जिसका **(स्मरणमपि)** स्मरण भी **(मे)** मेरे लिए **(शस्त्रवत्)** शस्त्र के समान–तलवार आदि अस्त्र के घात समान **(निष्पिनष्टि)** दुःख देता है और हे नाथ! **(त्वम्)** आप **(सर्वेशः)** सबके स्वामी **(च)** और **(सकृपः)** दया से युक्त हैं– दयालु हैं। **(इति)** इसलिए **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(त्वाम् उपेतः अस्मि)** आप के पास आया हूँ– आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ। अतः अब **(इह विषये)** इस विषय में **(यत्कर्तव्यं)** जो करना चाहिये उसमें **(देव एव प्रमाणम्)** आप ही प्रमाण हैं।

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीव - केनोपदिष्टैः ,
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्री प्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥ 12॥

अन्वयार्थः- हे जिनेन्द्र! जब कि **(मरणसमये)** मृत्यु के समय में **(जीवकेन)** जीवन्धरकुमारके द्वारा **(उपदिष्टैः)** बताये गये **(तव)** आपके **(नुतिपदैः)** नमस्कार मंत्र के पदों के स्मरण एवं चिन्तन से **(पापाचारी)** पापरूप प्रवृत्ति करने वाला **(सारमेयःअपि)** कुत्ता भी **(दैवं)** देव-स्वर्गलोक सम्बन्धी **(सौख्यम्)** सुख को **(प्रापत्)** प्राप्त हुआ है। तब **(अमलैः)** निर्मल **(जाप्यैः)** जपने योग्य माला को **(मणिभिः)** मनकाओं के द्वारा **(त्वन्नमस्कारचक्रम्)** आपके नमस्कार मंत्र को **(जल्पन्)** जपता हुआ मनुष्य **(यत्)** जो **(वासवश्रीप्रभुत्वम्)** इन्द्र की विभूति के अधिपतित्व को-स्वामीपने को **(लभते)** प्राप्त होता है। इस विषय में **(कः सन्देहः)** क्या सन्देह है? अर्थात् इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखा, वंचिका कुंचिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं, मुक्तिकामस्य पुंसो,
मुक्तिद्वारं परिदृढमहा-मोहमुद्राकवाटम्॥ 13॥

अन्वयार्थः- हे नाथ! **(शुद्धे ज्ञाने)** शुद्ध ज्ञान और **(शुचिनि चरिते)** निर्मल चारित्र के **(सत्यपि)** रहते हुए भी **(चेत्)** यदि **(त्वयि)** आपके विषय में होने वाली **(इयम्)** यह **(अनीचा भक्तिः)** उत्कृष्ट भक्ति रूपी **(अनवधिसुखावंचिका)** अमर्यादित सुखों के कारण **(कुंचिका)** कुञ्जी-चाबी **(नो चेत्)** नहीं होवे, तो **(हि)** सचमुच में **(मुक्तिकामस्य पुंसः)** मोक्ष के अभिलाषी पुरुष को **(परिदृढ़-महामोहमुद्राकवाटम्)** अत्यन्त मजबूत महामोहरूपी मुहरबन्द (ताले) से युक्त हैं किवाड़ जिसमें ऐसे **(मुक्तिद्वारम्)** मोक्ष के द्वार को **(कथम्)** किस तरह **(शक्योद्घाटम्)** खोला जा सकता है? अर्थात् नहीं खोला जा सकता।

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै-रन्धकारैः समन्तात्,
पन्थाः मुक्तेः स्थपुटितपदः, क्लेशगर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो, देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः॥ 14॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे स्वामिन्! (**खलु**) निश्चय से (**अयम्**) यह (**मुक्तेः**) मोक्ष का (**पंथाः**) मार्ग (**अघमयैः**) पापरूपी (**अन्धकारैः**) अन्धकार के द्वारा (**समन्तात्**) सब ओर से (**प्रच्छन्नः**) ढका हुआ है और (**अगाधैः**) गहरे (**क्लेशगर्तैः**) दुःखरूपी गड्ढों से (**स्थपुटितपदः**) विषम है-दुष्प्रवेश है, ऐसी अवस्था में (**यदि**) अगर (**तत्त्वावभासी**) सच्चाई को बतलाने वाला अथवा सप्ततत्त्वों के द्वारा मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाला (**भवद्भारतीरत्नदीपः**) आपकी वाणीरूपी दीपक का प्रकाश (**अग्रे-अग्रे**) आगे-आगे (**न भवति**) न होता (**तत्**) तो (**तेन**) उस मार्ग से (**कः**) कौन मनुष्य (**सुखतः**) सुखपूर्वक (**व्रजति**) गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्द - हेतुः ,
कर्मक्षोणीपटलपिहितो, योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः,
स्तोत्रैर्बन्धप्रकृतिपरुषोद्दामधात्री खनित्रैः॥ 15॥

अन्वयार्थः- हे जिनेन्द्र! (**आत्मज्योतिर्निधिः**) यह आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति (**कर्मक्षोणीपटलपिहितः**) ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप पटलों से आच्छादित है/ढकी हुई है और (**यः द्रष्टुः आनन्दहेतुः**) जो ज्ञानी पुरुष को आनन्द का कारण है इसलिए (**परेषां अनवाप्यः**) मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अप्राप्त है उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती। किन्तु (**भवद्भक्तिभाजः**) आपकी भक्ति करने वाले भव्यपुरुष (**तं**) उस आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति को (**बंध-प्रकृतिपरुषोद्दामधात्री खनित्रैः स्तोत्रैः**) प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेश बंधरूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप आपके स्तवनों के द्वारा (**अनतिचिरतः**) शीघ्र ही (**हस्ते कुर्वन्ति**) अपने हाथ में कर लेते हैं/उसे प्राप्त कर लेते हैं।

प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरे-रायता चामृताब्धेः,
या देव! त्वत्पदकमलयोः, संगता भक्तिगंगा।

चेतस्तस्यां मम रुचिवशा-दाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्भवति किमियं, देव! संदेहभूमिः ॥ 16 ॥

अन्वयार्थः- (**देव!**) हे नाथ! (**नयहिमगिरेः**) स्याद्वादनयरूप हिमालय पर्वत से (**प्रत्युत्पन्ना**) उत्पन्न हुई (**च**) और (**अमृताब्धः**) मोक्षरूप समुद्र तक (**आयता**) लम्बी (**या**) जो यह (**त्वत्पदकमलयोः**) आपके चरण कमल सम्बन्धी (**भक्तिगंगा**) भक्तिरूपी गंगानदी (**संगता**) प्राप्त हुई है, (**तस्यां**) उसमें (**रुचिवशात्**) प्रेम के वश (**आप्लुतम्**) डूबा हुआ (**मम**) मेरा/हमारा (**चेतः**) मन (**यत्**) जो (**क्षालितांहः कल्माषं**) जिसकी पापरूपी कालिमा धुल गई है ऐसी पापरूपी रज से रहित (**भवति**) हो जाता है। (**देव**) हे नाथ (**इयम्**) यह (**किम्**) क्या कोई (**सन्देहभूमिः**) सन्देह का स्थान है? अर्थात् नहीं है।

प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख, त्वामनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते, तृप्तिमभ्रेषरूपां,
दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति ॥17 ॥

अन्वयार्थः- हे देव! (**प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख**) प्रकट हुआ है मोक्ष का निश्चलसुख जिनको ऐसे हे वीतराग देव! (**त्वामनुध्यायतः मे**) आपका बार-बार ध्यान करते हुए मेरे हृदय में (**त्वयि**) आपमें अथवा आपके विषय में (**अहं सः एव**) जो आप हैं वही मैं हूँ (**इति**) ऐसी जो (**निर्विकल्पा**) विकल्प रहित (**मतिः**) बुद्धि (**उत्पद्यते**) उत्पन्न होती है यद्यपि (**इयम् मिथ्या एव**) यह बुद्धि असत्य ही है (**तदपि**) तो भी (**अभ्रेषरूपां तृप्तिं**) निश्चल अविनाशी संतोष सुख को (**तनुते**) विस्तृत करती है। सच है (**त्वत्प्रसादात्**) आपके प्रसाद से (**दोषात्मानः अपि**) सदोषी पुरुष भी (**अभिमतफलाः भवन्ति**) अभिमत फल को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् जिनका आत्मा सदोषी है पापकर्मरूप कालिमा से लिप्त है ऐसे मानव भी आपके प्रसाद से अभिमत फल प्राप्त करते ही हैं।

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैः ,
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति॥ 18॥

अन्वयार्थः- हे स्वामिन्! (**सप्तभंगीतरंगैः**) स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य; इन सप्तभंगरूप लहरों के द्वारा (**मिथ्यावादं-मलं**) सर्वथा एकान्त कदाग्रहरूप-मिथ्यात्व मल को अथवा शरीरादि पर वस्तु में आत्मत्वबुद्धि रूप विपरीताभिनिवेश के सम्बन्ध से होने वाले अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यामल को (**अपनुदन्**) दूर करने वाला (**ते**) आपका (**यः**) जो (**वागम्भोधिः**) वचनरूपी समुद्र है सो (**अखिलं भुवनं**) समस्त संसार को (**पर्येति**) घेरे हुए है- समस्त संसार में व्याप्त है।(**चेतसा एव अचलेन**) मनरूपी पर्वत के द्वारा (**तस्य**) उस वचनरूपी समुद्र का (**आवृत्तिं**) मन्थन (**व्यातन्वन्तः**) करने वाले (**विबुधाः**) देवगण (**सपदि**) शीघ्र ही (**अमृतासेवया**) अमृत के सेवन से (**सुचिरं**) चिरकाल तक (**तृप्नुवन्ति**) संतुष्ट हो जाते हैं।

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः,
शस्त्रग्राही भवति सततं, वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत् किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥ 19॥

अन्वयार्थः- हे भगवन्! (**यः**) जो (**स्वभावात्**) स्वभाव से (**अहृद्यः स्यात्**) अमनोज्ञ-कुरूप होता है (**स एव**) वह ही (**आहार्य्येभ्यः**) वस्त्राभूषणादि के द्वारा शरीर को अलंकृत करने की (**स्पृहयति**) इच्छा करता है (**च**) और (**यः**) जो (**वैरिणा**) शत्रु के द्वारा (**शक्यः**) जीतने योग्य होता है वही (**शस्त्रग्राही भवति**) शस्त्रों को ग्रहण करने वला होता है उसे ही त्रिशूल-गदा-भाला-बरछी-तलवार

आदि अस्त्रों की आवश्यकता होती है किन्तु हे भगवन्! (**त्वम्**) आप (**सर्वांगेषु सुभगः असि**) सर्वांग रूप से सुन्दर हो और (**त्वं परेषां न शक्यः**) तुम्हें शत्रु भी नहीं जीत सकते (**तत्**) इस कारण (**तव**) आपको (**भूषावसन-कुसुमैः**) आभूषण, वस्त्र और फूलों से-विविध आभूषणों, सुन्दर वस्त्रों और मनोज्ञ सुगन्धित पुष्पों से (**च**) और (**उदस्त्रैः अस्त्रैः**) पैने-तीक्ष्णधार वाले नुकीले हथियारों से (**किं**) क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ नहीं।

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां, किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भवलयकरी, श्लाघतामातनोति।
त्वं निस्तारी जननजलधेः, सिद्धिकान्तापतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव,श्लाध्यते स्तोत्रमित्थम्॥ 20॥

अन्वयार्थः- हे जिनेन्द्र! (**इन्द्रः**) इन्द्र देवराज (**तव**) तुम्हारी-आपकी (**सेवाम्**) पूजा-स्तुति वंदना आदि सेवा को (**सुकुरु ताम्**) अच्छी तरह से करे, परन्तु (**तया**) उसके द्वारा (**ते**) आपकी (**किं श्लाघनं**) क्या प्रशंसा है? किन्तु (**भवलयकरी**) संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली (**इयम्**) यह सेवा तो (**तस्य एव**) उस इन्द्र की ही (**श्लाघताम्**) प्रशंस को (**आतनोति**) विस्तृत करती है- बढ़ाती है। किन्तु (**त्वं**) आप (**जननजलधेः**) संसार समुद्र से (**निस्तारी**) तरने और तारने वाले हैं, तथा (**त्वं**) आप (**सिद्धिकान्ता पतिः**) मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हैं और (**त्वं**) आप (**लोकानां प्रभुः**) संसार के समस्त प्राणियों के पति हैं (**इत्थम्**) इस तरह से (**तव**) आपका यह (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र-स्तवन (**श्लाध्यते**) प्रशंसित किया जा सकता है।

वृत्तिर्वाचामपरसदृशी, न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्तिपीयूषपुष्टाः,
ते भव्यानामभिमतफलाः, पारिजाता भवन्ति॥ 21॥

अन्वयार्थः- (**भगवन्**) हे स्वामिन्! (**वाचां वृत्तिः**) हमारे वचनों की प्रवृत्ति (**अपरसदृशी**) दूसरे अल्पज्ञ मनुष्यों के समान है- जैसे अन्य अल्पज्ञ मनुष्यों की वाणी होती है वैसी ही हमारी भी है, परन्तु (**त्वं**) आप (**अन्येन न तुल्यः**) दूसरे पुरुषों के समान नहीं हो, इसलिए आपकी तुलना अन्य संसारी अल्पज्ञ प्राणियों के साथ नहीं की जा सकती, क्योंकि आप अनुपम हैं। (**ततः**) इसलिए (**नः**) हमारे अभी (**स्तुत्युद्गाराः**) ये स्तुति रूपी उद्गार (**त्वयि**) आप तक (**कथमिव**) किस तरह (**क्रमन्ते**) पहुँच सकते हैं- प्राप्त हो सकते हैं- अथवा (**एवं मा अभूवन्**) ऐसे मत हो- अर्थात् हमारे वचन आप तक न भी पहुँचे (**तदपि**) तो भी (**भक्तिपीयूषपुष्टाः**) भक्तिरूपी अमृत से परिपुष्ट हुए (**ते**) वे स्तुतिरूप उद्गार (**भव्यानाम्**) भव्यजीवों के लिए (**अभिमतफलाः**) इच्छित फल देने वाले (**पारिजाताः**) कल्पवृक्ष (**भवन्ति**) होते हैं।

कोपावेशो न तव न तव, क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमो-पेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं, सन्निधिर्वैरहारी ,
क्वैवंभूतं भुवनतिलक, प्राभवं त्वत्परेषु॥ 22॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे नाथ! (**तव**) आपका (**क्वापि**) किसी पर भी (**कोपावेशः**) क्रोधभाव (**न अस्ति**) नहीं है और (**न एव**) न आपकी (**क्वापि**) किसी पर (**प्रसादो**) प्रसन्नता है। (**हि**) निश्चय से (**अनपेक्षम्**) स्वार्थरहित (**तव**) आपका (**चेतः**) मन (**परमोपेक्षया एव**) अत्यन्त उदासीनता से ही (**व्याप्तम्**) व्याप्त है, (**तदपि**) फिर भी (**भुवनं**) संसार (**आज्ञावश्यं**) आपकी आज्ञा के अधीन है और आपकी (**सन्निधिः**) समीपता/निकटता (**वैरहारी**) परस्पर के वैर-विरोध को हरने वाली है और इस तरह (**भुवनतिलक**) तीनों लोकों में श्रेष्ठ हे देव! (**एवम्भूत**) ऐसा (**प्राभवं**) प्रभाव (**त्वत्**) आपसे (**परेषु**) भिन्न-दूसरे हरि-हरादिक देवों में (**क्व भवेत्**) कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

देव! स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिंजनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो, जातु जोहूर्ति पन्थाः,
तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥ 23॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे देव! (**यः जनः**) जो मनुष्य (**त्रिदिवगणिका-मण्डलीगीतकीर्तिम्**) देवांगनाओं के समूह द्वारा गाई गई है कीर्ति जिसकी ऐसी तथा (**सकलविषयज्ञानमूर्तिम्**) समस्त पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञानस्वरूप (**त्वां**) आपकी (**स्तोतुम्**) स्तवन करने के लिए (**तोतूर्तिः**) शीघ्रता करता है (**क्षेमम् पदम्**) कल्याणकारी स्थान अर्थात् मोक्ष को (**अटतः**) जाते हुए (**तस्य**) उस मनुष्य का (**पन्थाः**) मार्ग (**जातु**) कभी भी (**न जोहूर्ति**) टेढ़ा नहीं होता और (**न एषः मर्त्यः**) न यह मनुष्य (**तत्त्वग्रन्थ-स्मरणविषये**) तत्त्वग्रन्थों के स्मरण के विषय में (**मोमूर्ति**) मूर्च्छित होता है- मोह को प्राप्त होता है।

चित्ते कुर्वन्निरवधि - सुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं,
देव! त्वां यः समयनियमादादरेणस्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती, तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः,पंचधा पंचितानाम्॥ 24॥

अन्वयार्थः- (**देव**) हे जिनेन्द्र! (**निरवधिसुखज्ञान-दृग्वीर्यरूपम्**) अनंतसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्यस्वरूप (**त्वाम्**) आपको (**चित्ते कुर्वन्**) हृदय में धारण करता हुआ (**यः**) जो मनुष्य (**समयनियमात्**) समय के नियम से अर्थात् त्रिकाल में (**आदरेण**) विनयपूर्वक (**स्तवीति**) आपकी स्तुति करता है (**खलु**) निश्चय से (**सः**) वह मनुष्य (**तावता**) उतने ही से-स्तवन करने मात्र से ही- (**श्रेयोमार्गं**) मोक्षमार्ग को (**पूरयित्वा**) पूर्ण करके (**पंचधा पंचितानाम्**) पाँच प्रकार से विस्तृत (**कल्याणानाम्**) कल्याणों का-गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण रूप पंच कल्याणकों का (**विषयः भवति**) पात्र होता है।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः,
सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः, के हंत मंदावयम्।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते,
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः, कल्याणकल्पद्रुमः ॥ 25 ॥

अन्वयार्थः- (**भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद**) भक्ति से नम्र हुए देवेन्द्र के द्वारा पूजित हैं चरण जिनके ऐसे हे जिनेन्द्र! जब कि (**त्वत्कीर्तने**) आपकी प्रशंसा करने में (**सूक्ष्मज्ञानदृशः**) सूक्ष्मज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले (**संयमभृतः अपि**) तपस्वी भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानादि के धारक संयमी योगीश्वर भी (**न क्षमाः**) समर्थ नहीं हैं तब (**हन्त**) खेद है कि (**वयं मन्दाः के**) हम जैसे मन्दबुद्धि पुरुष आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? तथापि (**स्तवनच्छलेन**) स्तवन के छल से (**अस्माभिः**) हमारे द्वारा (**तु**) तो सिर्फ आपके विषय में (**परः**) उत्कृष्ट (**आदरः**) आदर-प्रेम ही (**तन्यते**) विस्तृत किया जाता है और (**खलु**) निश्चय से (**सः**) वह आदर ही (**स्वात्माधीनसुखैषिणां**) आत्मसुख के इच्छुक (**नः**) हम लोगों के लिए (**कल्याणकल्पद्रुमः**) कल्याण करने वाला कल्पवृक्ष होवे।

वादिराज मनुशाब्दिकलोको, वादिराज मनुतार्किकसिंहः।
वादिराज मनुकाव्यकृतस्ते, वादिराज मनुभव्यसहायः ॥ 26 ॥

अन्वयार्थः- (**शाब्दिकलोकः**) वैयाकरण-व्याकरण शास्त्र के वेत्ता (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं (**तार्किक सिंहः**) श्रेष्ठ नैयायिक (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं, और (**ते काव्यकृतः**) प्रसिद्ध कवि लोग (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं (**भव्यसहायः**) सज्जनगण भी (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं।

॥ इति वादिराजसूरिविरचितं एकीभाव-स्तोत्रम् ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

सरस्वती-नाम-स्तोत्रम्

सरस्वत्या प्रसादेन, काव्यं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चलभावेन, पूजनीया सरस्वती॥ 1॥

अर्थः- सरस्वती देवी की कृपा से विद्वज्जन काव्यरचना में कुशल होते हैं। इसलिए अटल भक्तिभाव से वह सरस्वती देवी सदा पूज्य है॥ 1॥

श्रीसर्वज्ञमुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषिणी।
अज्ञानतिमिरं हन्ति, विद्या बहुविकासिनी॥ 2॥

अर्थः- जो सरस्वती देवी श्री वीतराग सर्वज्ञ प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न हुई है,जो अनेकभाषा रूप है और जिससे अनेक विद्याओं का उदय हुआ है,वह सरस्वती देवी भव्यजीवों के अज्ञान अन्धकार का नाश करती है॥2॥

सरस्वती मया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कन्ध-समारूढ़ा,वीणा-पुस्तक-धारिणी॥3॥

अर्थः- अनेक विद्याओं की जन्मदात्री, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, वाहन रूप हंस के ऊपर उपविष्ट, वीणा और पुस्तक को कर कमलों के धारण करने वाली, सरस्वती देवी का हमने दर्शन किया॥ 3॥

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदादेवी, चतुर्थं हंसगामिनी॥ 4॥

अर्थः- सरस्वती देवी का पहिला नाम भारती, दूसरा नाम सरस्वती, तीसरा नाम शारदा देवी और चौथा नाम हंसगामिनी है॥ 4॥

पंचमं विदुषां माता, षष्ठं वागीश्वरी तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी॥ 5॥

अर्थः- पाँचवां नाम विद्वानों की माता, छठवाँ नाम वागीश्वरी, सातवाँ नाम कुमारी तथा आठवाँ नाम ब्रह्मचारिणी है॥ 5॥

नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्॥ 6॥

अर्थ:- नववाँ नाम जगन्माता, दशवाँ नाम ब्राह्मिणी, ग्यारहवाँ नाम ब्रह्माणी और बारहवाँ नाम वरदा है॥ 6॥

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा चैव चतुर्दशम्।
पंचदशं श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते॥ 7॥

अर्थ:- तेरहवाँ नाम वाणी, चौदहवाँ नाम भाषा, पन्द्रहवाँ नाम श्रुतदेवी, सोलहवाँ नाम गौ है। इस प्रकार ये सोलह सरस्वती देवी के नाम हैं॥ 7॥

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य सन्तुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्॥ 8॥

अर्थ:- जो भव्यपुरुष प्रातःकाल उठकर सरस्वती देवी के इन नामों का भक्तिभाव से पाठ करता है उस पर सरस्वती प्रसन्न होती है और वर प्रदान करती है॥ 8॥

सरस्वति! नमस्तुभ्यं, वरदे कामरूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा॥ 9॥

अर्थ:- वरदायिनी! कामरूपिणी! हे सरस्वती! तेरे लिए हमारा बारम्बार नमस्कार हो, मैं विद्या का आरम्भ करूँगा, तेरी कृपा से मुझे विद्या-प्राप्ति में सदा सिद्धि प्राप्त हो॥ 9॥

इति सरस्वती-नाम-स्तोत्रम्।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

गोम्मटेस-स्तोत्रम्

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुंडं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 1॥

अन्वयार्थः- **(विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं सुलोयणं)** जिनके विशाल नेत्र मृणाल सहित नीलकमल की पाँखुड़ी का अनुकरण करते हैं, **(चंदसमाणतुंडं)** मुख चन्द्रमा के समान सुशोभित है **(चम्पयपुप्फसोहं जियं घोणा)** और नासिका चम्पक के पुष्प की शोभा को पराजित करती है, **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मटस्वामी को **(णिच्चं पणमामि)** मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं, आबाहु-दोलंत-सुकण्ण-पासं।
गइंद सुंडुज्जल बाहुदंडं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 2॥

अन्वयार्थः- **(जलकंतगंडं)** जिनके जल के समान स्वच्छ कपोल, **(सुकण्णपासं आबाहु दोलंत)** कर्णपास स्कन्धों तक दोलायित हैं और **(गइंद सुंडुज्जल बाहुदंडं)** दोनों भुजाएँ गजराज की सूण्ड के समान निर्मल हैं; **(तं)** उन **(अच्छाय-सच्छं)** आकाश के समान निर्मल **(गोम्मटेसं)** गोम्मटस्वामी को **(णिच्चं पणमामि)** मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

सुकंठ-सोहा जिय-दिव्व संखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्ख-णिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 3॥

अन्वयार्थः- **(दिव्वसंखं सोहा जिय सुकंठ)** दिव्यशंख की शोभा को जीतने वाला जिनका विलक्षण सुंदर कण्ठ है, **(हिमालयुद्दाम विसालकंधं)** जिनका वक्षस्थल हिमालय की भाँति विशाल और उदार है, **(सुपेक्ख-णिज्ज-अयल-सुट्ठुमज्झं)** सुन्दर कटिप्रदेश अचल, सुदृढ़ और प्रेक्षणीय है; **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मटस्वामी को **(णिच्चं)** नित्य **(पणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

विंझायलग्गे पविभासमाण, सिहामणिं सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 4॥

अन्वयार्थः- (**विंझायलग्गे पविभासमाणं**) विन्ध्यगिरि के अग्रभाग में जो अनुपम कांति से प्रकाशमान हो रहे हैं, (**सव्व सुचेदियाणं सिहामणिं**) उन सभी सुन्दर चैत्यों के शिखामणि तथा (**तिलोय संतोसय पुण्णचंदं**) तीनलोक के जीवों को आनंद देने में जो पूर्ण चन्द्रमा हैं; (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मटस्वामी को (**पणमामि णिच्चं**) मैं सतत प्रणाम करता हूँ।

लयासमक्कंत महासरीरं, भव्वावलिलद्ध-सुकप्प-रुक्खं।
देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 5॥

अन्वयार्थः- (**लयासमक्कंत-महासरीरं**) लताओं से आक्रान्त जिनका विशाल शरीर है, (**भव्वावलिलद्ध सुकप्परुक्खं**) भव्यसमूह के लिए प्राप्त कल्पवृक्ष और (**देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं**) देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित जिनके चरण कमल हैं- (**तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं**) उन गोम्मटस्वामी को मैं सतत सिर झुकाता हूँ।

दियंबरो जो ण च भीइजुत्तो, ण चंबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादिजंतुप्फसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 6॥

अन्वयार्थः- (**जो दियंबरो**) जो दिगम्बर श्रमण हैं (**च**) और (**भीइजुत्तो**) सात भययुक्त (**ण**) नहीं हैं (**च**) और (**ण अंबरे सत्तमणो**) वस्त्र वल्कलादि में आसक्त मन वाले नहीं हैं, (**विसुद्धो**) विशुद्ध हैं, (**सप्पादिजंतुप्फसदो ण कंपो**) सर्पादि जंतुओं के स्पर्श या आवृत होने पर भी कम्पायमान नहीं हैं; (**तं गोम्मटेसं**) उन गोम्मटस्वामी को (**पणमामि-णिच्चं**) मैं नित्य नमन करता हूँ।

आसं ण जे पेक्खदि सच्छदिट्ठी, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥ 7॥

अन्वयार्थः- **(जे)** जो **(सच्छदिट्ठी)** शुद्ध क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, **(आसं ण पेक्खदि)** जो अपने अन्तस्थल में स्थिति के कारण बहिरंग दृष्टि से नहीं देखते, **(सोक्खे ण वंछा हयादोसमूलं)** स्वदोषों का मूल मोह का नाश करने से जिनकी सुख में वांछा नहीं है और **(विरायभावं भरहे विसल्लं)** अग्रज भाई भरत के प्रति संज्वलन था वह अब वैराग्य में बदल गया है- ऐसे **(तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं)** उन निष्कांक्ष गोम्मटस्वामी की मैं सतत वन्दना करता हूँ।

उपाहि मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय मोहहारयं।
वस्सेय-पज्जंत-मुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥ 8 ॥

अन्वयार्थः- **(उपाहि मुत्तं)** जो समस्त परिग्रह से रहित हैं, **(धण-धाम-वज्जियं)** धन मकानादि का जिन्होंने पूर्ण त्याग कर दिया है, **(सुसम्मजुत्तं)** शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन से युक्त, **(मय-मोहहारयं)** मद-मोह को जीतने वाले और **(वस्सेयपज्जंत-मुववासजुत्तं)** एक वर्ष पर्यन्त अखण्ड उपवास व्रत धारण करने वाले; **(तं गोम्मटेसं)** उन गोम्मटस्वामी को **(पणमामि णिच्चं)** मैं सतत प्रणाम करता हूँ।

॥ इदि गोम्मटेस थुदि ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

गणधर-वलय-स्तोत्रम्

(उपजाति छन्द)

जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्,
देशावधीन् सर्व-परावधींश्च।
सत्-कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 1॥

अन्वयार्थः- **(जित आराति)** जीत लिया है घातिकर्म रूप शत्रुओं को जिनने ऐसे **(जिनान्)** जिनेन्द्र भगवान् को **(गणान्)** गुणों में **(गरिष्ठान्)** श्रेष्ठ **(देशवधीन्)** देशावधि **(सर्वपरावधीन् च)** सर्वावधि और परमावधि ज्ञान के धारक **(सत् कोष्ठ बीज आदि पदानुसारीन्)** कोष्ठ ऋद्धि, बीज ऋद्धि पदानुसारि आदि ऋद्धि के धारक **(गणेशान् अपि)** गणधर देवों की **(तद्)** उनके **(गुणाप्त्यै)** गुणों की प्राप्ति के लिए **(स्तुवे)** मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थः- घातिया कर्म रूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिनेन्द्र भगवन्तों को तथा गुणों में श्रेष्ठ, देशावधि-सर्वावधि-परमावधि ज्ञान के स्वामी, कोष्ठ ऋद्धि-बीज ऋद्धि-पदानुसारि प्रभृति महान् ऋद्धियों के अधिपति समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 1॥

संभिन्न-श्रोतान्वित-सन्-मुनीन्द्रान्,
प्रत्येक-सम्बोधित-बुद्ध-धर्मान्।
स्वयं-प्रबुद्धाश्चविमुक्ति-मार्गान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 2॥

अन्वयार्थः- **(संभिन्न श्रोतान्वित)** संभिन्न श्रोतृत्व से सहित **(प्रत्येक सम्बोधित-बुद्ध)** प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध **(च)** और **(स्वयं प्रबुद्धान्)** स्वयंबुद्ध जो **(विमुक्ति मार्गान् धर्मान्)** मोक्षमार्ग रूप धर्म के

(सन्मुनीन्द्रान्) सच्चे मुनियों के स्वामी हैं ऐसे **(गणेशान् अपि)** गणधर देवों की **(तद्)** उनके **(गुणाप्त्यै)** गुणों की प्राप्ति के लिए **(स्तुवे)** मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थः- जो संभिन्न श्रोतृत्व ऋद्धि से समन्वित हैं, प्रत्येक बुद्ध-बोधितबुद्ध-स्वयंबुद्ध हैं तथा जो मोक्षमार्ग स्वरूप धर्म के सच्चे मुनियों के स्वामी हैं; ऐसे समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 2॥

द्विधा मनःपर्यय-चित्-प्रयुक्तान्,
द्विपञ्च - सप्तद्वय - पूर्व - सक्तान्।
अष्टांग-नैमित्तिक-शास्त्र-दक्षान्,
स्तुवे गणेशानपि तद् -गुणाप्त्यै॥ 3॥

अन्वयार्थः- **(द्विधा मनः पर्ययचित्प्रयुक्तान्)** जो दो प्रकार के मनःपर्ययज्ञान के धारक हैं, **(द्विपञ्च)** दस पूर्व **(सप्तद्वयपूर्वसक्तान्)** चौदह पूर्व के धारक हैं, **(अष्टाङ्गनैमित्तिक शास्त्र दक्षान्)** और जो अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता तथा कुशल शास्त्रज्ञ हैं **(गणेशानपि)** उन गणधर देवों की **(तद्)** उनके **(गुणाप्त्यै)** गुणों की प्राप्ति के लिए **(स्तुवे)** मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थः- जो उभय मनः पर्ययज्ञान के स्वामी हैं, जो दस पूर्व तथा चौदह पूर्व के स्वामी हैं, जो अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता हैं तथा कुशल-शास्त्रज्ञ हैं, उन समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 3॥

विकुर्वणाख्यर्द्धि -महा-प्रभावान्,
विद्याधरांश्चारण-ऋद्धि-प्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रितान् नित्य-ख-गामिनश्च,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 4॥

अन्वयार्थ:- **(महाप्रभावान्)** महा प्रभावशाली **(विकुर्वणाख्य ऋद्धि)** विक्रिया नामक ऋद्धि के धारक, **(विद्याधारन्)** विद्याधारक **(चारण-ऋद्धि प्राप्तान्)** चारण ऋद्धि को प्राप्त, **(प्रज्ञाश्रितान्)** प्रज्ञावान् **(च)** और **(नित्य)** सदा **(खगामिनः)** आकाश में गमन करने वाले **(गणेशानपि)** गणधर देवों की **(तद्)** उनके **(गणाप्त्यै)** गुणों की प्राप्ति के लिए **(स्तुवे)** मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थ:- जो महाप्रभावशाली विक्रिया ऋद्धि के स्वामी हैं, अनेक विद्याओं को धारण करने वाले हैं, चारण-ऋद्धि को प्राप्त हैं, प्रज्ञावान् हैं और नित्य ही गगन गामी हैं; उन समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति में उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 4॥

आशीर्विषान् दृष्टि-विषान् मुनीन्द्रा-
नुग्राति - दीप्तोत्तम - तप्ततप्तान्।
महातिघोर - प्रतपः प्रसक्तान् ,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 5॥

अन्वयार्थ:- **(आशीर्विषान्)** आशीर्विष, **(दृष्टिविषान्)** दृष्टिविष ऋद्धि के धारक, **(मुनीन्द्रान्)** मुनियों के इन्द्र, **(उग्रअति)** अति उग्र/उग्रोग्र तप, **(दीप्त उत्तम)** उत्तम दीप्त तप, **(तप्ततप्तान्)** तप्त तप/घोर तप; **(महा अति घोर प्रतपः)** महा अतिघोर प्रकृष्ट तप के धारक **(गणेशानपि)** गणधर देवों की **(तद्)** उनके **(गुणाप्त्यै)** गुणों की प्राप्ति के लिए **(स्तुवे)** मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थ:- जो आशीर्विष और दृष्टिविष महान् ऋद्धियों को धारण करने वाले हैं, मुनियों के इन्द्र हैं, उग्रतप-उत्तमदीप्त तप-घोरतप-महातिघोर प्रकृष्टतप के स्वामी हैं; उन समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 5॥

वन्द्यान् सुरै - र्घोर -गुणांश्चलोके,
पूज्यान् बुधै - र्घोर - पराक्रमांश्च ।

घोरादि-संसद्-गुण ब्रह्मयुक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 6॥

अन्वयार्थः- (**सुरैः**) देवों के द्वारा (**वंद्यान्**) वंदित (**लोके पूज्यान्**) लोक में पूज्य (**घोरगुणान्**) घोर गुणों के धारक (**च**) और (**बुधैः पूज्यान्**) लोक में ज्ञानियों के द्वारा पूज्य (**घोरपराक्रमान्**) घोर पराक्रम धारक (**घोरादिसंसद् गुणब्रह्मयुक्तान्**) समीचीन श्रेष्ठ घोर गुण ब्रह्मचर्य आदि से युक्त, (**गणेशानपि**) गणधर देवों की (**तद्गुणाप्त्यै**) उनके गुणों की प्राप्ति के लिए (**स्तुवे**) स्तुति करता हूँ।

अर्थः- देवों से वंदित, लोक में पूज्य, घोर गुणों के धारक, लोक में स्थित ज्ञानियों/विद्वानों से वन्द्य, घोर-पराक्रम के अधिपति तथा समीचीन श्रेष्ठ घोर-गुण-ब्रह्मचर्य प्रभृति से युक्त समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 6॥

आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्ल-विडर्द्धि-
सर्वर्द्धि-प्राप्तांश्च व्यथादि-हंत्रॄन्।
मनो-वचः काय-बलोपयुक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै॥ 7॥

अन्वयार्थः- (**आमर्द्धि खेलर्द्धि प्रजल्लविडर्द्धि**) आमर्द्धि, खेलर्द्धि, प्रकृष्ट जल्लऋद्धि, विड्ऋद्धि (**सर्वर्द्धिप्राप्तान् च**) और सर्वऋद्धि प्राप्त (**व्यथा आदि हंत्रॄन्**) पीड़ा आदि को हरने वाले (**मनः वचः काय बल उपयुक्तान्**) मनोबल, वचन बल, काय बल ऋद्धि के युक्त; (**गणेशानपि**) गणधर देवों की (**तद्**) उनके (**गुणाप्त्यै**) गुणों की प्राप्ति के लिए (**स्तुवे**) मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थः- जो आमर्द्धि, खेलर्द्धि, प्रकृष्ट-जल्ल-ऋद्धि, विड्-ऋद्धि और सर्व-ऋद्धि से संयुक्त हैं, जो समग्र पीड़ा/व्याधि को हरने वाले हैं तथा जो मनोबल, कायबल, वचनबल ऋद्धि से समन्वित हैं; उन समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 7॥

सत्क्षीर - सर्पि - र्मधुरामृतर्द्धीन्,
यतीन् वराक्षीण महानसांश्च ।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत् - प्रपूज्यान् ,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै ॥ 8 ॥

अन्वयार्थः- (**सत्क्षीर सर्पिः मधुर अमृत ऋद्धीन्**) समीचीन क्षीरस्रावी, सर्पिस्स्रावी, मधुरस्रावी और अमृतस्रावी ऋद्धि के धारक (**वर अक्षीण महानसान् च**) श्रेष्ठ अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धियों से (**प्रवर्धमानान्**) सुशोभित (**त्रिजगत्प्रपूज्यान्**) तीन लोक में पूज्य (**यतीन्**) यतिराज (**गणेशानपि**) गणधरों की (**तद्गुणाप्त्यै**) उनके गुणों की प्राप्ति के लिए (**स्तुवे**) मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थः- जो समीचीन क्षीरस्रावी, सर्पिस्रावी, मधुरस्रावी और अमृतस्रावी ऋद्धियों को धारण करने वाले हैं, जो श्रेष्ठ अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धियों से सुशोभित हैं तथा तीन लोक में पूज्य हैं; उन यतियों में श्रेष्ठ समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 8 ॥

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्,
श्रीवर्धमानर्द्धि विबुद्धि-दक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरा-नृषीन्द्रान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै ॥ 9 ॥

अन्वयार्थः- (**सिद्धालयान्**) सिद्धालय में विराजमान (**श्री महतः अतिवीरान्**) श्री अति महान्, अति वीर (**श्रीवर्धमान ऋद्धि विबुद्धिक्षान्**) श्री वर्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि में दक्ष, कुशल (**मुक्तिवरान्**) मुक्तिलक्ष्मी को वरण करने वाले (**सर्वान् मुनीन्**) सब मुनियों को (**ऋषि इन्द्रान्**) ऋषिगणों को (**गणेशानपि**) तथा गणधर देवों की (**तद्-गुणाप्त्यै**) मैं उनके गुणों की प्राप्त करने के लिए (**स्तुवे**) मैं स्तुति करता हूँ।

अर्थ:- सिद्धालय में विद्यमान, श्री से अतिमहान्, अतिवीर, श्री वर्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि में दक्ष/कुशल तथा श्रमणोत्तमों की, समस्त ऋषिगणों की तथा समस्त गणधर परमेष्ठियों की स्तुति में उनके गुणों की प्राप्ति के लिए करता हूँ॥ 9॥

नृ-सुर-खचर-सेव्या, विश्व-श्रेष्ठर्द्धि-भूषा,
विविध-गुण-समुद्रा, मारमातंग-सिंहाः।
भव-जल-निधि-पोता, वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनि-गण-सकलाः श्री-सिद्धिदाः सदृशीन्द्राः॥ 10॥

अन्वयार्थः- **(नृसुरखचरसेव्या)** मनुष्य, देव, विद्याधरों से पूज्य **(विश्वश्रेष्ठ ऋद्धिः भूषा)** समस्त श्रेष्ठ ऋद्धियों से भूषित **(विविध गुण समुद्रा)** अनेक गुणों के समुद्र **(मार-मातङ्गसिंहा)** कामदेवरूपी हाथी को वश में करने के लिए सिंह समान **(भवजलनिधिपोता)** संसाररूप समुद्र को पार करने के लिए जहाज **(सदृशा)** समान, **(वन्दिता)** वन्दना किये गये **(मुनिगणसकलाः इन्द्रा)** समस्त मुनि समूह/संघ के इन्द्र गणधर देव **(मे श्री सिद्धिदाः दिशन्तु)** मुझे सिद्धपद प्रदान करने वाले हों।

अर्थ:- जो मनुष्य, देव, विद्याधरों से पूज्य हैं, समस्त श्रेष्ठ ऋद्धियों से भूषित हैं, अनेक गुणों के समुद्र हैं, कामदेवरूपी हस्ति का वशीकरण करने के लिए भयानक सिंह के तुल्य हैं, संसार सागर को पार करने के लिए दिव्य नौका के सदृश हैं तथा वन्दित हैं, वे श्रमणों के संघों के इन्द्र गणधर परमेष्ठी मेरे लिए सिद्धपद प्रदान करने वाले हों॥ 10॥

नित्यं यो गणभृन्मन्त्र, विशुद्धसन् जपत्यमुम्।
आस्त्रवस्तस्य पुण्यानां, निर्जरा पापकर्मणाम्॥ 11॥
नश्यादुपद्रवकश्चिद् , व्याधिभूत विषादिभिः।
सदसत् वीक्षणे स्वप्ने, समाधिश्च भवेन्मृतो॥ 12॥

अन्वयार्थः- (**यः**) जो (**नित्यं**) प्रतिदिन (**विशुद्धः सन्**) शुद्ध मन होता हुआ/शुद्धिपूर्वक (**अमुम्**) इस (**गणभृन्मन्त्रं**) गणधर वलय मन्त्र को (**जपति**) पढ़ता है (**तस्य**) उसके (**पुण्यानां आस्रव**) पुण्यकर्मों का आस्रव होता है तथा (**पापकर्मणां निर्जरा**) पापकर्मों की निर्जरा होती है। (**विषादिभिः व्याधिभूत**) विष आदि से होनेवाले रोग, पिशाच आदि (**उपद्रवः**) बाधा (**नश्यात्**) दूर होते हैं (**स्वप्ने सत् असत् वीक्षणे**) स्वप्ने में शुभ-अशुभ दिखाई देता है (**च**) और (**मृतौ**) मरण समय में (**समाधिः**) समाधिमरण (**भवेत्**) होता है।

अर्थः- जो भव्योत्तम विशुद्धमनः होता हुआ अर्थात् शुद्धिपूर्वक इस गणधर वलय मन्त्र/स्तोत्र को पढ़ता है, उसके पुण्यकर्मों का आस्रव होता है तथा पापकर्मों की निर्जरा होती है॥ 11॥

विषादि के द्वारा होने वाले रोग नष्ट होते हैं, पिशाच-भूतादि की बाधाएँ दूर होती हैं, स्वप्न में शुभ-अशुभ दिखाई देता है एवं अंत में (आयु पूर्ण होने पर) समाधिमरण भी होता है॥ 12॥

॥ **इत्यलं** ॥

ऋद्धिमन्त्र

णमो जिणाणं[1], णमो ओहि- जिणाणं[2], णमो परमोहि-जिणाणं[3], णमो सव्वोहि-जिणाणं[4], णमो अणंतोहि-जिणाणं[5], णमो कोट्ठ-बुद्धीणं[6], णमो बीज-बुद्धीणं[7], णमो पादाणु-सारीणं[8], णमो संभिण्ण-सोदारणं[9], णमो सयं-बुद्धाणं[10], णमो पत्तेय-बुद्धाणं[11], णमो बोहिय-बुद्धाणं[12], णमो उजु-मदीणं[13], णमो विउल-मदीणं[14], णमो दस-पुव्वीणं[15], णमो चउदस-पुव्वीणं[16], णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं[17], णमो विउव्वइड्ढि-पत्ताणं[18], णमो विज्जाहराणं[19], णमो चारणाणं[20], णमो पण्ण-समणाणं[21], णमो आगासगामीणं[22], णमो आसी-विसाणं[23], णमो दिट्ठिविसाणं[24], णमो उग्ग-तवाणं[25], णमो दित्त-तवाणं[26], णमो तत्त-तवाणं[27], णमो महा-तवाणं[28], णमो घोर-तवाणं[29], णमो घोर-गुणाणं[30], णमो घोर-परक्कमाणं[31], णमो घोर-गुण-बंभयारीणं[32], णमो आमोसहि-पत्ताणं[33], णमो खेल्लोसहि-पत्ताणं[34], णमो जल्लोसहि-पत्ताणं[35], णमो विप्पोसहि-पत्ताणं[36], णमो सव्वोसहि-पत्ताणं[37], णमो मण-बलीणं[38], णमो वचि-बलीणं[39], णमो काय-बलीणं[40], णमो खीर-सवीणं[41], णमो सप्पि-सवीणं[42], णमो महुर-सवीणं[43], णमो अमियसवीणं[44], णमो अक्खीण महाणसाणं[45], णमो वड्ढमाणाणं[46], णमो सिद्धायदणाणं[47], णमो भयवदो-महदि -महावीर-वड्ढ माण-बुद्ध-रिसीणो[48] चेदि।

॥ इत्यलं ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

उवसग्गहर-थोत्तं

उवसग्ग-हरं पास, पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं।
विसहर-विस-णिण्णासं, मंगल-कल्लाण-आवासं॥ 1॥

अन्वयार्थः- (**उवसग्ग-हरं**) उपसर्गों को हरने वाले (**कम्म-घण-मुक्कं**) घन घाति कर्मों-कर्मरूपी मेघों से मुक्त (**पासं**) पार्श्व जिन को (**वन्दामि**) मैं नमस्कार करता हूँ। (**विसहर**) विषधर-सर्पों के (**विस**) विष के (**णिण्णासं**) विनाशक, (**मंगल**) मंगल तथा (**कल्लाण**) कल्याण के (**आवासं**) स्थान (**पासं**) पार्श्वजिन को (**वंदामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

विसहर-फुलिंग-मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह-रोग-मारी, दुट्ठ-जरा जंति उवसामं॥ 2॥

अन्वयार्थः- (**जो मणुओ**) जो मनुष्य (**विसहर**) विष-हरण करने वाले (**फुल्लिंग मंतं**) पार्श्व जिनेन्द्र के स्फुरायमान नामरूप मन्त्र को (**सया**) हमेशा (**कंठे**) हृदय में (**धारेइ**) धारण करता है (**तस्स**) उसके (**गह-रोग-मारी**) ग्रह, रोग, मारी और (**दुट्ठजरा**) दुःखमय बुढ़ापा (**उवसामं**) उपशान्त (**जंति**) हो जाते हैं।

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहु-फलो होइ।
णर-तिरिएसु वि जीवा, पावंति ण दुक्ख-दोगच्चं॥ 3॥

अन्वयार्थः- (**मंतो**) हे भगवन्! आपके नाम का मन्त्र (**दूरे**) दूर ही (**चिट्ठउ**) रहे (**तुज्झ**) आपको किया गया (**पणामो वि**) नमस्कार भी (**बहुफलो**) बहुत फल वाला (**होइ**) होता है। उसके प्रभाव से (**जीवा**) जीव (**णर-तिरिएसु वि**) मनुष्य और तिर्यंच गति में भी (**दुक्ख-दोगच्चं**) दुःख और दुर्भाग्य को (**ण पावंति**) नहीं पाते हैं।

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि-कप्पपायवब्भहिए।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं॥ 4॥

अन्वयार्थ:- **(चिन्तामणि)** चिन्तामणि और **(कप्पपाय वब्भहिए)** कल्पवृक्ष से भी अधिक प्रभावक **(तुह)** तुम्हारा **(सम्मत्ते)** सम्यक्त्व **(लद्धे)** प्राप्त हो जाने पर **(जीवा)** जीव **(अविग्घेणं)** निर्विघ्न **(अयरामरं)** अजर-अमर **(ठाणं)** स्थान को **(पावंति)** पा लेते हैं।

इअ संथुओ महायस! भत्तिब्भर-णिब्भरेण हियएण।
ता देव! दिज्ज बोहिं, भवे-भवे पास जिणचंद॥ 5॥

अन्वयार्थ:- **(महायस)** हे महायशस्विन्! **(भत्तिब्भर)** भक्तिभार से **(णिब्भरेण)** निर्भर **(हियएण)** हृदय द्वारा **(इअ)** इस प्रकार **(संथुओ)** स्तुति किए गए **(ता देव)** हे देव **(पार्श्व)** पार्श्व **(जिणचंद)** जिनेन्द्र! **(भवे-भवे)** भव-भव में **(बोहिं)** रत्नत्रय रूप बोधि **(दिज्ज)** प्रदान कीजिए।

उवसग्गहरं स्तोत्रं, कृतं श्रीभद्रबाहुनः ।
ज्ञानादित्येन संघाय, शान्तये मंगलाय च ॥ 6॥

अन्वयार्थ:- **(श्रीभद्रबाहुनः)** श्री भद्रबाहु आचार्य के द्वारा **(कृतं)** रचित **(उवसग्गहरं)** उपसर्गों को हरने वाला **(ज्ञानादित्येन)** ज्ञानरूप आदित्य के द्वारा **(संघाय)** चारों प्रकार के संघ को **(शान्तये)** शांति **(च)** और **(मंगलाय)** सुख देने वाला यह **(स्तोत्रं)** स्तोत्र है।

॥ इति भद्रबाहुकृत उवसग्गहरं स्तोत्रम्॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

कम्मरोग–हरं थोत्त का अर्थ

श्री पार्श्वप्रभु–प्रसादात् एष योगः फलतु – (7 बार पढ़ें)

वंदे जिणवर – पासं, देवाहि देवं कम्मरय – मुक्कं ।
मंगलारोग्ग – णिलयं, उवसग्गहरं तहा अरुहं ॥ 1 ॥
सुद्ध – मंतेण जह जह, सहसा पसमेइ पउर–विस– पीडा ।
पास–थवणेण तह–तह, णस्सेइ कम्मविसं झत्ति ॥ 2 ॥
आइच्च–सुपयासेण, जहा तिमिरं सहसा उवसमेइ ।
पासबिंब – पयासेण, दुक्ख – तिमिरं सया झूरेइ ॥ 3 ॥
जह जह अणल–तवेणं, तोयं सलिलं सूसेइ णियमेण ।
पास– जिणं झाणेणं, अप्पत्थ – सोगं य सूसेइ ॥ 4 ॥
लोह – भिगार – पंकं, लहु–समए तवण– तवेण जीरेइ ।
तह पउर–रोग–पंकं, पास पहु–सरणेण भंजेड़ ॥ 5 ॥
णागारि–गज्जणेणं, मयजुदकरी हवेइ मय–विहूणो ।
तहा पास–विणएणं, तणू हवेइ रोग–विहूणो ॥ 6 ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं, सयल – दुट्ठ–कम्म– रोग–सोग–हरं ।
पासं जिणवरचंद, वंदामि मण वयण–काएहि ॥ 7 ॥
कम्म – रोग हरं थोत्तं, पढइ तिविहेण जो ।
आरोग्गं सासयं सोक्खं, णिच्चमेव स पावइ ॥ 8 ॥

॥ इति मुनि आदित्यसागरकृत कम्मरोग–हरंथोत्तं ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

आदिवीरशंकर-स्तुतिः

"नाराच छंद"

प्रचण्ड-चण्ड-दण्ड-पिण्ड-खण्ड-खण्ड-खण्डनं,
न दण्डिकं सुपण्डितं च गण्ड-घण्डु-गुण्डकम्।
न गण्डकं न तुण्डिलं तु दण्ड-गुण्डिताश्रयं,
प्रणाम-मादितीर्थ-मादिनाथ-मादिशंकरम्।।1।।

जो शक्तिशाली हैं, सक्रिय हैं, वशीकरण-रूप हैं, सामर्थ्यवान् हैं, जो संघातरूप हैं, कर्मसमूह को नष्ट करने वाले हैं, जो उत्तम-विद्वान् हैं, सुभट हैं, प्रकाशपुंज हैं, मन्दमधुर-स्वर वाले हैं, जो हिंसा को चूर-चूर करने वाले सदन हैं, अबाधित हैं, वाचालता रहित हैं और दण्डादि शस्त्रों के धारी भी नहीं हैं; उन आदिशंकर, आदितीर्थ, आदिनाथ को प्रणाम हो॥ 1॥

अजेयदेव - जैन - जीवभावरक्त - जीवनं,
जितेन्द्रियं जिताहवं जितात्मदेव - जोषणम्।
अनात्मभाव - जित्वरं च जन्म - मृत्युजित्वरं,
अजेयकर्मभूपतीन् पराजितं जयाजितम्॥ 2॥

जो जीते न जा सकने वाले देव हैं, जैन सिद्धान्तानुयायी हैं, अस्तित्ववान् हैं, संवेगरूप हैं, पसन्द किए गए/प्रिय हैं तथा जीवन-प्रदाता हैं, जो इन्द्रियों के जेता हैं, विजयी हैं अर्थात् शत्रुओं को जीतने वाले हैं, आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले देव हैं, सर्वप्रिय हैं, जो अनात्मभावों को जीतने वाले हैं और जन्म-मृत्यु को भी जीतने वाले हैं; उन अजेयकर्म रूपी राजाओं को पराजित करने वाले संयम/दमन अथवा जय के प्रतीत भगवान् अजितनाथ स्वामी को प्रणाम हो ॥ 2॥

सुभावनश्च भावशून्य - भावविद् - विभावनं,
भविष्यभाव-भावकश्च भावरूप - भावकः।

असंभवो न संभवो हि संभवश्च संभव!
भवादृशो भवात्परो भवंहरो न संभवः॥ 3॥

हे संभवतीर्थेश! आप ही उत्तम-प्रमाण हैं, भाव-शून्य अर्थात् संसार रहित हैं, अंतर्यामी हैं, प्रत्यक्षज्ञान की मूर्ति हैं आप आने वाली पर्यायों को प्रकाशित करने वाले हैं और यथार्थ/ वास्तविक कल्याण करनेवाले हैं, आप अजन्मा हैं, आपका विनाश नहीं हो सकता। अविनश्वर हैं और आप ही अत्यन्त श्रेष्ठता को प्राप्त हैं। सच है- आपकी भांति संसार से परे/ भिन्न भव को / संसार को हरने वाला कोई और संभव/ शक्य नहीं हैं॥ 3॥

नितान्त - नन्दनं च नन्दनं च नन्दिकेश्वरं,
नरं नरेश - निर्मदं नरी - निरीह - नायकम्।
नरामरादि-वंद्यकं निजात्मनो निबोधकं,
नमामि चाभिनन्दनं च नातिवाद-नंदथुम्॥ 4॥

जो अतिशय आनन्द के धाम हैं, प्रसन्न करने वाले हैं, हर्षित करने वाले ईश्वर हैं, जो नित्य-पुरुष हैं, मनुष्यों में सर्वोपरि हैं, मद से रहित हैं, नारी की तृष्णा/ईहा से रहित शिवपथ नेता हैं, जो नर और अमर/देवों से वंदनीय हैं, जो निजात्मा का ध्यानाध्ययन करने वाले हैं, दुर्वचनों का परिहार करने वाले हैं और सदा ऐश्वर्य से युक्त ईश्वर हैं, उन आनन्दरूप अभिनन्दननाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 4॥

दरिद्र - दर्प - धर्ष - धर्त्र - धृष्ट - धात्रतश्च्युतं,
धुरंधरं धनिष्ठ - धृत्व - धृष्णु - धुर्म - संयुतम्।
प्रशान्त - शुद्ध - देह - वाक्य - चित्त-चेतना-युतं,
सुबुद्धिदं च तं च तं च पं च कं च पंचमम्॥ 5॥

जो दरिद्रता, दर्प/ अहंकार, अधीरता, ढीठता, गृह और पात्र/ बर्तन आदि से च्युत/ रहित हैं, जो उद्यमशील पुरुष हैं, अत्यन्त सम्पत्ति सम्पन्न हैं, जो सद्गुण, साहस से संयुक्त हैं तथा अग्रणी हैं, जो प्रशान्त और शुद्ध शरीर,

वचन, मन और चेतना से युक्त हैं, जो उत्तम-शुद्धि के दाता हैं, अमर हैं, सुभट हैं, रक्षक हैं, ब्रह्मात्मा हैं; उन पंचम तीर्थेश सुमतिनाथ भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ॥ 5॥

सुपद्मनाथ - पद्मनाभ - पद्मदेव -दैवतं,
सुपद्मबंधु - पद्मगंध-पद्मपाणि-पद्मदम्।
सुपद्मवर्ण-पादपद्म-पद्म-पद्मलांछनं,
परात्म-पद्मतीर्थकं च पद्मवारवंदनम्॥ 6॥

जो भव्यों रूपी कमलों के नाथ हैं, जिनकी नाभि पद्म अर्थात् कमल के आकार की है, जो निर्लेप हैं, देवता हैं, जो उत्तम-सूर्य के समान हैं, जिनकी गंध कमल के समान सुवासित हैं, जिनके हाथ कमल के समान हैं और सौभाग्य देने वाले हैं, जो सुन्दर कमल के रंगवाले हैं, जिनके चरण युग्ल कमल के समान हैं, जो स्वयं मंदिर हैं तथा पद्म जिनका लाञ्छन/चिह्न है, ऐसे परमात्मा पद्मनाथ तीर्थंकर को पद्मबार अर्थात् (1,00,00,00,00,00,00,000) वंदन हो॥ 6॥

सुपार्श्वभाग - युक्त - तीर्थकारकं सुवर्णकं,
सुपार्श्ववर्त्ति - भव्यसर्वपापपंक - भंजकम्।
सुपारिपार्श्व - पारिपार्श्विका - परिस्थितं शलं,
सुपार्श्विकं नमाम्यपार्श्वकं सुपार्श्वतीर्थकम्॥ 7॥

जो सुन्दर-पार्श्वभाग से सुशोभित शरीर वाले हैं, अर्थ के कर्त्ता हैं, अच्छे उज्जवल रंग वाले हैं, जो पास/समीप में उपस्थित समस्त भव्य जीवों के समस्त पापरूपी कीचड़ को सुखाने वाले हैं, जिनके चारों ओर देव-देवियाँ सेवक और सेविकाओं के रूप में उपस्थित हैं, जो सच्चे ब्रह्मा हैं, जो अवंचक हैं और जो उत्तम साथी हैं, उन सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 7॥

अमूर्तजीवचन्द्र - चन्द्रतुंड - चन्द्रलांछनं,
सुचन्द्र! चन्द-चन्दिरं च चन्द्रमाश्च चन्द्रकः।
सुचारु-चन्द्रचर्य-चर्चितार्चितं च चन्द्रिलं,
जिनेन्द्रचन्द्र-चन्द्रनाथतीर्थकारमीश्वरम्॥ 8॥

जो श्रेष्ठ अशरीरी-आत्मा हैं,चन्द्रमा के समान जिनका मुख है, जिनका लाञ्छन/चिह्न चन्द्रमा हैं, जिनकी चर्या सुन्दर है, जो चन्द्रचर्या के धारी हैं, जो चर्चित भी हैं और सर्व-अर्चित भी हैं, जो चन्द्रिल हैं, उन चन्द्रमा के समान जिनेन्द्र प्रभु चन्द्रनाथ तीर्थंकर ईश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ। हे चन्द्रनाथ प्रभो! चन्द,चन्दिर,चन्द्रमा और चन्द्रक ये भी आपके ही नाम है ॥9॥

पुनीत-पुष्कलं च शुभ्ररश्मिपुष्प-वर्णकं,
सुपुण्यबोध-पुष्पितं च पुष्प-केतु-मर्दनम्।
सुपुष्पपुष्पसंयुतं च पुष्प-रेणु-गंधकं,
सुपुष्पदंत-पुष्पदंत-पुष्पपूज्य-वंदनम्॥ 9॥

जो पवित्र और समृद्ध हैं, उज्ज्वल/श्वेत पुष्प की किरण के वर्ण वाले हैं, जो पवित्र-विचार अथवा सद्गुण-सद्विचार रूपी पुष्पों से अलंकृत हैं और कामदेव का मर्दन करने वाले हैं, जो उत्तम-शौर्य और नम्रता से संयुत हैं, जो पराग अर्थात् पुष्परेणु/चन्दन की गंध-वाले हैं; उन सुन्दर पुष्पों के समान दांतों वाले कलियुग में भी पुष्पों से पूज्य पुष्पदन्त तीर्थंकर को वन्दन है, प्रणाम है॥ 9॥

विशाल-शील-शीलशालिनं च शीतलप्रदं,
शयाच्च शायकादशालिनं शिवं च शिल्पिनम्।
अशीतशीतयोग-शालिनं च शीत-शीतलं,
नमामि शीतलाच्च शीतलं च शील-शीलितम्॥10॥

जो प्रशस्त चारित्र, स्वभाव और सौन्दर्य सम्पन्न हैं, शीतलता के प्रदाता हैं, जो दुर्वचनों से तथा तलवारादि शस्त्रों से अयुक्त/रहित हैं, जो शिव

हैं, कलाकार हैं, जो शीत और उष्ण योग के धारक हैं और उदासीन तथा शीतलगुण युक्त हैं, जो सम्पूर्ण सद्गुण/चारित्र से सम्पन्न हैं और चन्दन अथवा मुक्ता से भी अधिक शीतल हैं, उन शीतलनाथ तीर्थेश भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 10॥

अढाटडं त्रिलोक - तारकोडुपापटं पटुं,
त्रपिष्ठ-तीर्थ-तैर्थिकं त्रिचक्षुसं सुतैतिलम्।
तरस्वतं तु तर्ककं तितिक्षु-तीक्ष्ण-तार्किकं,
त्रियोगतो हि नौमि श्रेयसं जिनं जिनेश्वरम्॥ 11॥

जो निर्भय/अभय हैं, अपतित हैं, शुभ/शिव हैं, तीनलोक के जीवों के रक्षक हैं, चन्द्रमा के तुल्य हैं, वस्त्र रहित हैं, नीरोग हैं, जो अत्यन्त-संतुष्ट हैं, पुण्यात्मा हैं, संन्यासी हैं, जन्म से त्रिनेत्री हैं और देवता हैं, जो शक्ति सम्पन्न हैं, वादी/तर्क-शास्त्री हैं, सहिष्णु हैं, बुद्धिमान् हैं और तार्किक हैं; उन जिनदेव जिनेश्वर श्रेयान्सनाथ भगवान् को मैं योगत्रय अर्थात् मन-वचन और काय से सदा ही नमस्कार करता हूँ॥ 11॥

वसुंधरावसुं वसुंधरावरं सु-सुन्दरं,
वयोवरं वरं वचं वशंवदं वनेवसम्।
वरप्रदं पदप्रदं सुवातवस्तुदं वदं,
सदा हि पूजयामि वासुपूज्य-पूज्य-पूज्यकम्॥12॥

जो वसुंधरा/पृथ्वी के देवता हैं, वसुंधरा में सर्वश्रेष्ठ हैं, अत्यन्त ललित/सुन्दर हैं, जो उत्तम-पुरुष हैं, दीर्घायुष् हैं, तत्त्वों के विवेचक हैं, जिनशासन की आज्ञा के पालक हैं, वन/अरण्य में निवास करने वाले हैं, जो वरदान/आशीर्वाद देने वाले हैं, उत्कृष्ट पद के प्रदाता हैं, उत्तम और इच्छित पदार्थों के भी दाता हैं और अच्छे वचन बोलने वाले हैं; उन श्रद्धेय, आदर के अधिकारी भगवान् वासुपूज्य की मैं सदा ही पूजा करता हूँ, अर्चा करता हूँ॥ 12॥

विकारितच्युतं विचेष्टिच्युतं विटच्युतं,
विमोक्षदं निजात्मदेवकेवलाद्विकासकम् ।
विहीनवासनां विदं विकर्षणं विमर्दकं,
त्रयोदशं दिवाकरं जिनेन्द्रदेव-निर्मलम्॥ 13॥

जिन्होंने पथभ्रष्टता को दूर किया है, दुष्कृतों को दूर किया है, कामुकता को दूर किया है, जिन्होंने निजात्मा में स्थित शुद्धदेव का केवलज्ञान से विकास किया है, जो मुक्ति के प्रदाता हैं, वासना से विहीन हैं, विद्वान् हैं, कामदेव के बाण को चकनाचूर करने वाले हैं, कर्ममल से रहित हैं; उन तेरहवे सूर्य/दिवाकर जिनेन्द्रदेव को अर्थात् जिनशासन के तेरहवे सूर्य विमलनाथ/विमलवाहन जिनेन्द्रदेव को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 13॥

अचिन्त्य-सौख्यदं विभुं विचिन्त्य-तत्त्व-शोधकं,
विचेतनं सचेतनं विचक्षणं विचारकम्।
विभाव-भाव-नाशकं स्वभाव-भाव-दायकं
अनंतबोध-वीर्यदं नमाम्यनंतचेतनम्॥ 14॥

जो सोच से भी परे सौख्य को प्रदान करने वाले हैं, सर्वोपरि हैं, चिन्तनीय तत्त्वों के शोधक हैं, जो व्यवहार प्राणों से रहित हैं, चेतना प्राण से सहित हैं, स्पष्ट/दीर्घदर्शी हैं, न्याय करने वाले हैं, जो विभाव-भावों के नाशक हैं तथा स्वभाव भावों के दायक हैं; उन अनन्त ज्ञान और अनन्त वीर्य के दाता अनन्त चेतना युक्त अनन्तनाथ / अनन्तजित् तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 14॥

सुधर्मयुक्तसद्भवनेस्तमिस्रनाशकं धवं,
धनस्य लोभवर्जितं च धेय - धारणं ध्रुवम् ।
विधर्मभाव-धर्ष-धाष्ट्र्य-धौतकं सुधार्मिणं,
नमामि धर्मदेव-धर्मनाथ-धार्म-धार्मिकम्॥ 15॥

जो समीचीन धर्म से युक्त सत्–ध्वनि के द्वारा अज्ञान–अधंकार का नाश करने वाले हैं, स्वामी हैं, जो धन–सम्पत्ति आदि लोभ से वर्जित/रहित हैं, ध्रुव हैं, ग्रहणीय हैं और रक्षक भी हैं, जो धर्म के विपरीत भावों को, अविनय/धृष्टता और अहंकार को साफ करने वाले हैं, सुन्दर–सद्गुणों के आलय हैं; उन धर्म से सम्बन्ध रखने वाले, पुण्यात्मा, जिनधर्म के देवता धर्मनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 15 ॥

प्रशान्तकाम–शान्त–शान्तिदं प्रशान्तिदं शमं,
प्रशान्तबाध–शासनं प्रशन्सितं प्रशामदम्।
निजात्मशान्ति–शापितं च शान्तिदूत–शान्तिकं,
ददातु शान्तिमीशमाशु शान्तिनाथ! शन्तनो!॥ 16 ॥

जो संतुष्ट हैं, सौम्य हैं, शान्ति के प्रदाता हैं, मन की स्थिरता को देने वाले हैं, मोक्ष स्वरूप हैं, जो समस्त बाधाओं व संकट से रहित हैं, जिनका प्रभुत्व हैं, जो सर्व जीवों से स्तुत्य हैं, धैर्य महागुण के प्रदाता हैं, जिन्होंने निजात्मशान्ति की प्राप्ति की शपथ/प्रतिज्ञा ली हुई है, जो शान्ति के दूत हैं और तृष्टिकर हैं, उन ईश्वर शान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ। हे शान्तिनाथ प्रभो! हे ललित देह के धारी! मुझे शीघ्र ही शान्ति प्रदान करें॥ 16 ॥

पदत्रयस्य शालिनं नरामरारिसेवितं,
कुलीनकुंडिरं कुतूहलं च साधुकुंजरम्।
कृतार्थशासनस्य संकुमारयुं च कुंथकं,
मुनीन्द्र–कुन्थुनाथ–सर्वजीवनाथ–तीर्थकम्॥ 17 ॥

जो कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर इन तीन पदों के धारी हैं, नर, देव और शत्रु भी जिनकी सेवा करते हैं, जो उच्च वंश में उत्पन्न हैं, बलवान् हैं, जो प्रशंसा प्राप्त हैं और श्रमण में सर्वोत्तम हैं, जो कृतार्थ–शासन के उचित उत्तराधिकारी हैं और कष्ट/परीषहों को सहन करने वाले हैं; उन मुनियों के इन्द्र, समस्त जीवों के नाथ/ स्वामी, कुन्थुनाथ तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 17 ॥

परारि रागरज्जुसंपदस्थ – चक्रधारकः,
पुनश्च धर्मचक्रधारको नरेशसेवितः ।
परस्य संपराभवः परंतपं परात्परं,
नमामि नारसारजोऽरनाथतीर्थचक्रकम् ॥18॥

प्राचीन काल में जो संवेग रूपी रज्जु / डोर को धारण किए थे, अत्यन्त दुर्लभ त्रयपदों में स्थित थे तथा विजय/सुदर्शन चक्र के धारक भी थे और पर/राजाओं की पराजय का कारण हुए थे। पश्चात् निष्क्रमण कल्याणक करके धर्मचक्र के धारक हुए और सर्वराजाओं से परि पूजित हुए; ऐसे शूरवीर/कर्म शत्रु का दमन करने वाले, परमात्मा, योग्य और वासना मुक्त चक्रवर्ती तीर्थंकर अरनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥ 18 ॥

अबाल्यबल्य - बल्य - मोहमल्लमान - भंजनं
सजल्लमल्ल-मूलिकं ललाम-जल्प-चातुरम्।
विशल्य-मल्ल-कल्प-कल्य-कल्य-काल्य-मेलनं,
सुमल्लिगंध-मल्लिनाथ-मल्लसाधु-वंदनम्॥ 19 ॥

जो बचपने/लड़कपन से रहित हैं, शक्तिशाली हैं, शक्ति के प्रदाता हैं, मोह रूपी सुभट का मान भंग करने वाले हैं, जो जल्ल और मल्ल से युक्त देहधारी हैं, संन्यासी हैं, मनोहर हैं, वक्तृत्व कला समृद्ध हैं, मधुरभाषी हैं, जो शल्य रहित हैं, बलिष्ठ हैं, सक्षम हैं, नीरोगी हैं, समीचीन शिक्षा देने वाले हैं, सुहावने अर्थात् रुचिकर हैं और एकत्वभूत हैं; उन मल्लि अर्थात् चमेली की तरह सुगंध वाले साधुओं में उत्तम तीर्थेश मल्लिनाथ भगवान् को वंदन है॥ 19 ॥

सुदीर्घ कीर्ति-तीर्थकार-पंचगुप्तलाञ्छनं,
निजात्मतीर्थलब्धनार्थ-सुव्रतानि धारकम् ।
विचित्र-वर्तमानकाल-वंदितं सुतीर्थकं,
महाव्रतं च सुव्रतं ददं सुसाधुसुव्रतम् ॥20॥

जिन तीर्थंकर की कीर्ति अत्यन्त विशाल है, इतनी विशाल है कि इस विचित्र वर्तमान पंचम काल में भी जो वंदनीय हैं, जिनका लाञ्छन पंचगुप्त अर्थात् कछुआ है, जिन्होंने निजात्मतीर्थ की प्राप्ति के लिए सुव्रतों को धारण किया था, जो महाव्रतों को और समस्त सद्व्रतों के प्रदाता हैं; उन उत्तम पवित्र पुण्यात्मा सुव्रतसाधु अर्थात् बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ 20 ॥

नमो नमो नमो नमो नमस्यनाय नायकं ,
नियाम - नैमयं नु - निर्निमित्तमित्र - नर्मदम् ।
निदर्शनं नहुष्क - नाग - नारदै - र्नमस्कृतं,
नमोगुरुं नमस्कृतिं नमोऽस्तु तं च मिं नमिम् ॥ 21 ॥

जो वन्दनीय पुरुष हैं, उनको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। जो मार्गदर्शक हैं, जो निर्देशक हैं, सौदागर हैं, स्तुतिरूप हैं, अकारण–बंधु हैं, आनन्द–दायक हैं, प्रमाण हैं, मनुष्य–नागेन्द्र–और नारद के द्वारा नमस्कृत हैं, जो आध्यात्मिक–गुरु हैं, जो प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं, अभिवादन स्वरूप हैं, उन नमिनाथ तीर्थेश को नमस्कार हो ॥ 21 ॥

अरिष्टनेमिनाथ! नेमिने! निमे! नुते! मुने!,
गरिष्ठ - पुष्ट - पुष्टिदो बलिष्ठ - पौष्टिकप्रदः ।
समस्त - विष्टपे निकृष्ट वासनाग - वर्जितो,
विशिष्ट–शिष्ट–शिष्टहार–रिष्टको विशिष्टकः ॥ 22 ॥

हे अरिष्टनेमिनाथ प्रभो! हे मुने! हे पृथ्वी के नायक! इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न! संस्तुते! आप अपने कुल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, पूर्ण सम्पन्न तथा सम्पन्नता देने वाले हैं, अतिशय शक्तिशाली हैं और सर्वगुणों की वृद्धि के प्रदाता है; आप सम्पूर्ण संसार में निकृष्ट माने जाने वाली कामेच्छा रूपी भुजंग/सर्प से रहित है; आप विशेष गुण सम्पन्न हैं, पूज्य हैं, सच्चारित्र के हार स्वरूप हैं, सौभाग्यवान् हैं तथा विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न हैं ॥ 22 ॥

विरोधतश्च यो नभस्चरैः स्थिरश्च संकटे,
तडट् तडट् तडट् तडन्निनादकैर्भयंकरे ।
निजात्मशुद्धमंदिरे ध्रुवे वसेच्च पार्श्व! मे,
समत्वमूर्ति-पार्श्वनाथ! काशिपार्थ-नंदन! ॥23॥

प्राचीन काल में पूर्व विरोध अथवा वैर के कारण तडट् तडट् तडट् तडट् ध्वनि करने वाले देव के द्वारा भयंकर उपसर्ग देने पर भी स्थिर/अचल थे; ऐसे हे काशीनरेश के नंदन! समता की मूर्ति पार्श्वनाथ! जिन! मेरे शाश्वत निजात्मा के शुद्ध मंदिर में निवास करो॥ 23॥

महत्तरं महानुभाव - मोक्षमार्ग - मार्गिकं,
महार्णवं महन्त - मंगलं महार्ह - माठरम् ।
मामत्म - मार्जनं महालयं मराल - मार्मिकं,
नमोऽस्तु मन्त्रतो महा - महात्मवीर - शंकरम् ॥24॥

जो महासागर हैं, महंत अर्थात् मुख्यपद पर स्थित हैं, कल्याण के प्रदाता हैं, अनुपमेय हैं, आत्मब्रह्म में रमण करने वाले हैं, जो प्रधान हैं, यशस्वी हैं, मोक्षमार्ग के यात्री हैं, परमात्मा अथवा पवित्र स्थान हैं, सौम्य हैं, गहरी अन्तर्दृष्टि रखने वाले हैं तथा मेरी आत्मा को स्वच्छ करने वाले हैं; आदर के साथ उन महान्, आनन्द को देने वाले प्रभु को महात्मा-वीर तीर्थेश को नमस्कार हो॥ 24॥

पठेत्कृत विशुद्धनंदनेन शासकस्तुतिं,
भवेत्स्मरब्रुवज्जनः सुकीर्ति-बुद्धि-शालिनः।
पुश्नच सो निजात्म-भक्तिरंजितश्च नित्यशः,
समस्त-कर्मणां विनश्च चादिवीरवद् भवेद् ॥25॥

विशुद्धनंदन अर्थात् श्रमण आदित्यसागर के द्वारा रचित इस विशुद्ध/निर्मल/पवित्र आदिवीर-शंकर नामक स्तोत्र को अथवा शासक प्रभु की

स्तुति को जो पढ़ता है, स्मृति में रखता है तथा कहता है, वह सज्जन उत्तम बुद्धि, उत्तम कीर्ति को धारण करने वाला होता है। और पुनः वह भव्यात्मा नित्य ही निजात्मा की भक्ति में तल्लीन होता है और अंत में सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करके आदितीर्थेश अथवा वीर–वर्धमान के सदृश सिद्ध हो जाता है ॥ 25 ॥

॥ इति आदिवीरशंकर स्तुतिः समाप्तः ॥

॥ इस प्रकार आदिवीर–शंकर स्तुति समाप्त हुई ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

(खण्ड-2)

आलोचना-पाठ

(दोहा)

वंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज॥ 1॥

(सखी)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काज, तुम शरण लही जिनराज॥ 2॥

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी॥ 3॥

समरंभ-समारंभ-आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥ 4॥

शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥ 5॥

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने॥ 6॥

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधि दोष उपायो॥ 7॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनिता सों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विध कीनो॥ 8॥

सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने॥ 9॥

फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसनन सेये दुखकारे॥ 10॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो॥ 11॥

अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये॥ 12॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥ 13॥

निद्रावश शयन करायो, सुपने मधि दोष लगायो।
फिर जागि विषय-वन धायो,नानाविध विषफल खायो॥14॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखा धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया॥ 15॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविध विकलप उपजायो।
कछु सुध बुध नाहि रही है, मिथ्या मति छाय गयी है॥ 16॥

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहूँ में दोष जु कीनी।
भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान-विषैं सब पइये॥17॥

हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहि लीनी॥ 18॥

पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागा चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो,पंखातैं पवन विलोल्यो॥19॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु बिदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंद॥ 20॥

हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अग्नि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये॥ 21॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागाँ बुहारी, चिंउटी आदिक जीव बिदारी॥ 22॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हु पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई॥ 23॥

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये॥ 24॥

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया॥ 25॥

पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरंभ हिंसा साज।
कीने तिसनावश अघ भारी,करुणा नहिं रंच विचारी॥ 26॥

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई॥ 27॥

ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, बचतैं कैसे करि गावै॥ 28॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है॥ 29॥

इक गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुख मेटो अंतरजामी॥ 30॥

द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अंतरजामी॥ 31॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुख मेटो अंतरजामी॥ 32॥

इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरिजै, परमातम निज-पद दीजै॥ 33॥

(दोहा)

दोषरहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय॥ 34॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिए,चरण शरन आनन्द॥ 35॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥ 1॥

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्यभाव-धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःखसमूह को हरते हैं॥ 2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर-धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ॥ 3॥

अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥ 4॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर - कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥ 5॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥ 6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे॥ 7॥

होकर सुख में मग्न न फूलें, दुख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहि भय खावें॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे॥ 8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित्र उन्नत कर अपना,मनुज जन्म फल सब पावे॥9॥

ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग, मरी, दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे॥ 10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय, कटुक, कठोर शब्द नहि, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें॥11॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

बारह भावना

(कविवर भूधरदास जी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥ 1॥

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोऊ न राखनहार॥ 2॥

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कबहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥ 3॥

आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥4॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय॥ 5॥

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥ 6॥

मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहुँ ओर, सरबस लूटैं सुध नहीं॥ 7॥

सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं ॥8॥

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥ 9॥

पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच-इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार॥ 10॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥ 11॥

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥ 12 ॥

जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥ 12 ॥

बारह भावना

(श्री मंगतराय जी कृत)

वंदूँ श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग-जीवन हित जान॥ 1 ॥

(छंद-विष्णुपद)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मणि सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी॥ 2 ॥

नहीं रहे वे लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में॥
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह भावन को॥ 3 ॥

1. अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै, ऋतु फिर-फिर कर आवै,
प्यारी आयू ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता,
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता॥ 4 ॥

ओस-बूँद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी,
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी।
इंद्रजाल आकाश-नगर-सम, जग-संपत्ति सारी,
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥ 5 ॥

2. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव-वन में,
नहीं बचावनहारा कोई, यों समझो मन में।
मंत्र तंत्र सेना धन संपत्ति, राज पाट छूटै,
वश नहि चलता, काल-लुटेरा,काय-नगरि लूटै॥ 6॥

चक्ररत्न हलधर-सा भाई, काम नहीं आया,
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया।
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई,
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥ 7॥

3. संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दुःखी रहता,
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव परिवर्तन सहता।
छेदन भेदन नरक पशुगति, बध-बंधन सहना,
राग-उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥ 8॥

भोगि पुण्य फल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली,
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा,
पंचमगति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा॥ 9॥

4. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी,
और किसी का क्या, इक दिन यह देह जुदी होगी।
कमला चलत न पैंड, जाय मरघट तक परिवारा,
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा॥ 10॥

ज्यों मेले में पंथी जन मिलि, नेह फिरैं धरते,
ज्यों तरुवर पै रैनबसेरा, पंछी आ करते।

कोस कोई दो कोस उड़, फिर थक-थक हारै,
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै॥ 11॥

5. अन्यत्व भावना

मोहरूप मृगतृष्णा जग में, मिथ्या-जल चमकै,
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़ैं थक-थककै।
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक-भटक मरता,
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥12॥

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी,
मिले अनादि यतनतैं बिछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेदज्ञान करना,
जौलों पौरुष थकै न तौलों, उद्यम सों चरना॥13॥

6. अशुचि भावना

तू नित पोखै, यह सूखे, ज्यों धोवै, त्यों मैली,
निश-दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली।
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी,
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रकट व्याधि घेरी॥14॥
काना पौंड़ा पड़ा हाथ यह, चूसै तो रोवै,
फलै अनंत जु धर्मध्यान की, भूमि-विषै बोवै।
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी,
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी॥15॥

7. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी, त्यों आस्रव कर्मन को,
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को।
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निश-दिन चेतन को,
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बंधन को॥ 16॥

पन मिथ्यात्व योग पद्रंह, द्वादश अविरति जानो,
पंच-रु-बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।
मोह-भाव की ममता टारे, पर-परिणति खोते,
करैं मोक्ष का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते॥ 17॥

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता,
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता।
पंच महाव्रत समिति गुप्ति कर,वचन काय मन को,
दशविध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को॥18॥

यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते,
सुपन-दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते।
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्धि-भावन संवर भावै,
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै॥19॥

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी,
संवर रोके कर्म, निर्जरा है सोखनहारी ।
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली,
दूजी है अविपाक, पकावे पालविषै माली॥20॥
पहली सबके होय, नहीं कुछ सरै काम तेरा,
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा।
संवर सहित करो तप प्राणी, मिलै मुकति रानी,
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥21॥

10. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो,
पुरुष रूप कर कटी भये, षट् द्रव्यन सो मानों।

इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है,
जीव रु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है ॥22॥

पाप-पुण्य सों जीव जगत में,नित सुख-दुःख भरता,
अपनी करनी आप भरै, शिर औरन के धरता।
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा,
निजपद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा ॥23॥

11. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी,
नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना,
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना ॥ 24 ॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना,
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्धभाव करना।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै,
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥25॥

12. धर्म भावना

धर्म 'अहिंसा परम धर्मः,' ही सच्चा जानो,
जो पर को दुःख दे सुख माने, उसे पतित मानो।
राग-द्वेष मद मोह घटा, आतम रुचि प्रकटावे,
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी, भव-सिन्धु पार जावे ॥ 26 ॥

वीतराग सर्वज्ञ दोष-बिन, श्रीजिन की वानी,
सप्त तत्त्व का वर्णन जा में, सबको सुखदानी।
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना,
''मंगत''इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर तरना ॥ 27 ॥

॥ इति मंगतरायजी कृत बारह भावना ॥

वज्रनाभि चक्रवर्ती की

वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करैं, धर्म विसारै नाहिं॥ 1॥

(जोगीरासा या नरेन्द्र छन्द)

इहविधि राज करै नर-नायक, भोगै पुण्य विशालो।
सुख-सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्म संयोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखि शिरीगुरु के पद-पंकज, लोचन-अलि आनन्दे॥ 2॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यौ, चरनन में दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते सब बेरस लागे॥ 3॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम-बुधि भागी।
भव तन भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी॥
इह संसार-महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरण जरा दव दाहै, जीव महादुख पावै॥ 4॥

कबहूँ जाय नरक तिथि भुंजे, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, बध बन्धन भयकारी॥
सुरगति में परसम्पत्ति देखे,राग उदय दुख होई।
मानुषयोनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहिं कोई॥ 5॥

कोई इष्ट वियोगी विलखे, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी॥

किस ही घर कलहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई॥ 6॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मेरे तब रोवै।
खोटी संतति सों दुख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै॥
पुण्य-उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुखदाता॥ 7॥

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे को शिव-साधन करते, संजमसो अनुरागै॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई॥ 8॥

सात कुधातु भरी मल मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है॥
नव मल द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिए घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै॥ 9॥

पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै।
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है॥10॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागें नीके॥
वज्र अगनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पन्थ सहाई॥ 11॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, तो सब कंचन मानै॥

ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे॥ 12॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राज समाज महा अघ कारण, बैर बढ़ावनहारा।
वेश्या-सम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा॥ 13॥

मोह महारिपु बैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे।
घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार असार और-सब, यही चक्री चितधारी॥ 14॥

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक सम्पत्ति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी॥ 15॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरुचरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥16॥

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ॥ 17॥

॥ इति श्री वज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

समाधि भावना

दिन-रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ॥
शत्रु अगर कोई हो, सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धरकर,सबसे क्षमा कराऊँ॥
त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥
जागें नहीं कषायें, नहिं वेदना सतावें।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ॥
आतम स्वरूप, अथवा आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ॥
धरमात्मा निकट हों, चरचा धरम सुनावें।
वो सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ॥
जीने की हो न वाञ्छा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ॥
भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ॥
रत्नत्रय का हो पालन, हो अन्त में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह,जीवन सफल बनाऊँ॥

समाधि-भक्ति

तेरी छत्रच्छाया भगवन्! मेरे शिर पर हो।
मेरी अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥
जिनवाणी रसपान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ।
आर्यजनों की संगति पाऊँ, व्रत-संयम चाहूँ॥
गुणीजनों के सद्गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 1॥
तेरी छत्रच्छाया...........

परनिन्दा न मुँह से निकले, मधुर वचन बोलूँ।
हृदय तराजू पर हितकारी, सम्भाषण तौलूँ॥
आत्म-तत्त्व की रहे भावना, भाव विमल भर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 2॥
तेरी छत्रच्छाया भगवन्! मेरे शिर पर हो।
मेरी अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥

जिनशासन में प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यापथ छोड़ूँ।
निष्कलंक चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ॥
जन्म-जन्म में जैनधर्म यह, मिले कृपा कर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 3॥
तेरी छत्रच्छाया...........

मरण समय गुरु-पादमूल हो, सन्त समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की, गंगा नित्य बहे॥
भव-भव में सन्यास मरण हो, नाथ हाथ धर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 4॥
तेरी छत्रच्छाया...........

बाल्यकाल से अब तक मैंने, जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभो! आप तो, बस इतना फल दो॥
श्वास-श्वास अन्तिम श्वासों में, णमोकार भर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 5॥
तेरी छत्रच्छाया...........

विषय कषायों को मैं त्यागूँ, तजूँ परिग्रह को।
मोक्षमार्ग पर बढ़ता जाऊँ, नाथ अनुग्रह हो॥
तन पिंजर से मुझे निकालो, सिद्धालय धर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 6॥
तेरी छत्रच्छाया...........

भद्रबाहु सम गुरु हमारे, हमें भद्रता दो।
रत्नत्रय संयम की शुचिता, हृदय सरलता दो॥
चन्द्रगुप्त सी गुरु सेवा का, पाठ हृदय भर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 7॥
तेरी छत्रच्छाया भगवन्!, मेरे शिर पर हो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥

अशुभ न सोचूँ, अशुभ न चाहूँ, अशुभ नहीं देखूँ।
अशुभ सुनूँ ना, अशुभ कहूँ ना, अशुभ नहीं लेखूँ॥
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 8॥
तेरी छत्रच्छाया...........

तेरे चरण कमल-द्वय जिनवर! रहें हृदय मेरे।
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे॥
पण्डित-पण्डित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 9॥
तेरी छत्रच्छाया...........

मैंने जो जो पाप किए हों, वह सब माफ करो।
खड़ा अदालत में हूँ स्वामी, अब इंसाफ करो॥
मेरे अपराधों को गुरुवर, आज क्षमा कर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 10॥
तेरी छत्रच्छाया...........

दु:ख नाश हों, कर्म नाश हों, बोधि-लाभ वर दो।
जिन गुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमें भर दो॥
यही प्रार्थना, यही भावना, पूर्ण आप कर दो।
मेरा अन्तिम-मरण-समाधि, तेरे दर पर हो॥ 11॥
तेरी छत्रच्छाया...........

॥ इति आचार्यश्री विभवसागरजी कृत समाधि-भक्ति॥

छहढाला

(श्री पं. प्रवर दौलतरामजी कृत)

प्रथम ढाल

मंगलाचरण - सोरठा छन्द

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिके ॥ 1 ॥

''जीवों की चाह-चौपाई छन्द''

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार॥ 2 ॥

''चेतावनी एवं संसार भ्रमण का कारण''

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥ 3 ॥

''प्रमाणता और निगोद के दुःख''

तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार॥ 4 ॥

''निगोद के दुःख और वहाँ से निकलने का क्रम''

एक श्वास में अठ-दश बार जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥ 5 ॥

''त्रस पर्याय की दुर्लभता एव तिर्यंच गति के दुःख''

दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।
लट-पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यो सही बहु पीर॥ 6 ॥

''त्रिर्यंचगति में असैनी और सैनी के दुःख''

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो॥
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर॥ 7 ॥

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास॥ 8॥

वध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भनैं।
अति संक्लेश भाव तैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो॥ 9॥

"नरकगति के दुःख"

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी॥10॥

सेमर तरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत-उष्णता थाय॥ 11॥

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधुनीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय॥ 12॥

"नरक की भूख और मनुष्यगति में उत्पत्ति का कारण"

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लौं सहे, करम जोग तैं नरगति लहै॥ 13॥

"मनुष्यगति के दुःख"

जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर॥ 14॥

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणि रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै अपनो॥ 15॥

"अकामनिर्जरा का फल एवं देवगति के दुःख"

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो॥ 16॥

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥ 17॥

द्वितीय ढाल

(पद्धरि छन्द)

''संसार भ्रमण का कारण''

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्ण वश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥ 1॥

''अगहित मिथ्या दर्शन व जीव का लक्षण''

जीवादि प्रयोजन भूत तत्व, सरधैं तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, विन मूरत चिन्मूरत अनूप॥ 2॥

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करें देह में निज पिछान॥ 3॥

''मिथ्यादृष्टि की मान्यता''

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥ 4॥

''अजीव एवं आस्रव तत्व का विपरीत श्रद्धान''

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन॥ 5॥

''बन्ध और संवर तत्व का विपरीत श्रद्धान''

शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति अरति करै निज पद विसार।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्ट दान॥6॥

''निर्जरा और मोक्ष तत्व का विपरीत श्रद्धान''

रोकी न चाह जिन शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान॥ 7॥

''अगृहीत चारित्र''

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्र।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह॥ 8॥

''गृहीत मिथ्यादर्शन, कुगरु एवं कुदेव, कुधर्म का लक्षण''

जो कुगुरु, कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शन मोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह॥ 9॥

धारें कुलिंग लहि महतभाव, ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव।
जे राग-द्वेषमलकरमलीन, वनितगदादिजुत चिह्नचीन॥10॥

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत॥11॥

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत॥ 11॥

जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहैं अशर्म।
याकूँ गृहीतमिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान॥ 12॥

''गृहीत मिथ्याज्ञान''

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिरचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥13॥

''गृहीत मिथ्या चारित्र''

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देह दाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन॥ 14॥

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल-भ्रमणको देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग॥ 15॥

तृतीय ढाल

(नरेन्द्र छन्द)

''संज्ञा सुख और मोक्षमार्ग''

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिए॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिवमग, सो द्विविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो॥ 1॥

"निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप"

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यक्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई॥ 2॥

"व्यवहार सम्यग्दर्शन"

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दृढ़ प्रतीति उर आनो॥ 3॥

"जीव के भेद"

बहिरातम, अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अंतर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥ 4॥

मध्यम अन्तर आतम हैं, जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥ 5॥

"निकल परमात्मा का लक्षण एवं आनन्द का उपाय"

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगे शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै॥ 6॥

"अजीव द्रव्य"

चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गंध दु, फरस वसु जाके हैं॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म-सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी॥ 7॥

"आस्रव तत्त्व"

सकल द्रव्य को बास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निश-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो॥
यों अजीव अब आस्त्रव सुनिये, मन वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥ 8॥

"आस्रव त्यागोपदेश बंध, निर्जरा तत्व का लक्षण"

ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधिसों, सो बन्धन कबहुँ न सजिये॥
शम-दम तें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तपबलतें विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥ 9॥

"मोक्ष तत्व, व्यवहार सम्यक्त्व एवं उसके कारण"

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिवथिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट-अंगजुत धारो॥। 10॥

"सम्यग्दर्शन के 25 दोष"

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुणन को, कैसे तजिये गहिये॥ 11॥

"आठ अंग"

जिन-वच में शंका न धार, भव सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर-औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावैं।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सु दिढ़ावे॥
धर्मीसों गौ-वच्छ-प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावैं।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं॥12॥

"आठ मद"

पिता भूप व मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै॥
तप को मद न मद प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मल ठानै॥13॥

"छह अनायतन व तीन मूढ़ता"

कुगुरु, कुदेव, कुवृष-सेवक की नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन कुगुरादिक तिन्हें न नमन करैं हैं॥14॥
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यक्दरश सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संयम, पै सुरनाथ जजे हैं॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥

"सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ-कहाँ पैदा नहीं होता?
सर्वोत्तम सुख एवं धर्म का मूल"

प्रथम नरक बिन षड् भू ज्योतिष, वान भवन षड् नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहीं, उपजत सम्यक् धारी॥
तीन लोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी॥16॥

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है,जो सम्यक् नहिं होवै॥17॥

चतुर्थ ढाल

"सम्यग्ज्ञान का लक्षण व समय"

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यक्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, ज्यों प्रकटावन भान॥
सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि दुहूँ में भेद अबाधो॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हूँ, प्रकाश दीपकतैं होई॥ 1॥

"सम्यग्ज्ञान के भेद एवं प्रत्यक्ष का लक्षण"

तासभेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माँहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिए, जानैं जिय स्वच्छा॥2॥

"सकल प्रत्यक्ष का लक्षण व ज्ञान महिमा"

सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण॥3॥

"ज्ञानी"

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिनमाहिं, त्रिगुप्ति तें सहज टरैं ते॥

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ॥4॥
तातैं जिनवर कथित तत्त्व, अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै॥
यह मानुष-पर्याय, सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इह विधि गयें न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥5॥

''सम्यग्ज्ञान की महिमा और कारण''

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान का कारण, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ॥6॥

''सम्यग्ज्ञान का महत्व एवं विषय चाह रोकने के उपाय''

जे पूरब शिव गये, जांहि अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह दव-दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै॥7॥

''पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध''

पुण्य-पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर नाई॥
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ॥8॥

''सम्यक्चारित्र धारण का समय व भेद व अहिंसा सत्याणुव्रत का लक्षण''

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै॥9॥

"अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाणुव्रत तथा दिग्वन्न का लक्षण"

जल मृत्तिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सों रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरौ राखै।
दशदिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै॥ 10॥

"देशव्रत एवं अपध्यान, पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण"

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा॥
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश होय, अघ बनज कृषितैं॥ 11॥

"अनर्थदण्डों का स्वरूप एवं त्याग का उपदेश"

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे यश लाधै॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहू अनरथदण्ड हेतु , अघ तिन्हें न कीजै॥12॥

"शिक्षा व्रत"

धरि उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टय माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममतु निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै॥13॥

"निरतिचार व्रत पालने का उपदेश एवं फल"

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँतैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै॥ 14॥

पंचम ढाल

॥ भावनाओं के चिन्तन से लाभ॥

(चाल छन्द)

मुनि सकल व्रती बड़भागी, भव-भोगनतें वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई॥ 1॥

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुखठानै॥ 2॥

1. अनित्य भावना

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥ 3॥

2. अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥ 4॥

3. संसार भावना

चहुँ गति दुःख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा॥ 5॥

4. एकत्व भावना

शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगैं जिय एकहिं तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी॥ 6॥

5. अन्यत्व भावना

जल-पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुतरामा॥7॥

6. अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥8॥

7. आस्त्रव भावना

जो जोगन की चपलाई, तातै ह्वै आस्त्रव भाई।
आस्त्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे॥9॥

8. संवर भावना

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चितदीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥10॥

9. निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावैं, सोई शिवसुख दरसावै॥11॥

10. लोक भावना

किनहू न करै न धरैं को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माँहि बिन समता, दु:ख सहै जीव नित भ्रमता॥12॥

11. बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरिया पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ॥13॥

12. धर्म भावना

जो भावमोहतें न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे॥14॥

13. निश्चय धर्म धारण करने का अधिकारी

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥15॥

षष्ठम ढाल

॥ अहिंसादि 4 महाव्रतों का लक्षण॥

(हरिगीतिका छन्द)

षट्काय जीव न हननतैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल, तृण हू बिना दियो गहैं।
अठदश सहसविधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहे॥ 1॥

॥ परिग्रह त्यागव्रत एवं पाँच समिति॥

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं॥ 2॥

छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनै घर अशन का।
लें तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन का॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकै गहैं लखिकै धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥3॥

॥ तीन गुप्ति एवं पंचेन्द्रिय विजय॥

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय, आतम ध्यावते।
तिन सुथिर-मुद्रा देखि मृग गण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने॥। 4॥

॥ छह आवश्यक॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुति-रति करै प्रतिक्रम, तजै तन अहमेव को॥

॥ शेष 7 गुण एवं मुनियों की समता॥

जिनके न न्होन न दन्तधावन, लेश अम्बर आवरन।
भू माँहि पिछली रयन में, कछु शयन एकाशन करन॥ 5॥

इक बार दिन में ले आहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में॥
अरि-मित्र महल-मसान कंचन,-कांच निन्दन-थुति करन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में, सदा समता धरन॥ 6॥

॥ मुनियों के कर्त्तव्य एवं स्वरुपाचरण चारित्र॥

तप तपै द्वादश, धरै वृष दश, रत्नत्रय सेवै सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरै, चहै नहिं भव-सुख कदा॥
यों हैं सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधी, मिटै पर की प्रवृत्ति सब॥ 7॥

॥ स्वरूपाचरण चारित्र॥

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितै, निज भाव को न्यारा किया॥
निज मांहि निज के हेतु निज कर, आपमें आपै गह्यो।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यो॥ 8॥

जहाँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रकटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा॥9॥

परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान सुख-बल मय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै॥
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फल नितैं।
चित् पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुण करण्ड च्युति पुनि कलनितैं॥10॥

॥ अरहंत अवस्था॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहिं कह्यो॥
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो॥ 11॥

॥ सिद्ध स्वरूप॥

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन मांहि अष्टम भू बसै।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसै॥
संसार खार अपार, पारा-,वारि तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये॥। 12॥

॥ शिक्षा व्रत॥

निज माहिं लोक अलोक, गुण परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि कर सुख लिया॥13॥

॥ रत्नत्रय का फल एवं आत्महित की शिक्षा॥

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरें।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरें॥
इमि जानि आलस हानि, साहस ठाणि यह सिख आदरौ।
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलों झटिति निज हितकरौ॥14॥

॥ अन्तिम उपदेश॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब लो, त्याग निज-पद बेइये॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल'! होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै॥15॥

॥ ग्रथ रचना का समय॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल वैशाख।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख॥ 1॥
लघु-धी तथा प्रमादतें, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल॥ 2॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

श्री भावना द्वात्रिंशतिका

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ्य भावं विपरीत-वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव!॥ 1॥

शरीरत: कर्तुमनन्त-शक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति:॥ 2॥

दु:खे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे, योगे-वियोगे भवने-वने वा।
निराकृताशेष-ममत्व बुद्धे:, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ!॥ 3॥

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव,स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपकाविव॥ 4॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिन:, प्रमादत: सञ्चरता यतस्तत:।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता:,तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥ 5॥

विमुक्ति-मार्ग-प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्ष-वशेन दुर्धिया।
चारित्र-शुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!॥ 6॥

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवच: काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदु:खकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम्॥ 7॥

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मण:।
व्यधामनाचार-मपि प्रमादता:, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥ 8॥

क्षतिं मन:शुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलवृते-र्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहाति सक्तताम्॥ 9॥

यदर्थ-मात्रा-पदवाक्य-हीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम्॥ 10॥

बोधि: समाधि: परिणाम-शुद्धि:,स्वात्मोपलब्धि: शिवसौख्य-सिद्धि:।
चिन्तामणिं चिन्तित-वस्तु-दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि!॥ 11॥

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्र वृन्दैः, यः स्तूयते सर्व-नरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 12 ॥

यो दर्शनज्ञान-सुखस्वभावः समस्त-संसार-विकार-बाह्यः।
समाधि-गम्यः परमात्म-सञ्ज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 13 ॥

निषूदते यो भवदुःख-जालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगि-निरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 14 ॥

विमुक्ति-मार्ग-प्रतिपादको यो, यो जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 15 ॥

क्रोडीकृताशेष-शरीरि-वर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 16 ॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 17 ॥

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैर्, यो ध्वान्त सङ्घैरिव तिग्म रश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 18 ॥

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि।
स्वात्मस्थितं बोधमय-प्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 19 ॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्ट-मिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्त-मनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 20 ॥

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा, विषाद-निद्रा भय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरु -प्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 21 ॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः॥ 22 ॥

न संस्तरो भद्र समाधि-साधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्॥ 23 ॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥24॥

आत्मानमात्मन्यवलोकमानः, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्॥ 25 ॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरेसमस्ता, न शाश्वतः कर्मभवाः स्वकीयाः॥ 26 ॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥ 27 ॥

संयोगतो दुःख-मनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥ 28 ॥

सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं, संसार-कान्तार निपात-हेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्म-तत्त्वे॥ 29 ॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥ 30 ॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्॥31॥

यैः परमात्माऽमितगति वंद्यः, सर्व-विविक्तो-भृशमन-वद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥ 32 ॥

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मान-मीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥ 33 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

सामायिक पाठ (हिन्दी)

प्रेमभाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणास्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो॥ 1॥

वह अनन्त-बल-शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त-बल दो मुझको॥ 2॥

सुख-दुःख बैरी-बन्धु वर्ग में, काँच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद-कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो॥ 3॥

जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ॥ 4॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो॥ 5॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से॥ 6॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त॥ 7॥

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया॥ 8॥

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी-पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया॥ 9॥

मैंने छली और मायावी, हो असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया॥ 10॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे॥ 11॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परमदेव मम हृदय रहे॥ 12॥

दर्शन-ज्ञान-स्वभावी जिसने, सब विकार हों वमन किये।
परम ध्यानगोचर परमातम, परमदेव मम हृदय रहे॥ 13॥

जो भव-दु:ख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान॥14॥

मुक्तिमार्ग का दिग्दर्शक है, जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शी वह, देव रहे मम हृदय समीप॥ 15॥

निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी, परमदेव मम हृदय समीप॥ 16॥

देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करें मम हृदय पवित्र॥17॥

कर्म-कलंक अछूत न जिसको, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह-तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त॥ 18॥

जिसकी दिव्य-ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य-प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त॥ 19॥

जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित शान्त शिव,परमशरण मुझको वह आप्त॥ 20॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भव विषाद चिन्ता नहीं जिनको, परमशरण मुझको वह देव॥ 21॥

तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आतम-समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन॥22॥

इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, विश्व मानता है मातम।
हेय सभी हैं विषय-वासना, उपादेय निर्मल आतम॥ 23॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें॥ 24॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ॥ 25॥

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान-स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है॥ 26॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम-समूह रहें कैसे॥ 27॥

महा कष्ट पाता जो करता, पर-पदार्थ जड़-देह संयोग।
मोक्ष-महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग॥ 28॥

जो संसार-पतन के कारण, उन विकल्प-जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो॥ 29॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते॥ 30॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि॥ 31॥

निर्मल, सत्य, शिवं, सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण॥ 32॥

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं॥ 33॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

श्रावक प्रतिक्रमण

हे जिनेन्द्रदेव! हे देवाधिदेव! हे वीतरागी सर्वज्ञ, हितोपदेशी,अरिहन्त प्रभु! जीव में प्रमाद जनित अनेक दोष पाये जाते हैं। वे दोष प्रतिक्रमण करने के क्षय को प्राप्त होते हैं। इसलिए अनेक भवों में संचित हुये विचित्र कर्म रूप दोषों की विशुद्धि के लिए,पापों के प्रक्षालन के लिए,आत्म उत्थान के लिए, आतम जागरण के लिए; मैं श्रावक प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव! अत्यन्त पापी दुरात्मा, मूर्खबुद्धि, मायावी, लोभी और राग-द्वेष से मलीन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका निरन्तर समीचीन मार्ग से चलने का इच्छुक मैं,आप जिनेन्द्र के चरण कमलों में अब निंदा (अर्थात् स्वसाक्षी से अपने दुष्कृत्यों की निन्दा) करता हुआ त्याग करता हूँ, प्रत्याख्यान करता हूँ मेरे दोष मिथ्या होवें।

सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ सब जीव मुझे क्षमा करे। सब जीवों में मेरा मैत्री भाव है, मेरा किसी के साथ वैरभाव नहीं है।

हे भगवन्! मैं राग-द्वेष हर्ष दीनभाव, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति का परित्याग करता हूँ।

हाय! हाय! मैंने दुष्कर्म किये, हाय! मैंने दुष्ट कर्मों का चिंतन किया, हाय! मैंने दुष्ट मर्म भेदी वचन कहे। अब मुझे अपने द्वारा किये कुत्सित कर्मों से बहुत पश्चात्ताप होता है मेरा अन्तःकरण अत्यन्त संक्लेशित हो रहा है मैं भीतर ही भीतर खेद अनुभव करता हूँ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से की गई किसी जीव की विराधना का आत्मनिंदा या गर्हा पूर्वक मन-वचन-काय की शुद्धता से परित्याग करना प्रतिक्रमण है। इसलिए हे भगवन्! एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक,वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन जीवों का स्वयं वियोगरूप मरण किया हो, कराया हो या करने वालों की अनुमोदना की हो; वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, निरर्थक हो।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व, उत्तम व्रतों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, 17 प्रकार के निषिद्धिका स्थानों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहंत, निश्शेष कर्मक्षय कारक सिद्ध, ज्ञानावरण दर्शनावरणादि कर्म की रज से रहित, समताधारक, शुभमन, शुभध्यानधारी, परीषह उपसर्गों के सहन में समर्थ उपशम योग वाले, समभाव वाले, अरहंतादि को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

माया-मिथ्या-निदान शल्य के नाशक, संसारी जीवों के शल्य नाशक, निर्भय, रागरहित, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निष्परिग्रह, माया, मिथ्या-निदान शल्य रहित, मान माया और झूठ का मर्दन करने वाले, हे तप प्रभावक! हे गुणों के स्वामी गुणरत्न! हे शीलसागर! हे अनन्त चतुष्टय धारक! हे अनन्त! हे अप्रमेय! हे पूजनीय महावीर! हे वर्द्धमान हे बुद्धिऋषी! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अरिहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चौदहपूर्व के ज्ञाता, श्रुत समूह से युक्त, बारह प्रकार का तप और तपस्वी, 84 लाख गुण और गुणवान्, ऋद्धिधारी मुनि, तीर्थ और तीर्थंकर, प्रवचन व प्रवचन के धारी, ज्ञान और ज्ञानी सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि जीव, संयम और संयमी, विनय और विनयवान्, ब्रह्मचारी आश्रम और ब्रह्मचारी, गुप्ति और गुप्ति के धारक, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह त्याग और त्यागी, समिति और समिति के धारक, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षमा और क्षमागुण के धारक, क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले, बोधित बुद्ध व कोष्ठबुद्धि के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्यालय (कृत्रिम-अकृत्रिम) आदि ये सब मेरे लिए मंगलदायक हों।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक सिद्धायतनों को नमस्कार हो। निर्वाण स्थलों को, अष्टापद कैलाश पर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनार,

चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमानगरी, हस्तिपालक राजा की सभा में और जो भी कोई निषिद्धिका स्थान हैं, अढाईद्वीप और दो समुद्रों में ईषत्प्राग्भार, मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों को, बुद्धों को अष्टकर्मों से रहित, भाव कर्ममल से रहित, निर्मल गुरु आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर तथा चार प्रकार के श्रमण संघ (ऋषि,यति,मुनि वा अनगार) भरत ऐरावत दस क्षेत्रों में, पाँच विदेह क्षेत्रों में और मनुष्य लोक में जो साधु संयमी तपस्वी हैं, ये सब मेरा मंगल करें, इनको में विशुद्ध भाव से मस्तक झुकाकर सिद्धों की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मैं मंगल करता हूँ।

हे दया के सागर! मूलगुणों के अन्तर्गत मद्यत्याग व्रत में मर्यादा के बाहर, अचार, मुरब्बा आदि सर्व प्रकार के सन्धानों का, मर्यादा से रहित, दही, छाँछ, काँजी आदि का नशीले पदार्थों का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो या करने वालों की अनुमोदना की हो तो, मेरा दोष मिथ्या होवे।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

हे करुणा के सागर! मूलगुणों के अन्तर्गत माँस त्याग व्रत में चमड़े के बेल्ट, पर्स, जूता, चप्पल, घड़ी का पट्टा आदि का स्पर्श हो गया हो, चमड़े से अच्छादित अथवा स्पर्शित हींग, घी, तेल, जल आदि का अशोधित भोजन का, जिसमें त्रस जीवों का संदेह हो ऐसे भोजन का, बिना छना हुआ अथवा विधिपूर्वक दुहरे छन्ने (वस्त्र) से नहीं छाना गया, घी, दूध, तेल, जल आदि का, सड़े घुने हये अनाज आदि का, शोधन विधि से अनभिज्ञ साधर्मी या शोधन विधि से परिचित विधर्मी के हाथ से तैयार हुए भोजन का, बासा भोजन का, रात्रि भोजन का, चलित रस पदार्थ का, अमर्यादित दूध, दही, छाँछ, घी आदि पदार्थों का; स्वयं सेवन किया हो, कराया हो, करते हुये की अनुमोदना की हो, तज्जन्य अन्य जो भी अतिचार अनाचार दोष लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

हे परमपिता परमात्मा! मूलगुणों के अन्तर्गत मधुत्याग व्रत में मैंने औषधि के निमित्त मधु का, फूलों के रसों का, गुलकन्द आदि का; स्वयं सेवन किया हो, कराया हो, करते हुये की अनुमोदना की हो, तज्जन्य अन्य जो भी अतिचार अनाचार दोष लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

हे नित्य निरंजन देव! मूलगुणों के अन्तर्गत पाँच उदम्बर फलों का सेवन हुआ हो, जीवदया व्रत पालन में प्रमाद किया हो, अज्ञान रखा हो, अंगोपांग छेदन किया हो, कराया हो या करते हुये की अनुमोदना की हो, तज्जन्य जो भी अतिचार अनाचार दोष लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

जुआ, माँस, मन्दिरा, शिकार, वेश्यागमन, चोरी और परस्त्री गमन–इन सप्तव्यसन सेवन करने में जो भी पाप लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

देवदर्शन, पूजन, साधु उपासना, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, संयम पालन, इच्छायें सीमित करना, अर्जित संपत्ति का सदुपयोग (दान देना) षडावश्यक पालन में अतिचारपूर्वक जो भी दोष लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा और भोजन कथा करने से जो भी पाप लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

जीवों को चलाने वाले दुष्टमन, दुष्ट विचार, दुष्ट काय– इन तीनों दण्डों से माया, मिथ्या और निदान इन तीन शल्यों से और सात गारव, रस गारव, ऋद्धि गारव–इन तीन गारवों द्वारा जो भी पाप लगे हों, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग–इन पाँचों कारणों द्वारा जो भी बंध हुआ हो, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अगुप्ति भय, अरक्षक भय, अकस्मात भय-इन सात भयों द्वारा जो पापबंध हुआ हो, वे सब मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्त्व हैं, उन्हीं की मैं श्रद्धा करता हूँ। इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओं में जो कोई अतिचार, अनाचार हुये हों, तत्सम्बन्धी मेरे समस्त पाप मिथ्या हों।

॥ तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओं में अतिचार, अनाचार, आभोग, अनाभोग, कायिक, वाचनिक, मानसिक, दुश्चिंतन हुआ हो, दुश्चरित्र हुआ हो, दुर्वचनों का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुये हो, ज्ञान में, दर्शन में, चरित्र में, सूत्र में, सामायिक में, ग्यारह प्रतिमाओं की विराधना हुई हो, आठ कर्मों का नाश करने वाली क्रियाओं के प्रयत्न करने में, श्वासोच्छवास में, नेत्रों की टिमकार से, खाँसने में, छींकने में, जंमाई लेने में, सूक्ष्म अंगों के हलन-चलन में, दृष्टि को चलायमान करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओं से सूत्रपाठ आदि क्रियाओं का विस्मरण किया हो अन्यथा प्ररूपणा की हों, असमाधि को प्राप्त करने वाली क्रियाओं के आचरण से जो दोष लगा हों तो मैं इस प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ। जब तक अरहंत भगवन्तों की पर्युपासना करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

॥ कायोत्सर्गपूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र का जाप ॥

हे भगवन्! मेरा किसी के साथ राग नहीं, द्वेष नहीं, वैर नहीं अपितु सर्व जीवों के प्रति उत्तम क्षमा भाव है।

हे प्रभु! हे परमात्मा! जब तक मोक्ष पद की प्राप्ति न हो, तब तक

भव–भव में मुझे शास्त्रों के पठन–पाठन का अभ्यास, जिनेन्द्र पूजा, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषों के गुणों की चर्चा, दूसरों के दोष कहने में मौन, सभी प्राणियों के प्रति प्रिय और हितकारी वचन एवं आत्मकल्याण की भावना प्राप्त होती रहे।

हे जिनेन्द्र! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक आपके चरण मेरे हृदय में एवं मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे।

हे भगवन्! मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, शुभ गति हो, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्रदेव के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो; ऐसी मेरी भावना है; ऐसी मेरी भावना है, ऐसी मेरी भावना है।

॥ कायोत्सर्गपूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र का जाप ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

अथ आचार्य वंदना

श्री सिद्धभक्ति

अथ पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु-लघु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥ 1॥
तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमस्सामि॥ 2॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

श्री श्रुतभक्ति

अथ पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

कोटी-शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस् त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्र-संख्या-मेतच्छ्रुतं पञ्च-पदं नमामि॥ 1॥
अरहंत - भासियत्थं, गणहर - देवेहि गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण-महोवहिं सिरसा॥ 2॥

इच्छामि भंते! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं अंगोवंग-

पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

श्री आचार्यभक्ति

अथ पौर्वाह्णिक (अपराह्णिक) आचार्य वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री आचार्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपो निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः॥ 1॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे॥ 2॥
गुरु-भक्ति संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति॥ 3॥
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः,
षट्-कर्माभिः रतास्तपोधन-धनाः, साधु-क्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्, चन्द्रार्क-तेजोऽधिका,
मोक्ष-द्वार-कपाट पाठन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः॥ 4॥
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान - दर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णव - गम्भीरा, मोक्ष - मार्गोपदेशकाः॥ 5॥

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, पंच-विहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

कल्पांत-काल वचनाविषयागुरूणां,
लोकोत्तराऽखिल-गुणस्तवनं प्रशंसा।
स्वामिन्! नमोस्तु शिरसा मनसा वचोभिः,
दध्यात् शिवं विमलसागर-सूरिवर्यः॥1॥

तुभ्यं नमः रवि-समा तव तेज-काय!
तुभ्यं नमः शशि-समुज्ज्वल-वैभवाय।
तुभ्यं नमो दुरित-जाल विनाशनाय।
तुभ्यं नमो गुरु-विराग-शिवप्रदाय॥2॥

तुभ्यं नमोस्तु भवसागर-तारणाय।
तुभ्यं नमोस्तु भवदुःख निवारणाय।
अध्यात्ममूर्ति गुरुदेव नमोस्तु तुभ्यं।
आचार्य वर्य सुविशुद्ध! नमोस्तु तुभ्यं॥3॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

आरती

हे गुरुवर तेरे चरणों में, हम वंदन करने आये हैं।
हम वंदन करने आये हैं, हम आरती करने आये हैं॥
तुम काम क्रोध मद लोभ छोड़, निज आतम को पहिचाना है।
घर कुटुम्ब छोड़कर निकल पड़े, धर लिया दिगम्बर बाना है॥
॥ हे गुरुवर... ॥ 1 ॥

छोटी-सी आयु में स्वामी, विषयों से मन अकुलाया है।
तप, संयम, शील साधना में, दृढ़ अपने मन को पाया है।
॥ हे गुरुवर... ॥ 2 ॥

कितना भीषण संताप पड़े, हो क्षुधा तृषा की बाधाएँ।
स्थिर मन से सब सहते हो, बाधाएँ कितनी आ जाये॥
॥ हे गुरुवर... ॥ 3 ॥

नहीं ब्याह किया, घर बार तजा, समता के दीप जलाये हैं।
हे महाव्रती संयमधारी, चरणों में शीश झुकाये हैं॥
॥ हे गुरुवर... ॥ 4 ॥

तुम जैनधर्म के सूरज हो, तप त्याग की अद्भुत मूरत हो।
है धन्य धन्य महिमा तेरी, तम हरने-वाली सूरत हो॥
॥ हे गुरुवर... ॥ 5 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

सामायिक विधि

(पूर्व दिशा में एक कायोत्सर्ग कर नमस्कार करके निम्न दिग्वंदना पढ़ें)

1. पूर्व दिशा में विराजमान- अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्ब जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, उन सभी को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

(दक्षिण दिशा में एक कायोत्सर्ग कर नमस्कार करके निम्न दिग्वंदना पढ़ें)

2. दक्षिण दिशा में विराजमान- अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्ब जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, उन सभी को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

(पश्चिम दिशा में एक कायोत्सर्ग कर नमस्कार करके निम्न दिग्वंदना पढ़ें)

3. पश्चिम दिशा में विराजमान- अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्ब जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, उन सभी को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

(उत्तर दिशा में एक कायोत्सर्ग कर नमस्कार करके निम्न दिग्वंदना पढ़ें)

4. उत्तर दिशा में विराजमान- अरिहंतजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, जिनधर्म, जिनागम, कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्ब जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, उन सभी को मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली, समुद्घात केवली, उपसर्ग केवली, मूक केवली, अंतः कृत केवलीभ्योः नमो नमः। तीर्थंकरोपदिष्ट श्रुताय नमो नमः। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धारकाचार्य उपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमो नमः।

श्री मूलसंघे कुन्दकुन्द आम्नाये, बलात्कारगणे, सेनगच्छे, नंदीसंघस्य परम्परायां श्री आदिसागर आचार्यः जातःतत् शिष्यः श्री महावीरकीर्ति आचार्यः जातःतत् शिष्यः श्री विमलसागर आचार्यः जातःतत् शिष्यः श्री विरागसागर आचार्यः जातःतत् शिष्यः श्री विशुद्धसागर आचार्यः जातःतत् शिष्यः अहं (अपना नाम बोलें)..... जम्बूवृक्षोपलक्षित जम्बूद्वीपे, भरतक्षेत्रे, आर्यखंडे, भारत देशे,.... प्रान्ते......नगरे 1008 श्री......जिन-चैत्यालय मध्ये, अद्य वीरनिर्वाण संवत्.....मासोसत्तमासे... मासे.... पक्षे शुभ तिथौ.... पौर्वाह्णिक/मध्याह्णिक/अपराह्णिक काले घटिका द्वय (48 मि.) पर्यन्तं सर्वसावद्य-योग-विरतोऽस्मि।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

(खण्ड-3)

विनय पाठ

(दोहा)

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥ 1॥

अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज॥ 2॥

तिहुँ जग की पीड़ा-हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार॥ 3॥

हरता अघ अँधियार के, करता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निजगुण रास॥ 4॥

धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग भूप॥ 5॥

मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव॥ 6॥

भविजन को भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार॥ 7॥

चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल॥ 8॥

तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय॥ 9॥

चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥ 10॥

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥11॥

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव॥ 12 ॥

थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥13॥

राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबैं, मेटो राग कुटेव॥14॥

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥15॥

तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥ 16 ॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव-सिन्धु में, खेव लगाओ पार॥17॥

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजै आप समान॥ 18 ॥

तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार॥ 19 ॥

जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटैं उर झार।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार॥ 20 ॥

वन्दों पाँचों परमगुरु सुर-गुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश॥ 21 ॥

चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यों पाठ सुखदाय॥ 22 ॥

मंगल मूरति परमपद, पंच धरों नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान॥ 23॥

मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंतदेव।
मंगलकारी सिद्धपद, सो वन्दों स्वयमेव॥ 24॥

मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन-वच-काय॥ 25॥

मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करो, हरो असाता कर्म॥ 26॥

या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह, भव सागर दृढ़ पोत॥ 27॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि॥

(यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये)

पूजा पीठिका (संस्कृत)

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु!!
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि-साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ 1 ॥
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ 2 ॥
अपराजित-मंत्रोऽयं, सर्व-विघ्न विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥ 3 ॥
एसो पंच-णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ 4 ॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ 5 ॥
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्ष-लक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ 6 ॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ 7 ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुलपुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिन-गृहे जिननाथमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिन-गृहे जिनकल्याणमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिन-गृहे परमेष्ठिमहं यजे॥

ॐ ह्रीं श्रीअरिहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी अर्घ्य

उदक-चन्दन-तन्दुलपुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिन-गृहे जिनसूत्रमहं यजे॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा अर्घ्य

श्रीमज्जिनेन्द्र - मभिवन्द्य जगत्त्रयेशं ,
स्याद्वाद - नायकमनन्त - चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ - सुदृशां सुकृतैकहेतुर्,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि॥ 1॥

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय॥ 2॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय॥ 3॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्॥ 4॥

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि ,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि॥ 5॥

ॐ ह्रीं यज्ञविधिप्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल पाठ

श्रीऋषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति,स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः॥
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः॥
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः॥
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः॥
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः॥
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 1॥

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥ 2॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 3 ॥

प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 4 ॥

जंघानल-श्रेणि-फलाम्बु-तंतु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 5 ॥

अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि,लघिम्निशक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 6 ॥

सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं,प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 7 ॥

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर गुणाँश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 8 ॥

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषा-विषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियाषुः परमर्षयो नः ॥9॥

क्षीरं स्त्रवंतोऽत्र घृतं स्त्रवन्तो, मधुस्त्रवन्तोऽप्यमृतं स्त्रवन्तः।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ 10 ॥

(इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानं, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

श्री देव-शास्त्र-गुरु-पूजन

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू॥
तीन रतन जगमाहिं सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये॥
पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।
परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूज रचूँ॥
चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम-पावन जथारथ,भक्तिवर नौका सही॥

उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल-पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं॥
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान हैं।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सु गरुड़ समान हैं॥
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
नानाविधि संयुक्त रस, व्यंजन सरस नवीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहिं कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाशजोति प्रभावली॥
इहभाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
स्व-परप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिता करि, सकल परिमलता हँसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव-ज्वलन माहिं नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूँ॥
इहि भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित, भवि करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
वसुविधि अर्घ्य संजोय कै, अति उछाह मन कीन।
जासो पूजौं परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुन विस्तार॥

(पद्धरि)

चउ करम की त्रेसठ प्रकृति नाश, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिसगुणगंभीर॥
शुभ समवसरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्तदेव, वन्दौं मन-वचन-तन कर सु सेव॥
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय॥
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन-नगन रतनत्रयनिधि अगाध।
संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिव पद निहार॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपो मन-वचन-काय॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमर पद भोगवै॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

मिथ्यात्व दलन सिद्धान्त साधक मुक्ति मारग जानिये।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप पिछानिये॥
संसार सागर तरण तारण, गुरु जिहाज विशेषिये।
जग माहिं गुरुसम कहैं 'बनारसि' और न दूजो पेखिये॥
श्री जिनके परसाद तैं, सुखी रहें सब जीव।
यातैं तन मन वचन तैं, सेवो भव्य सदीव॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

श्री चौबीस तीर्थङ्कर पूजन

(वीरछन्द)

ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनन्त धरम जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत चतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(छन्द-अवतार)

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

तन्दुल सितसोम-समान, सुन्दर अनियारे।
मुक्तामल की उनमान, पुञ्ज धरौं प्यारे॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

वर-कंज कदंब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन-अग्र धरौं गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

मन-मोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब तिमिर-मोह क्षय जाय, ज्ञान-कला जागे॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों।
मिस-धूम-करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

शुचि पक्व सरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जयमाला

(दोहा)

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर-अमर पद देत॥

(छन्द-धत्ता)

जय भव-तम भंजन,जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा ।
शिवमग-परकाशक, अरिजन-नाशक, चौंबीसों जिनराज वरा॥

(पद्धरि)

जय ऋषभदेव ऋषि-गन नमन्त, जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द पूर॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म-द्युति-तन रसाल।
जय जय सुपास भव-पास नाश,जय चन्द चन्द-तन-द्युति प्रकाश॥
जय पुष्पदन्त दुति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत-सहस भुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्य॥
जय विमल विमल-पद-देनहार, जय जय अनन्त गुन-गण अपार।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करते॥
जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अर जिन वसु-अरि क्षय करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल॥
जय नमि नित वासव नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-पथ, जय वर्द्धमान शिवनगर साथ॥

(छन्द-त्रिभंगी)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा, सुखकारी।
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा हितकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांतेभ्यो चतुर्विंशातिजनेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर।
तिन-पद मद-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सोलहकारण पूजन

सोलह कारण भाय तीर्थङ्कर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं।
हमहूं षोडश कारन भावैं भावसौं ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि!अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

कंचन-झारी निरमल नीर, पूजों जिनवर गुन गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थङ्कर-पद-पाय ॥
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धि-विनयसंपन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचार-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तपः-साधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरण-अर्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यका-परिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्य इति तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥ दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जगभूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥ दरश. ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार, पूजौं श्री जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

सद नेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्री जिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार, पूजूँ श्री जिन केवलधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

जलफल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश.॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जयमाला

(दोहा)

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप-पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भानु परकाश॥

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी॥
शील सदा दिढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टाले।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं॥
जो संवेग-भाव विस्तारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस पर भव सुख देखै॥
जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै॥
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई॥
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान-परमानन्द-दाता।
षट् आवश्यक काल जो साधै, सो ही रत्नत्रय आराधै॥
धरम-प्रभाव करैं जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थङ्कर पदवी पावै॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र नरवंद्य पद, 'द्यानत' शिवपद होय॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

श्री पंचमेरु पूजन

(छन्द-गीता)

तीर्थङ्करों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब-गगन-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुःख भाजहीं॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्धिअस्सीजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। परि पुष्पांजलिं क्षिपामि।

(छन्द-चौपाई-आँचलीबद्ध)

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय,जलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

अमल अखण्ड सुगन्ध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

वरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

मन-वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

तम हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

सरस सुवर्ण सुगन्ध सुहाय, फलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जयमाला

(सोरठा)

प्रथम सुदर्शन-स्वामि,विजय अचल मन्दर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रगट॥

(छन्द वेसरी)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भू पर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
ऊपर पाँच शतक पर सौहै, नन्दन-वन-देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
ऊँचा जोजन सहस-छत्तीस,पाण्डुक-वन सोहै गिरि-सीस।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।

चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥
सुर नर चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

(दोहा)

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय ॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

दशलक्षण धर्म पूजन

(अनुष्टुप) स्थापना (संस्कृत)

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त - ब्रह्मचर्य - सुलक्षणम्।
स्थापय दशधा धर्ममुत्तमं जिनाभाषिततम्॥

(अडिल्ल) स्थापना (हिन्दी)

उत्तम क्षमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

(सोरठा)

हेमाचल की धारा, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षण धर्माय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र-समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोक लों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

दशधर्मों के अर्घ्य

(सोरठा, चौपाई एवं हरिगीतिका)

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा॥

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर-भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहे अयानो॥
कहि है अयानो वस्तु छीने, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरै॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अग्नि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया॥
रूकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल-स्वभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥
उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध-विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

कठिन वचन मत बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥
उत्तम सत्य-बरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहिं कीजे।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।
पेखो तिहायत पुरुष साँचे, को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा-दु:खदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान-ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतैं॥
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधु लहै॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संजम-रतन सँभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथ्वी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥
उत्तम तप सब माहिं बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू-विकलत्रय पशु-तन धारा॥
धारा मानुष-तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय अहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै॥
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया॥
धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥
उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुःख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनिमुद्रा धरैं।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं॥
घर माहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहिं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं॥

ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हि मसान माहिं, काग ज्यों चौंचें भरें॥
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैड़ि चढ़िकै, शिवमहल में पग धरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

दश लच्छन वन्दों सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

(छन्द-चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नाना भेदज्ञान सब भासे॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन-भण्डारी।
उत्तम संयम पाले ज्ञाता, नर-भव सफल करे ले साता॥
उत्तम तप निरवाँछित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई॥
उत्तम आकिंचन व्रत धारे, परम-समाधि-दशा विस्तारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावे, नर-सुर सहित मुकति-फल पावे॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव-पींजरा विनाश।
अजर-अमर पद को लहै, 'द्यानत' सुख की राश॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

प.पू. आचार्य विशुद्धसागर जी मुनिराज की पूजा

निर्ग्रन्थ गुरु पूजा

चैतन्य चमत्कारी बाबा, तुम चिदानंद चिद्रूपी हो।
शुद्धात्म तत्त्व के आराधक, तुम निजानंद निजरूपी हो॥
समरसी भाव में लीन सदा, निष्पृह योगी! शिवगामी हो।
हे जिनशासन के उज्ज्वल ध्वज, तुम दिगदिगंत अभिरामी हो॥
ना अरिहंतों का समवसरण, ना देखी हमने सिद्धशिला।
यह सभा आपकी समवसरण, यह ध्यान-शिला ही सिद्धशिला॥
हे गुरुवर हमें प्रसन्न करो, अब और अधिक ना तरसाओ।
मेरे जीवन के प्राण आप, प्राणों में आप समा जाओ॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। परि पुष्पांजलिं क्षिपामि।

चारित्र हिमालय से निर्झर, यह सम्यग्ज्ञान सुगंगा है।
जो शीतल निर्मल वाणी दे, करती रहती मन चंगा है॥
मैं जन्म जरा का रोगी हूँ, तुम उत्तम वैद्य कहाते हो।
निज ज्ञानमयी औषधियाँ दे, सब जग के रोग मिटाते हो॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

मलयागिरि चंदन सम शीतल, हैं आप सुगंधित भूतल पर।
गुरुभक्त-भ्रमर मंडराते हैं, तेरी चर्या पर झुक-झुक कर॥
उपसर्गों के विषधर लिपटे, विषपान किया, अमृत सींचा।
ऐसे अमृत वरसाई की, करता है जग चंदन पूजा॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा...।

ख्याती पूजा से क्या लेना, क्या नाम चित्र-संरचना से।
जो समयसार में नित रमते,क्या काम करें जग-रचना के॥
है भक्त कामना एक आप, अक्षय ख्याती भंडार बनो।
अरिहंत बनो या सिद्ध बनो, मेरे शिवपथ आधार बनो॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा...।

चैतन्य-वाटिका में सुरभित, चुनकर अध्यात्म-प्रसून लिए।
तब महक उठी प्रवचन-बगिया,अध्यात्म-रसिक रसपान किये॥
जिनधर्म का सौरभ फैल रहा, सब दिग्-दिगन्त धरती अम्बर।
अर्पित करता सुमनावलियाँ, हे परमपूज्य मेरे गुरुवर॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा...।

निजज्ञान ध्यान वैराग्य सहज, अरु स्वानुभूति में रचे-पचे।
नित निजानंद चैतन्यमयी, अध्यात्म रसों में रचे-पचे॥
चैतन्य रसों का मिश्रण कर, निजमन नैवेद्य बनाया है।
भव-भव की क्षुधा मिटाने को, गुरु पद नैवेद्य चढ़ाया है॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

मेरा यह प्रिय सम्यग्दर्शन, मैं चेतन-दीप जलाता हूँ।
कर्मों की काली रजनी को, समकित से दूर भगाता हूँ॥
सम्यक श्रद्धा से आलोकित, गुरु गुण आरतियाँ गाता हूँ।
निर्ग्रन्थों की आरतियाँ कर, निर्ग्रन्थ भावना भाता हूँ॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा...।

शुद्धात्म ध्यान की ज्वाला में, कर्मों की धूप जलाते हो।
पल-2,छिन-2,निश-दिन, सम्यक्,शुद्धोपयोग ही ध्याते हो॥
तुम महाहवी यह महायज्ञ! निज कर्मों को स्वाहा कर लूँ।
मैं अशरीरी अविनाशी सुख,निज सिद्ध-अवस्था को वर लूँ॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा...।

यह नर-तन का फल रत्नत्रय, हो धन्यभाग्य तुमने पाया।
रत्नत्रय का फल शिवफल है, वह बीज हृदय में उग आया॥
मेरा श्रावक कुल धन्य हुआ, अरु धन्य हुई नर-काया।
पूजा कर रत्नत्रय पाऊँ, शिवफल पाने मन ललचाया॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा...।

चैतन्य तीर्थ के निर्माता, तुम भगवत्ता बतलाते हो।
मेरा भगवान ही मुझमें है, शाश्वत सत्ता बतलाते हो॥
आ गया काल फिर से चौथा, या फिर बसंत लहराया है।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा में, यह शुद्ध संत अब पाया है॥
तन से विशुद्ध मन से विशुद्ध, चेतन विशुद्ध करने वाले।
मन के विशुद्ध संचारों से, जग-विपदाएँ हरने वाले॥
तुम हो अनर्घ्य, चर्या अनर्घ्य, चर्चा अनर्घ्य मंगलकारी।
मैं अर्घ्य चढ़ाता हूँ तुमको, तुम तीर्थंकर सम उपकारी॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

जयमाला

(दोहा)

तुमको पाकर हो गया, भारतवर्ष निहाल।
रत्नत्रय चिंतामणी, गाऊँ मैं जयमाल॥

चैतन्य धातु से निर्मित हो, क्या मात-पिता का नाम कहूँ।
शुद्धात्म प्रदेशों में जन्मे, क्या नगर-शहर क्या ग्राम कहूँ॥
दशलक्षण धर्म सहोदर हैं, रत्नत्रय मित्र निराला है।
समता बहिना राखी बाँधे, अनुप्रेक्षा माँ ने पाला है॥ 1॥

यौवन की देहली पर आते, दीक्षा कन्या से ब्याह रचा।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्राधर, अपनाया मुक्ति पथ सच्चा॥

हो भाव शुद्धि के विमल केन्द्र, हो स्वानुभूति के निजाधार।
हे संस्कृति के अलंकार, चैतन्य कल्पतरू सुखाधार ॥ 2 ॥
तुम पंच-समितियाँ, त्रय-गुप्ति, शुद्धात्मलीन हो पाल रहे।
श्रुत ज्ञान और वैराग्य प्रबल, सब संघ इसी में ढाल रहे॥
जो महापुरुष द्वारा धारित, उन महाव्रतों को धारा है।
निज भेदज्ञान पौरूष बल से, खोला मुक्ति का द्वारा है॥ 3 ॥
चर्या के निर्मल स्रोतों से, संज्ञान के निर्झर फूट पड़े।
जन्मों के ज्ञान पिपासु जन, इसलिए एक दम टूट पड़े।
व्रतशील शुद्ध आचरण बिना, शुद्धात्म तत्त्व ना मिलता है।
दिनकर के बिना दिवस क्या हों, सर में पंकज क्या खिलता है?॥4 ॥
जो चलते पर भी नाहि चलें, जो और बोलते ना बोलें।
जो सदा देखते ना देखें, निज में इतने निश्चल होलें॥
है स्वजातीय सम्बन्ध मधुर, शुद्धातम का शुद्धातम से।
एकाग्रचित हो जहाँ कहीं, बातें कर लें सिद्धातम से॥ 5 ॥
पुरुषार्थ परायण परमवीर, हो मुक्ति राज्य के अधिकारी।
मैत्री प्रमोद करुणाधारी हो उभय लोक मंगलकारी॥
हे निर्विकार! निर्द्वन्द्व नमन! हे निरालंब! निर्ग्रन्थ नमन।
निर्भय निराग निर्लेप नमन, निर्दोष दिगम्बर सन्त नमन॥ 6 ॥
तुम पंचाचार परायण हो, तुम पंचेन्द्रिय गज के जेता।
गम्भीर धीर हे शूरवीर, चारित्र दक्ष शिवपथ नेता॥
चारित्र बिना दृग-बोध विफल, कोठे में बीज रखे सम हैं।
जो जितनी उज्ज्वलता पा-ले, उतना निर्वाण निकटतम है॥ 7 ॥
शम दम यम नियम निकेतन है, अविचल अखण्ड अद्वैत रूप।
हो रत्नत्रय से आभूषित, आचार्य-श्रेष्ठ आचार-भूप॥
मैं भक्तित्रय योगत्रय से, त्रयकालों तीन विधानों से।
भव-भेदक! साधक सूरि-प्रवर, नमता समकित श्रद्धानों से॥ 8 ॥

गुरु यमी! यत्न करते रहते, निज समय नियम प्रकाशक हो।
जो हमें यातनाएँ देता, उस यम के आप विनाशक हो॥
हो कर्म-वृक्ष के उच्छेदक, तुम कर्मलोंच करते रहते।
फिर भी इस भोली जनता को, केवल कचलोंच दिखा करते॥9॥

गुरु अहो अयाचक धन्य तुम्हें, तुम कुछ भी माँग नहीं करते।
निर्वाण सुन्दरी की सुन्दर, भावों से माँग भरा करते॥
यह ब्रह्मचर्य की निर्मलता, लौकान्तिक देव नमन करते।
वैराग्य दिवस पर कब आयें, बस इतनी चाह किया करते॥ 10॥

यह धन्य आपकी जिनमुद्रा, यह धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ दशा।
मुनि नाम अलौकिक जिनचर्या, जो प्रकटाती अरिहंत दशा॥
तुम चलते-फिरते मोक्षमार्ग, गन्तव्य ओर बढ़ जाते।
तुम कदम जहाँ पर रख देते हो, चैतन्य तीर्थ गढ़ते जाते॥ 11॥

निर्ग्रन्थ साधु की यह पूजा, सच में रत्नत्रय पूजा है।
ना ख्याति नाम की यह पूजा, ना ख्याति नाम को पूजा है॥
है तीन ऊन नव कोटि मुनि, जिनके समान ना दूजा है।
अरिहंत प्रभु के बीज-रूप, शिवपथ-पंथी की पूजा है॥ 12॥

(दोहा)

गुरु पूजा में आ गये, जग के सब मुनिराज।
कोटि-कोटि पूजा करूँ, पाऊँ मुनिपद आज॥ 1॥
गुरु निर्ग्रन्थ महान हैं, गुरु अरिहंत समान।
गुरुवर ही भगवान हैं, गुरुवर क्षमानिधान॥ 2॥

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं श्रीमद् आचार्यपरमेष्ठी विशुद्धसागर मुनिवरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

गुरुवर सम्यग्दर्शन दो, गुरुवर सम्यग्ज्ञान।
गुरु सम्यक् चारित्र दो, गुरुवर दो निर्वाण॥ 3॥

इत्याशीर्वाद पुष्पांजलि क्षिपेत्।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

अर्घ्यावलि

विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकरों को अर्घ्य

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहू तैं थुति पूरी न करी है॥
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जग तें लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी) बीस विदेह मँझार॥
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जिहाज श्री महाराज हो॥

ॐ ह्रीं श्रीसीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

अकृत्रिम जिनबिम्बों को अर्घ्य

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्।
वन्दे भावन-व्यन्तरान् द्युतिवरान्, कल्पामरा-वासगान्॥
सद्-गन्धाक्षत-पुष्पदामचरुकैः, सद्दीपधूपैः फलैर्।
नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा, दुष्कर्मणां शान्तये॥
सात करोड़ बहत्तर लाख, सु-भवन जिन पाताल में।
मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन, जजों अघमल टाल के॥
अब लख चौरासी सहस संत्यानवें, अधिक तेईस रु कहे।
बिन संख ज्योतिष व्यन्तरालय, सब जजों मन वच ठहे॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा...।

सिद्ध भगवान् को अर्घ्य

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः, सङ्गं वरं चन्दनं।
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं, रम्यं चरुं दीपकम्॥
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं, श्रेष्ठं फलं लब्धये।
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं, सेनोत्तरं वाञ्छितम्॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

समुच्चय चौबीसी भगवान् को अर्घ्य

जल फल आठों शुचिसार ताको अर्घ्य करों,
तुमको अरपो भवतार, भवतरि, मोक्ष वरों।
चौबीसों श्री जिनचंद, आनन्दकंद सही,
पद जजत हरत भव फंद, पावत मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्त-चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

तीस चौबीसी को अर्घ्य

द्रव्य आठों, जु लीना है, अर्घ्य कर में नवीना है,
पूजतां पाप छीना है, भानुमल जोड़ कीना है।
दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दस ताँ विषैं छाजै,
सातशत बीस जिनराजे, पूजतां पाप सब भाजै॥

ॐ ह्रीं पाँच भरत, पाँच ऐरावत इन दस क्षेत्रों में भूत-भविष्यत्-वर्तमान सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री आदिनाथ भगवान् को अर्घ्य

शुचि निरमल नीरं गन्ध सु अक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय॥
श्री आदिनाथ जी के चरण कमल पर,बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि-भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्रदाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री चन्द्रप्रभ भगवान् को अर्घ्य

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों॥
श्री चन्दनाथ दुति चन्द, चरनन चंद लगै।
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री वासुपूज्य भगवान् को अर्घ्य

जल फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई॥
वासुपूज्य वसुपूज-तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको , शिवतिय सनमुख धाई॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री शान्तिनाथ भगवान् को अर्घ्य

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुणाधारी, यातै थारी शरनारी॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुतशक्रे शं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि चक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री पार्श्वनाथ भगवान् को अर्घ्य

नीर गन्ध अक्षतान्, सु पुष्प चारु लीजिए।
दीप धूप श्री फलादि, अर्घ्य तैं जजीजिए॥
पार्श्वनाथ देव सेव, आपकी करूँ सदा।
दीजिए निवास मोक्ष, भूलिए नहीं कदा॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री महावीर भगवान् को अर्घ्य

जल-फल वसु सजि हिम-थार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊं भवदधि तार, पूजत पाप हरों॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुण धीर, सन्मति-दायक हो॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री बाहुबली स्वामी को अर्घ्य

हूँ शुद्ध निराकुल सिद्धो सम, भवलोक हमारा वासा ना।
रिपु राग रु द्वेष लगे पीछे, यातें शिवपद को पाया ना॥
निज के गुण निज में पाने को, प्रभु अर्घ्य सजोंकर लाया हूँ।
हे बाहुबली तुम चरणों में, सुख सन्मति पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

पंच-बालयति को अर्घ्य

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ अरघ बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नशावत हैं॥
श्री वासुपूज्य-मलि-नेम, पारस वीर अती।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति॥

ॐ ह्रीं श्रीपंच-बालयति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री सोलहकारण का अर्घ्य

जलफल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परमगुरु हो जय-जय नाथ परमगुरु हो ॥
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परमगुरु हो जय-जय नाथ परमगुरु हो ॥

ॐ ह्रीं श्रीदर्शन विशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री पंचमेरु जिनालय का अर्घ्य

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
पाँचो मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा जी को करहुँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरु-सम्बन्धिअस्सी जिन-चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री नन्दीश्वर द्वीप का अर्घ्य

यह अरघ कियो निज हेतु तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुँज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों॥
नन्दीश्वरद्वीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिन मन्दिर जान सुर-नर-मन मोहें॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्-जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री रत्नत्रय धर्म का अर्घ्य

आठ दरव निरधार, उत्तम सों उत्तम लिए।
जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री दशलक्षण धर्म का अर्घ्य

आठों दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दशलच्छन पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

श्री सप्तर्षि का अर्घ्य

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

निर्वाण क्षेत्र का अर्घ्य

जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगत सों, जोर कर विनती करौं॥

सम्मेदगढ़ गिरनार चंपा पावापुर कैलाश कों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

सरस्वती का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत फूल चरु, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै।
तीर्थंकर की ध्वनि,गणधर ने सुनी, अंग रचे चुनि ज्ञान मई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

आचार्य श्री विमलसागरजी का अर्घ्य

आठ द्रव्य की भर थाली ले, आठों कर्म खपाऊँ।
अष्ट गुणों की सिद्धि पाकर, सिद्ध लोक बस जाऊँ॥
परम तपस्वी त्याग मूर्ति श्री विमल सिन्धु के गुण गाऊँ।
निज निधि ज्ञान सुधारस पाकर,भव वन में ना भटकाऊँ॥

ॐ ह्रूँ श्रीआचार्यविमलसागरमहाराज यतिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

आचार्य श्री विरागसागरजी का अर्घ्य

शुभ भावों का निर्मल जल है, विनय भाव का है चंदन।
गुरुवंदन ही अक्षत है यह, भक्ति सुमन का अभिनंदन॥
मन-वच-तन से आत्मसमर्पण, मोह क्षोभ का शमन करूँ।
परम पूज्य आचार्य शिरोमणि,विराग सिंधु को नमन करूँ॥

ॐ ह्रूँ श्रीआचार्यविरागसागरमहाराजयतिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

आचार्य श्री विद्यासागरजी का अर्घ्य

श्री विद्यासागर के चरणों में झुका रहा अपना माथा।
जिनके जीवन की हर चर्या बन पड़ी स्वयं ही नवगाथा॥

जैनागम का वह सुधा कलश जो बिखराते हैं गली-गली।
जिनके दर्शन को पाकर के खिलती मुरझाई हृदय कली॥
भावों की निर्मल सरिता में, अवगाहन करने आया हूँ।
मेरा सारा दुख दर्द हरो, यह अर्घ्य भेटने लाया हूँ॥
हे तपो मूर्ति! हे आराधक! हे योगीश्वर ! हे महासन्त!
है अरूण कामना देख सके, युग-युग तक आगामी बसन्त॥

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विद्यासागरमहाराजयतिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

आचार्य श्री विशुद्धसागरजी का अर्घ्य

अध्यात्मयोगी गुरु विशुद्धसागर,वात्सल्यमयी अभिरामी हो।
ज्ञानध्यान में लीन निरत, मुक्ति-पथिक शिवगामी हो॥
अष्ट द्रव्य का थाल सजाकर करता हूँ यह अर्घ्य समर्पण।
मोक्षमार्ग का बनूँ पथिक मैं, तेरे चरणों करूँ नमन॥

ॐ ह्रूँ श्रीआचार्यविशुद्धसागरमहाराज यतिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

महाऽर्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवज्झाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों॥
अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रचि गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय,जा बिना शिव नहिं कदा॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा॥

चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय,होय पति शिवगेह के॥

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्पचरु , दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहुविधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं भावपूजाभाववंदना त्रिकालपूजा त्रिकाल-वंदना करै करावै भावना भावै श्री अरिहन्तजी सिद्धजी आचार्यजी उपाध्यायजी सर्वसाधुजी पञ्चपरमेष्ठियो नमः प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो नमः। उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जल के विषै, थल के विषै, आकाश के विषै, गुफा के विषै, पहाड़ के विषै, नगरनगरी विषै, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, पाताललोक विषै विराजमान कृत्रिम-अकृत्रिम-जिनचैत्यालय- जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्रे विद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः। पाँच भरत, पाँच ऐरावत, दशक्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस जिनबिम्बेभ्यो नमः। नन्दीश्वरद्वीप सम्बन्धी बावन जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। पञ्चमेरु सम्बन्धी अस्सी जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखरजी, कैलाश, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, सोनागिरि, राजगृही, कुंडलपुर, नेमावर मथुरा-चौरासी, शत्रुञ्जय तारङ्गा आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री, मूढ़बद्री, हस्तिनापुर, चन्देरी, पपोरा, अयोध्या, चमत्कारजी, महावीरजी, पदमपुरीजी, तिजारा, आदि अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः श्रीचारण-ऋद्धिधारी सप्तपरमर्षिभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपावन्तं श्रीवृषभादि महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे... नाम्नि नगरे... मासानामुत्तमे... मासे शुभपक्षे... तिथौ... वासरे... मुनि आर्यिकाणां श्रावक-श्राविकानां सकलकर्मक्षयार्थं अनर्घ्यपदप्राप्तये सम्पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

शांति-पाठ

(चौपाई)

शांतिनाथ मुख शशि-उनहारी, शील-गुण-व्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजै॥

पंचम चक्रवर्ती पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन-नायक,नमो शांति हित शांति विधायक॥

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तव प्रातिहार्य मनहारी॥

शांति-जिनेश शांति सुखदाई, जगत् पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजै हम सबको, पढ़ैं जिन्हें पुनि चार संघ को॥

(बसन्ततिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट-हार-किरीट लाके।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥
सो शांतिनाथ वर-वंश जगत् प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शान्ति सदा अनूप॥

(इन्द्रावज्रा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को,
यतीनकों औ यतिनायकों को।
राजा-प्रजा-राष्ट्र-सुदेश को ले,
कीजे सुखी हे जिन! शांति को दे॥

(स्रग्धरा)

होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पै, तिल भर न रहे, व्याधियों का अंदेशा॥
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं, जिनवर-वृष को, जो सदा सौख्यकारी॥

(दोहा)

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज॥

(मन्दाक्रान्ता)

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृतों का, सुजस कह के, दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे, वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौ लौं सेऊँ, चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ॥

(आर्या)

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति-पद मैनें॥
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब,करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भव-दुख से॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(कायोत्सर्ग पूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय॥ 1॥
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करहु भगवान ॥ 2॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देह चरण की सेव॥ 3॥
तुम चरणन ढ़िंग आयके, मैं पूजूँ अतिचाव।
आवागमन रहित करो, रमूँ सदा निज भाव॥ 4॥
आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान।
ते अब जावहू कृपाकर, अपने अपने थान॥ 5॥
श्री जिनवर की आशीका, लीजे शीश चढ़ाय।
भव-भव के पातक कटें, दुःख दूर हो जाय ॥6॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

(खण्ड-4)

तत्त्वार्थसूत्रम्

प्रथम अध्याय

'मंगलाचरण'

मोक्षमार्गस्य नेत्तारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्‌गुणलब्धये॥

अर्थः- जो मोक्षमार्ग के नेता हैं,कर्मरूपी पर्वतों का भेदन करने वाले हैं और समस्त तत्त्वों को जानते हैं, उनके उन गुणों को पाने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार यहाँ इन तीन विशेषणों से आप्त की स्तुति की गई है।

'मोक्षप्राप्ति का उपाय'

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः॥ 1॥

अर्थः- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है।

विशेषार्थः- ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न आत्मद्रव्यादि के अस्तित्व की प्रतीति अर्थात् श्रद्धा होना,सम्यग्दर्शन कहलाता है। संशय, विपर्याय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थों को जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। कषाय, पाप और व्यसन आदि संसार के कारणों से विरक्त होना तथा देवपूजा आदि शुभ क्रियाओं में प्रवृत्त होना सम्यक्‌चारित्र कहलाता है।

'सम्यग्दर्शन का लक्षण'

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥ 2॥

अर्थः- तत्त्व अर्थात् वस्तु के स्वरूप सहित अर्थ-जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है।

विशेषार्थः- जीव आदि तत्त्वों के स्वरूप का निश्चय तत्त्वार्थ है और तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

'सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के भेद'

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ 3 ॥

अर्थः– वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से अथवा पर के उपदेश आदि से उत्पन्न होता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के उत्पत्ति की अपेक्षा से भेद हैं– (1) निसर्गज और (2) अधिगमज। **निसर्गज**– जो पर के उपदेश के बिना अपने आप उत्पन्न हो, उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं। **अधिगमज**– जो पर के उपदेश से होता है, उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

'तत्त्वों के नाम'

जीवाजीवास्रवबन्ध-संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ 4 ॥

अर्थः– जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। **जीव**– जिसमें ज्ञानदर्शनरूप चेतना पायी जावे, उसे जीव कहते हैं। **अजीव**– जिसमें चेतना न पाई जावे उसे अजीव कहते हैं। **आस्रव**– कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। **बन्ध**– आत्मा के प्रदेशों के साथ कर्मों का दूध पानी की तरह मिल जाना ही बन्ध है। **संवर**– आस्रव के रुकने को संवर कहते हैं। **निर्जरा**– आत्मा के प्रदेशों से पहले के बन्धे हुए कर्मों का एकदेश क्षय होना सो निर्जरा है। **मोक्ष**–समस्त कर्मों के बिल्कुल क्षय हो जाने को मोक्ष कहते हैं।

'तत्त्वों और रत्नत्रय के व्यवहार के कारण'

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ 5 ॥

अर्थः– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से उन सात तत्त्वों तथा सम्यग्दर्शन आदि का लोक–व्यवहार होता है।

विशेषार्थः– प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं। निक्षेप के चार भेद हैं– नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप। **नामनिक्षेप**– गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छानुसार किसी का नाम रखने को नामनिक्षेप कहते हैं– जैसे किसी का नाम 'जिनदत्त' है। यद्यपि वह

जिनदेव के द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोक- व्यवहार चलाने के लिए उसका 'जिनदत्त' नाम रख लिया गया है। **स्थापनानिक्षेप** - धातु, काष्ठ, पाषाण आदि की प्रतिमा तथा अन्य पदार्थों में यह वह है। इस प्रकार किसी की कल्पना करना सो स्थापनानिक्षेप है। इसके दो भेद है- (1) तदाकार स्थापना और (2) अतदाकार स्थापना। जिस पदार्थ का जैसा आकार है, उसमें उसी आकार वाले की कल्पना करना सो तदाकार स्थापना है। जैसे- पार्श्वनाथ की प्रतिमा में पार्श्वनाथ की कल्पना करना और भिन्न आकार वाले पदार्थों में किसी भिन्न आकार वाले की कल्पना करना सो अतदाकार स्थापना है। जैसे- शतरंज की गोटियों में बादशाह, वजीर वगैरह की कल्पना करना। **द्रव्यनिक्षेप**- भूत, भविष्यत् पर्याय की मुख्यता लेकर वर्तमान में कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैसे- पहले कभी पूजा करने वाले पुरुष को वर्तमान के पुजारी कहना और भविष्य में राजा होने वाले राजपुत्र को राजा कहना। **भावनिक्षेप**- केवल वर्तमान पर्याय की मुख्यता से अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना सो भावनिक्षेप है। जैसे- काष्ठ को काष्ठ अवस्था में काष्ठ, अग्नि होने पर अग्नि और कोयला हो जाने पर कोयला कहना।

'तत्त्वों और रत्नत्रय के जानने के उपाय'

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ 6 ॥

अर्थः- सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीव आदि तत्त्वों का ज्ञान प्रमाण और नयों से होता है। **प्रमाण**- जो पदार्थ के सर्वदेश को ग्रहण करे, उसे प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद हैं- (1) **प्रत्यक्ष प्रमाण** और (2) **परोक्ष प्रमाण**। आत्मा किसी बाह्य निमित्त की सहायता के बिना ही पदार्थों को स्पष्ट जाने, उसे **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहते हैं और इन्द्रिय तथा प्रकाश आदि की सहायता से पदार्थों को एकदेश जाने, उसे **परोक्ष प्रमाण** कहते हैं। **नय**- जो पदार्थ के एकदेश को विषय करे,जाने, उसे नय कहते हैं। इसके दो भेद हैं- (1) **द्रव्यार्थिक नय** और (2) **पर्यायार्थिक नय**।

जो मुख्य रूप से द्रव्य को विषय करे उसे **द्रव्यार्थिक नय** कहते हैं और मुख्य रूप से पर्याय को विषय करें उसे **पर्यायार्थिक नय** कहते हैं।

'तत्त्वों और रत्नत्रय के जानने के अन्य उपाय'

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः ॥ 7 ॥

अर्थः- निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनसे भी जीवादिक तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदि व्यवहार होता है। **निर्देश**- वस्तु के स्वरूप का कथन करना सो निर्देश है। **स्वामित्व**- वस्तु के अधिकार को स्वामित्व कहते हैं। **साधन**- वस्तु की उत्पत्ति के कारण को साधन कहते हैं। **अधिकरण**- वस्तु के आधार को अधिकरण कहते हैं। **स्थिति**- वस्तु के काल की अवधि को स्थिति कहते हैं। **विधान**-वस्तु के भेदों को विधान कहते हैं।

'तत्त्वों और रत्नत्रय के जानने को उपायान्तर'

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ 8 ॥

अर्थः- और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगों के द्वारा भी पदार्थ का ज्ञान होता है। **सत्**- वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते हैं। **संख्या**- वस्तु के परिणाम की गिनती को संख्या कहते हैं। **क्षेत्र**- वस्तु के वर्तमान काल के निवास को क्षेत्र कहते हैं। **स्पर्शन**- वस्तु के तीनों काल सम्बन्धी निवास को स्पर्शन कहते हैं। **काल**- वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते हैं। **भाव**- औपशमिक, क्षायिक और परिणामों को भाव कहते हैं। **अल्पबहुत्व**- अन्य पदार्थ की अपेक्षा किसी वस्तु की हीनाधिकता के वर्णन करने को अल्पबहुत्व कहते हैं।

'सम्यग्ज्ञान के भेद और नाम'

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ 9 ॥

अर्थः- मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय अथवा केवल ये पाँच प्रकार के ज्ञान हैं। **मतिज्ञान**- जो पाँच इन्द्रियों और मन की सहायता से स्पष्ट

जाने, उसे मतिज्ञान कहते हैं। **श्रुतज्ञान**– जो पाँच इन्द्रियों अथवा मन की सहायता से मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से जानता है,उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। **अवधिज्ञान**– जो इन्द्रियों की सहायता के बिना ही रूपी पदार्थों को द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिए हुए एक देश स्पष्ट जाने, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। **मनःपर्ययज्ञान**– जो किसी की अन्य पुरुष के मन में स्थित,रूपी पदार्थों के एकदेश को स्पष्ट जाने, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। **केवलज्ञान**– जो सब द्रव्यों तथा उनकी सब पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जाने, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

'प्रमाण का लक्षण और भेद'

तत्प्रमाणे ॥ 10 ॥

अर्थः– ऊपर कहा हुआ पाँच प्रकार का ज्ञान ही प्रमाण है।

विशेषार्थः– सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। उसके दो भेद हैं (1) प्रत्यक्ष और (2) परोक्ष।

'परोक्षप्रमाण के भेद'

आद्ये परोक्षम् ॥ 11 ॥

अर्थः– आदि के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षप्रमाण हैं।

विशेषार्थः–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षप्रमाण है।

'प्रत्यक्षप्रमाण के भेद'

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ 12 ॥

अर्थः– शेष तीन अर्थात् अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण हैं।

'मतिज्ञान के पर्यायवाची'

मतिः स्मृतिः संज्ञाचिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ 13 ॥

अर्थः– मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध अन्य पदार्थ नहीं हैं, मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं। क्योंकि ये पाँचों ही मतिज्ञानावरण

आदि कर्म के क्षयोपशम से होते हैं। **मति**- इन्द्रिय अथवा मन की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे मति कहते हैं। **स्मृति**- पहले जानी हुई वस्तु के स्मरण होने की स्मृति कहते हैं। **संज्ञा**- वर्तमान में किसी पदार्थ को देखकर 'यह वही है' इस प्रकार स्मरण और प्रत्यक्ष के जोड़रूप ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। इसी का दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है।**चिन्ता**- जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होती है, जैसे- रसोई घर। इस प्रकार के व्याप्ति ज्ञान को चिन्ता कहते हैं। **अभिनिबोध**- साधन से साध्य के ज्ञान होने को अभिनिबोध कहते हैं, जैसे 'उस पहाड़ में अग्नि है' क्योंकि उस पर धूम है इसी का दूसरा नाम अनुमान है।

'मतिज्ञान की उत्पत्ति के कारण'

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्॥ 14॥

अर्थ:- वह मतिज्ञान पाँचों इन्द्रियों अथवा मन के निमित्त से होता है अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ अथवा मन ये छह मतिज्ञान के कारण हैं।

'मतिज्ञान के भेद'

अवग्रहेहावायधारणाः॥ 15॥

अर्थ:- मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा,अवाय और धारणा ये चार भेद हैं। **अवग्रह**- दर्शन के बाद हुए शुक्ल-कृष्ण आदि रूप विशेष का ज्ञान अवग्रह है। नेत्र से सफेदरूप को जानना अवग्रह है। वस्तु की सत्तामात्र के ग्रहण को दर्शन या दर्शनोपयोग कहते हैं। इसका विषय इतना सूक्ष्म होता है कि उदाहरण से नहीं समझाया जा सकता है। **ईहा**- अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से जानने की चेष्टा करना ईहा है। जैसे वह शुक्लरूप बगुला है, या पताका। ईहा ज्ञान को यह चाँदी है या सीप इत्यादि की तरह संशय रूप न समझना चाहिए,क्योंकि संशय में अनिश्चित अनेक कोटियों का अवलम्बन रहता है,जो कि यहाँ नहीं है यहाँ बगुला का और पताका का कथन दो उदाहारणों की अपेक्षा है। उसका स्पष्ट भाव यह है यदि यह बगुला है तो बगुला होना चाहिए और यदि पताका है तो पताका

होना चाहिए। ईहा में भवितव्यता रूप प्रत्यय ज्ञान होता है। **अवाय**– विशेष चिन्ह देखने से उसका निश्चय हो जाना,सो अवाय है। जैसे उस शुक्ल पदार्थ में पंखों का फड़–फड़ाना आदि चिन्ह देखने से बगुला का निश्चय होना। **धारणा**– अवाय से निश्चित किए हुए पदार्थ को कालांतर में नहीं भूलना, सो धारणा है।

'अवग्रह आदि के विषयभूत पदार्थ'

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्॥ 13॥

अर्थः– अपने उल्टे भेदों सहित बहु आदि अर्थात् बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनसे उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त तथा अध्रुव, इन बारह प्रकार के पदार्थों का अवग्रह ईहादि रूप ज्ञान होता है। **(1) बहुविध**– एक साथ बहुत पदार्थों का अवग्रहादि होना। जैसे– गेहूँ की राशि देखने से बहुत से गेहूँओं का ज्ञान। **(2) बहुविध**– बहुत प्रकार के पदार्थों का अवग्रहादि ज्ञान होना। जैसे– गेहूँ, चना, चावल, आदि कई पदार्थों का ज्ञान। **(3) क्षिप्र**– शीघ्रता से पदार्थ का ज्ञान होना। जैसे– तेज चलती हुई रेलगाड़ी को या उसमें बैठकर बाहर की वस्तुओं को जानना। **(4) अनिःसृत**– एक देश के ज्ञान से सर्वदेश का ज्ञान होना। जैसे– बाहर निकली हुई सूंड़ देखकर जल में डूब हुए पूरे हाथी का ज्ञान होना। **(5) अनुक्त**– वचन से कहे बिना अभिप्राय से जान लेना। जैसे– मुँह की सूरत तथा हाथ आदि के इशारे से प्यासे मनुष्य का ज्ञान होना। **(6) ध्रुव**– बहुत काल तक जैसा का तैसा ज्ञान होते रहना। **(7) एक**– एक पदार्थ का ज्ञान। जैसे– एक गेहूँ आदि का ज्ञान। **(8) एकविध**– एक प्रकार के पदार्थों का ज्ञान। जैसे– एक सदृश गेहूँओं का ज्ञान होना। **(9) अक्षिप्र**– चिरग्रहण किसी पदार्थ को धीरे–धीरे बहुत समय में जानना। **(10) निःसृत**– बाहर निकले हुए प्रकट पदार्थों का ज्ञान होना। **(11) उक्त**– शब्द सुनने के बाद ज्ञान होना। **(12) अध्रुव** – जो क्षण–क्षण हीन–अधिक होता रहे,उसे अध्रुवज्ञान कहते हैं।

‘बहुआदि किसके विशेषण हैं’

अर्थस्य ॥ 17 ॥

अर्थः– ऊपर कहे हुए बहु आदि बारह भेद पदार्थ–द्रव्य के हैं अर्थात् बहु आदिक विशेषण विशिष्ट पदार्थ के ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं।

‘अवग्रहज्ञान में विशेषता’

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ 18 ॥

अर्थः– अस्पष्ट शब्द वगैरह पदार्थों का केवल अवग्रहज्ञान होता है। ईहा आदि तीन नहीं होते हैं।

विशेषार्थः– अवग्रह के दो भेद हैं–व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह। **अर्थावग्रह**– स्पष्ट पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं। **व्यञ्जनावग्रह**– अस्पष्ट पदार्थ के अवग्रह को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। जैसे– कान में एक हल्की–सी आवाज का मामूली सा भान होकर के रह गया, इसके बाद फिर कुछ भी नहीं जान पड़ा कि क्या था? ऐसी अवस्था में केवल व्यञ्जनावग्रह ही होकर रह जाता है। परन्तु धीरे–धीरे वही आवाज यदि स्पष्ट हो जाती है, तो व्यञ्जनावग्रह के बाद अर्थावग्रह और फिर ईहा आदि ज्ञान भी होते हैं। इसलिए अस्पष्ट पदार्थों के केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है और स्पष्ट पदार्थों के चारों ज्ञान होते हैं।

मतिज्ञान के 336 भेद

				मतिज्ञान					
(1)				(2)		(3)		(4)	
अवग्रह				ईहा		अवाय		धारणा	
1. व्यञ्जनावग्रह		2.अर्थावग्रह							
1. बहु	(1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (4) कर्ण	बहु	(1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (4) चक्षु (5) कर्ण (6) मन	बहु	(1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (4) चक्षु (5) कर्ण (6) मन	बहु	(1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (4) चक्षु (5) कर्ण (6) मन	बहु	(1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (4) चक्षु (5) कर्ण (6) मन
2. बहुविध		बहुविध		बहुविध		बहुविध		बहुविध	
3. क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र	
4. अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत	
5. अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त	
6. ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव	
7. एक		एक		एक		एक		एक	
8. एकविध		एकविध		एकविध		एकविध		एकविध	
9. अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र	
10. निःसृत		निःसृत		निःसृत		निःसृत		निःसृत	
11. उक्त		उक्त		उक्त		उक्त		उक्त	
12. अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव	
12X4		12X6		12X6		12X6		12X6	
48		72		72		72		72	
				336					

'व्यञ्जनावग्रह की विशेषता'

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्॥ 19॥

अर्थः- नेत्र और मन से व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है।

'श्रुतज्ञान का स्वरूप'

श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम्॥ 20॥

अर्थः- श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञान के पश्चात् होता है और वह श्रुतज्ञान दो, अनेक तथा बारह भेदवाला है।

विशेषार्थः- श्रुतज्ञान मतिज्ञान के बाद होता है। उसके दो भेद हैं- (1) अंगबाह्य और (2) अंगप्रविष्ट। उसमें से अंगबाह्य के अनेक भेद हैं और अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं। अंगबाह्य के अनेक भेदों में से चौदह भेदों के नाम आचार्यों ने बताए हैं। वे निम्न हैं- (1)सामायिक, (2) चतुर्विंशतिस्तव, (3)वन्दना, (4) प्रतिक्रमण, (5)वैनयिक, (6)कृतिकर्म, (7) दशवैकालिक, (8) उत्तराध्ययन,(9) कल्पव्यवहार, (10) कल्पाकल्प, (11) महाकल्प, (12) पुण्डरीक,(13) महापुण्डरीक और (14)निषिद्धिका। अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं। उनके नामः- (1) आचारांग, (2) सूत्रकृतांग, (3) स्थानांग, (4) समवायांग, (5) व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, (6) ज्ञातृधर्मकथांग,(7) उपासकाध्ययनांग, (8)अन्तःकृद्दशांग, (9) अनुत्तरौपपादिक दशांग, (10) प्रश्नव्याकरणांग, (11) विपाकसूत्रांग और (12) दृष्टिवाद अंग। इनमें से दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के 5 भेद हैंः- (1) परिकर्म, (2) सूत्र, (3) प्रथमानुयोग, (4) पूर्वगत और (5) चूलिका। परिकर्म के 5 भेद हैं :- (1) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (2) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (3) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (4) सूर्यप्रज्ञप्ति और (5) चन्द्रप्रज्ञप्ति। चूलिका के पाँच भेद हैं- (1) जलगता, (2) स्थलगता, (3) मायागता, (4) आकाशगता और (5) रूपगता। सूत्रगत और प्रथमानुयोग के एक-एक भेद हैं। पूर्वगत के 14 भेद हैंः- (1) उत्पाद, (2) अग्रायणी, (3)वीर्यप्रवाद, (4) अस्तिनास्तिप्रवाद, (5) ज्ञानप्रवाद, (6) सत्यप्रवाद, (7) आत्मप्रवाद,

(8) कर्मप्रवाद, (9) प्रत्याख्यान, (10) विद्यानुवाद, (11) कल्याणनुवाद, (12) प्राणावायप्रवाद, (13) क्रियाविशाल और (14) लोकबिन्दुसार।

'अवधिज्ञान का वर्णन'

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्॥ 21॥

अर्थः- भवप्रत्यय नाम का अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

विशेषार्थः- अवधिज्ञान के दो भेद हैं- (1) भवप्रत्यय और (2) गुणप्रत्यय। गुणप्रत्यय का दूसरा नाम क्षयोपशम निमित्तक है। **भवप्रत्यय**- देव और नरक भव (पर्याय) के कारण जो उत्पन्न होवे उसे भवप्रत्यय कहते हैं। **गुणप्रत्यय**-जो किसी पर्याय विशेष की अपेक्षा न रखकर अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होवे उसे गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं। नोट- यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि भवप्रत्यय अवधिज्ञान में भी अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम रहता है परन्तु वह क्षयोपशम देव और नरक पर्याय में नियम से प्रकट होता है।

'क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान के भेद और स्वामी'

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ 22॥

अर्थः- क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित इस प्रकार छह भेदवाला है और वह मनुष्य तथा तिर्यञ्चों के होता है। **अनुगामी**-जो अवधिज्ञान सूर्य के प्रकाश की तरह जीव के साथ-साथ जावे अनुगामी कहते हैं। इसके 3 भेद हैं- (1) क्षेत्रानुगामी, (2) भवानुगामी और (3) उभयानुगामी। **अननुगामी**- जो अवधिज्ञान साथ नहीं जावे उसे अननुगामी कहते हैं। इसके भी 3 भेद हैं- (1) क्षेत्रानुगामी, (2) भवानुगामी और (3) उभयानुगामी। **वर्धमान**- जो शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की तरह बढ़ता रहे, उसे वर्धमान कहते हैं। **हीयमान**- जो कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की

कलाओं की तरह घटता रहे,उसे हीयमान कहते हैं। **अवस्थित**- जो अवधिज्ञान एक-सा रहे, न घटे न बढ़े, उसे अवस्थित कहते हैं। जैसे- सूर्य अथवा तिल आदि के चिन्ह। **अनवस्थित**- जो हवा से प्रेरित जल की तरंगों की तरह घटता-बढ़ता रहे, एक सा न रहे, उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं। दूसरे ग्रन्थों में अवधिज्ञान के नीचे लिखे हुए तीन भेद भी बताये हैं - (1)देशावधि,(2) परमावधि और (3) सर्वावधि।

'मन:पर्ययज्ञान के भेद'

ऋजुविपुलमती मन:पर्यय: ॥ 23 ॥

अर्थ:- मन:पर्ययज्ञान ऋजुमति,विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है। **ऋजुमति**- जो मन वचन काय की सरलता से चिन्तित,दूसरे के मन में स्थित पदार्थ को जाने,उसे ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान कहते हैं। **विपुलमति**- जो सरल तथा कुटिलरूप पर के मन में स्थित पदार्थ को जाने, उसे विपुलमति मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

'ऋजुमति और विपुलमति में अन्तर '

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष: ॥ 24 ॥

अर्थ:-परिणामों की विशुद्धता और अप्रतिपात (केवलज्ञान होने के पहले नहीं छूटता), इन दो बातों से ऋजुमति और विपुलमति में विशेषता है।

विशेषार्थ:- ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति में आत्मा के भावों की शुद्धता अधिक होती है तथा ऋजुमति होकर छूट भी जाता है,पर विपुलमति केवलज्ञान के पहले नहीं छूटता। दोनों भेदों में मन:पर्ययज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा की हीनाधिकता रहती है।

'अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में विशेषता'

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन:पर्यययो: ॥ 25 ॥

अर्थ:- अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामि और विषय की अपेक्षा विशेषता होती है।

विशेषार्थ:- अवधिज्ञान अविशुद्ध, बड़ाक्षेत्र, अधिक स्वामी और स्थूल विषयवाला है, किन्तु मनःपर्ययज्ञान विशुद्धि अल्पक्षेत्र, अल्पस्वामी और सूक्ष्मविषय वाला है। इस प्रकार इन दोनों में अन्तर है।

'मति और श्रुतज्ञान का विषय'

मतिश्रुतयो-र्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु॥ 26॥

अर्थ:- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय सम्बन्ध सर्व पर्यायों से रहित द्रव्यों में होता है।

विशेषार्थ:- इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान रूपी-अरूपी सभी द्रव्यों को जानते हैं, पर उनकी सब पर्यायों को नहीं जान पाते, इसलिए उनका विषय सम्बन्ध द्रव्यों की कुछ पर्यायों के साथ होता है।

'अवधिज्ञान का विषय'

रूपिष्ववधेः॥ 27॥

अर्थ:- अवधिज्ञान का विषय-संबन्ध रूपी द्रव्यों में है अर्थात् अवधिज्ञान रूपी पदार्थों को जानता है।

'मनःपर्ययज्ञान का विषय'

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य॥ 28॥

अर्थ:- सर्वावधिज्ञान के विषयभूत रूपी द्रव्य के अनन्तवें भाग में मनःपर्ययज्ञान का विषय-सम्बन्ध है।

विशेषार्थ:- सर्वावधिज्ञान जिस रूपी द्रव्य को जानता है, उससे बहुत सूक्ष्म रूपी (पदार्थ) द्रव्य को मनःपर्ययज्ञान जानता है।

'केवलज्ञान का विषय'

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ 29॥

अर्थ:- केवलज्ञान का विषय-सम्बन्ध सब द्रव्यों और उनकी सब पर्यायों में हैं अर्थात् केवलज्ञान एक साथ सब पदार्थों का जानता है।

विशेषार्थ:- सब द्रव्यों को और सब द्रव्यों की त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों को केवलज्ञान एक साथ एक समय में प्रत्यक्ष जानता है।

'एक साथ एक आत्मा में रहने वाले ज्ञानों की संख्या '

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः ॥30॥

अर्थ:- एक जीव में एक साथ एक को आदि लेकर चार ज्ञान तक विभक्त करने के योग्य हैं, अर्थात् हो सकते हैं।

विशेषार्थ:- यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान अथवा मतिज्ञान होता है। दो हों तो मति-श्रुत होते हैं, तीन हों तो मति, श्रुत और अवधि अथवा मति, श्रुत और मनःपर्यय होते हैं। यदि चार हों तो, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते हैं। एक साथ पाँचों ज्ञान किसी जीव के नहीं होते हैं। प्रारम्भ के चार ज्ञान ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होते हैं और अन्त का केवलज्ञान कर्म के क्षय से होता है।

'मति, श्रुत,अवधि में मिथ्यापन'

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ 31 ॥

अर्थ:- मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान विपर्यय भी होते हैं। ऊपर कहे हुए पाँचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान होते हैं; परन्तु मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्याज्ञान भी होते हैं। इन्हें क्रम से कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान (विभंगावधि) कहते हैं।

नोट- इन तीनों ज्ञानों में मिथ्यापन मिथ्याज्ञान के संसर्ग से होता है। जैसे कड़वी तुम्बी में रखा हुआ दूध कड़वा हो जाता,वैसे ही जिस आत्मा के मिथ्यादर्शन का उदय है उस आत्मा के ज्ञान मिथ्या होते हैं।

'ज्ञानों के मिथ्या होने का हेतु'

स-दसतो-रविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ 32 ॥

अर्थ:- अपनी इच्छानुसार जैसा तैसा जानने के कारण सत् और असत् पदार्थों में विशेष ज्ञान न होने से, पागल पुरुष के ज्ञान की तरह मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्याज्ञान ही होता है। **प्रश्न**- सम्यग्दृष्टि अपने

यथार्थ मति, श्रुत और अवधि ज्ञान द्वारा पदार्थों को जैसा जानता है, मिथ्यादृष्टि भी अपने मिथ्या मति, श्रुत और अवधि ज्ञान द्वारा पदार्थों को वैसा ही जानता है फिर मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मिथ्या क्यों कहा? **उत्तर**- मदिरा पीकर उन्मत्त हुआ मनुष्य कभी माता को पत्नी कहता है,कभी पत्नी को माता कहता है। तथा कभी पत्नी को पत्नी और माता को माता भी कह बैठता है। फिर भी वह ठीक समझकर ऐसा नहीं कहता। इसी तरह मिथ्यादृष्टि भी घटपट आदि पदार्थों को घट पट आदि ही जानता है किन्तु मिथ्यात्व का उदय होने से यथार्थ वस्तु के स्वरूप का ज्ञान उसे नहीं होता है। अर्थात् उसे वस्तु की वास्तविकता (सत्यता) और अवास्तविकता (असत्यता) का भेद (अन्तर) या बोध नहीं होता। इसी से उसका ज्ञान मिथ्या माना जाता है।

'नय के भेद'

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥ 33 ॥

अर्थः- नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, और एवंभूत ये सात नय हैं। वस्तु के अनेक धर्मों में से किसी एक की मुख्यता कर अन्य धर्मों का विरोध नहीं करते हुए पदार्थ का जानना नय कहलाता है। **नैगमनय**- जो नय अनिष्पन्न अर्थ के संकल्प मात्र को ग्रहण करता है। वह नैगम नय है। जैसे- लकड़ी पानी आदि सामग्री इकट्ठी करने वाले पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं, तब वह उत्तर देता है कि रोटी बना रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह रोटी नहीं बना रहा था तथापि नैगम नय उसके इस उत्तर को सत्यार्थ मानता है। **संग्रहनय**- जो नय अपनी जाति का विरोध न करते हुए एकपने से समस्त पदार्थों को ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। जैसे- सत्, द्रव्य, घट इत्यादि। **व्यवहारनय**- जो नय संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किए पदार्थों के विधि पूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है। जैसे- सत् दो प्रकार का है द्रव्य और गुण। द्रव्य के 6 भेद हैं- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। गुण के दो भेद हैं-

सामान्य और विशेष। इस तरह यह नय वहाँ तक भेद करता जाता है जहाँ तक भेद हो सकते हैं। **ऋजुसूत्रनय**– जो सिर्फ वर्तमानकाल के पदार्थों का ग्रहण करे उसे ऋजुसूत्रनय कहते हैं। **शब्दनय** – जो नय लिंग संख्या कारक आदि के व्यभिचार को दूर करता है वह शब्दनय है। यह नय लिंगादि के भेद से पदार्थ को भेद रूप ग्रहण करता है। जैसे दार(पु.),भार्या(स्त्री.), कलत्र(न.) ये तीनों शब्द भिन्न लिंग वाले होकर भी एक ही स्त्री पदार्थ के वाचक हैं पर यह नय स्त्री पदार्थ को लिंग के भेद से तीन भेद रूप मानता हैं। **समभिरूढ़नय**– जो नय नाना अर्थों का उल्लंघन कर एक अर्थ का रूढ़ि से ग्रहण करता है, उसे समभिरूढ़नय कहते हैं। जैसे–वचन आदि अनेक अर्थों का वाचक गो शब्द किसी प्रकरण में गाय अर्थ का वाचक होता है। यह नय पर्याय के भेद से अर्थ को भी भेद रूप ग्रहण करता है। जैसे–इन्द्र, शक्र, पुरन्दर। ये तीनों शब्द के इन्द्र के नाम हैं पर यह नय इन तीनों के भिन्न–भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। **एवंभूतनय**– जिस शब्द का क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणमते हुए पदार्थ का जो नय ग्रहण करता है उसे एवंभूतनय कहते हैं। जैसे–पुजारी का पूजा करते समय ही पुजारी कहना।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ 1 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

द्वितीय अध्याय

'जीव के भाव'

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च॥ 1 ॥

अर्थ:- जीव के औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक ये पाँचों ही भाव निज के भाव हैं अर्थात् जीव को छोड़कर अन्य किसी में नहीं पाये जाते। **उपशम तथा औपशमिक भाव**- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति के प्रकट न होने को उपशम कहते हैं और कर्मों के उपशम से आत्मा का जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे- निर्मली के संयोग से पानी का कीचड़ नीचे बैठ जाता है और पानी साफ हो जाता है। **क्षय तथा क्षायिकभाव**- कर्मों के समूल विनाश होने को क्षय कहते हैं। जैसे-पूर्व उदाहरण में जो कीचड़ नीचे बैठ गया था उस कीचड़ का बिल्कुल अलग हो जाना। कर्मों के क्षय से जो भाव होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं। **क्षयोपशम तथा क्षायोपशमिक भाव** - सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं के आगामी काल में उदय आने वाले जो निषेक उनका सदवस्थारूप और देश घातिस्पर्द्ध के उदय होने को क्षयोपशम कहते हैं। जैसे- पानी की स्वच्छता को बिल्कुल नष्ट करने वाले कीचड़ के परमाणुओं के नीचे बैठ जाने तथा कुछ हल्के कीचड़ के परमाणुओं के मिले रहने पर पानी में स्वच्छास्वच्छ अवस्था होती है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव होते हैं उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। **उदय तथा औदयिक भाव**- स्थिति को पूरी करके कर्मों के फल देने को उदय कहते हैं और कर्मों के उदय से जो भाव होते हैं उसे औदयिक भाव कहते हैं। **पारिणामिक भाव**- जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा उदय की अपेक्षा न रखता हुआ आत्मा का स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

'भावों के भेद'

द्विनवाष्टादशैक-विंशति-त्रिभेदा यथाक्रमम्॥ 2 ॥

अर्थ:- ऊपर कहे हुए पाँचों भाव क्रम से दो, नव, अठारह, इक्कीस और तीन भेद वाले हैं।

विशेषार्थ:- औपशमिक भाव के दो भेद, क्षायिक भाव के नौ भेद, क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद, औदयिक भाव के इक्कीस भेद और पारिणामिक भाव के तीन भेद होते हैं। जीव के सम्पूर्ण भाव तिरेपन होते हैं।

'औपशमिकभाव के दो भेद'

सम्यक्त्वचारित्रे॥ 3 ॥

अर्थ:- औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये औपशमिक भाव के भेद हैं। **औपशमिक सम्यक्त्व**- अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात कर्म प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है, औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। **औपशमिक चारित्र**- मोहनीय कर्म की शेष 21 प्रकृतियों के उपशम से जो चारित्र होता है, उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं।

'क्षायिकभाव के नौ भेद'

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च॥ 4 ॥

अर्थ:- केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग,क्षायिकवीर्य तथा चकार के आने से क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ क्षायिकभाव के भेद हैं। इन क्षायिकभाव के नव भेदों को नव लब्धियाँ भी कहते हैं। **केवलज्ञान**- जो ज्ञानावरण के क्षय से हो उसे केवलज्ञान कहते हैं। **केवलदर्शन**- जो दर्शनावरण के क्षय से होवे उसे केवलदर्शन कहते हैं। **क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य**- अन्तराय कर्म के पाँच भेदों के क्षय से जो होवे उसे क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य कहते हैं।

क्षायिकसम्यक्त्व– जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियों के क्षय से होते हैं। **क्षायिकचारित्र** – जो ऊपर कही हुई इक्कीस प्रकृतियों के क्षय से होते हैं।

'क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद'

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः
सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च॥ 5॥

अर्थः– मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच लब्धियाँ तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम ये अठारह भाव क्षायोपशमिक भाव हैं। **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व**– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व इन 6 सर्वघाति प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय से तथा उन्हीं के आगमी काल में उदय में आने वाले जो निषेक उनका सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने से जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी का दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व भी है। **क्षायोपशमिक चारित्र**– अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायों का उदयाभावी क्षय तथा उन्हीं के निषेकों का सदवस्थारूप उपशम और संज्वलन कषाय का यथासंभव उदय होने पर जो चारित्र होता है उसे क्षायोपशमिक चारित्र कहते हैं। इसी का दूसरा नास सरागसंयम है। **संयमासंयम**– अनन्तानुबंधी आदि 8 प्रकृतियों का उदयभावी क्षय और उन्हीं के निषेकों का सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणादि 17 प्रकृतियों का यथासंभव उदय होने पर आत्मा की जो विरताविरत अवस्था होती है,उसे संयमासंयम कहते हैं।

'औदयिकभाव के इक्कीस भेद'

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता
सिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकैकैकषड्भेदाः॥ 6॥

अर्थः- नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव ये चार गति, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्धत्व और कृष्ण, नील, कापोत, पीत,पद्म तथा शुक्ल ये छः लेश्यायें, इस तरह सब मिलाकर औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं।

'पारिणामिकभाव के भेद'

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ 7 ॥

अर्थः- जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं। **नोट**- सूत्र में आए हुए 'च' शब्द से अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व आदि सामान्य गुणों का भी ग्रहण होता है। इस तरह जीव के सब मिलाकर कुल 2+9+18+21+3=53 तिरेपन भेद होते हैं।

'जीव का लक्षण'

उपयोगो लक्षणम् ॥ 8 ॥

अर्थः- जीव का लक्षण उपयोग है। **उपयोग**- आत्मा के चैतन्य गुण से संबंध रखने वाले परिणामों को उपयोग कहते हैं। उपयोग जीव का तद्भूत लक्षण है।

'उपयोग के भेद'

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ 9 ॥

अर्थः- वह उपयोग मूल में ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के भेद से दो प्रकार का है। फिर क्रम से आठ और चार भेद से सहित है। अर्थात् ज्ञानोपयोग के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं एवं दर्शनोपयोग के चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार भेद हैं। इस प्रकार दोनों भेदों के मिलाने से उपयोग के बारह भेद हो जाते हैं।

'जीव के भेद'

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ 10 ॥

अर्थः- वे जीव संसारी और मुक्त इस प्रकार दो भेद वाले हैं। कर्म सहित जीवों को संसारी और कर्म रहित जीवों को मुक्त कहते हैं।

'संसारी जीवों के भेद'

समनस्काऽमनस्काः ॥ 11 ॥

अर्थः- संसारी जीव समनस्क-सैनी और अमनस्क- असैनी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। **समनस्क**- मन सहित जीव और **अमनस्क**- मन रहित जीव।

'संसारी जीवों के अन्य प्रकार से भेद'

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ 12 ॥

अर्थः- संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं।

'स्थावरों के भेद'

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ 13 ॥

अर्थः- पृथिवीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच प्रकार के स्थावर हैं। इनके सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय होती है। **स्थावर**- स्थावर नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था विशेष को स्थावर कहते हैं।

'त्रस जीवों के भेद'

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ 14 ॥

अर्थः- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं। **त्रस**- त्रस नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था विशेष को त्रस कहते हैं।

'इन्द्रियों की गणना या भेद'

पञ्चेन्द्रियाणि ॥ 15 ॥

अर्थः- इन्द्रियाँ पाँच होती हैं। **इन्द्रिय**- जिनसे जीव की पहिचान हो उन्हें इन्द्रिय कहते हैं।

'इन्द्रियों के मूलभेद'

द्विविधानि ॥ 16 ॥

अर्थः– सब इन्द्रियाँ द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय के भेद से दो-दो प्रकार की होती है।

'द्रव्येन्द्रिय का स्वरूप'

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ 17 ॥

अर्थः– निर्वृत्ति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। **निवृत्ति**– पुद्गल विपाकी नाम कर्म के उदय से निर्वृत्त–रची गई नियत संस्थान वाली पुद्गल की रचना विशेष को निर्वृत्ति कहते हैं। इसके दो भेद हैं– (1) आभ्यन्तर निर्वृत्ति और (2) बाह्य निर्वृत्ति। उत्सेधांगुल के असंख्येय भाग प्रमाण शुद्ध आत्मा के प्रदेशों का इन्द्रियों के आकार रूप में परिणमन होता है उसे आभ्यन्तरनिर्वृत्ति कहते हैं। इन्द्रिय व्यपदेश को प्राप्त हुए आत्मा के उन प्रदेशों में नाम कर्म के उदय से चक्षुआदि इन्द्रियों के आकार में परिणत होने वाले पुद्गल प्रचय है उसे बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं। **उपकरण**– जो निर्वृत्ति का उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं– (1) आभ्यन्तर उपकरण और (2) बाह्य उपकरण। जैसे– चक्षु इन्द्रिय में जो कृष्ण शुक्ल मण्डल है वह आभ्यन्तर उपकरण है और पलकें तथा रोम वगैरह बाह्य उपकरण हैं।

'भावेन्द्रिय का स्वरूप'

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ 18 ॥

अर्थः– लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं। **लब्धि**– ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं। **उपयोग**– लब्धि के निमित्त से आत्मा को जो परिणमन होता है। उसे उपयोग कहते हैं। **विशेषार्थ**– जीव में देखने की शक्ति तो है किन्तु उसका उपयोग दूसरी ओर होने से वह सामने स्थित वस्तु को भी नहीं देख सकता है। इसी प्रकार किसी वस्तु को जानने की इच्छा होते हुए भी यदि क्षयोपशम नहीं हो तो

नहीं जान सकता है। अतः ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से आत्मा में जो जानने की शक्ति प्रगट होती है, वह तो लब्धि है और उसके होने पर आत्मा का ज्ञेय पदार्थ की ओर अभिमुख होना उपयोग कहलाता है। लब्धि और उपयोग के मिलने से भी पदार्थ का ज्ञान होता है।

'इन्द्रियों के नाम'

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥ 19॥

अर्थः- त्वचा, जीभ, नाक, आँख और कान ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

'इन्द्रियों के विषय'

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास् तदर्थाः॥ 20॥

अर्थः- उन इन्द्रियों के विषय क्रमशः स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पाँच हैं। स्पर्शन इन्द्रिय स्पर्श को, रसना इन्द्रिय रस को, घ्राण इन्द्रिय गन्ध को, चक्षुरिन्द्रिय रूप को तथा श्रोत्र इन्द्रिय शब्द को विषय करती हैं।

'मन का विषय'

श्रुत-मनिन्द्रियस्य॥ 21॥

अर्थः- मन का विषय श्रुत- ज्ञानागोचर पदार्थ है। अथवा श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ मन का विषय है।

'स्पर्शन इन्द्रिय का स्वामी'

वनस्पत्यन्तानामेकम्॥ 22॥

अर्थः- वनस्पतिकाय है अन्त में जिनके ऐसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

'शेष इन्द्रियों के स्वामी'

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि॥ 23॥

अर्थः- लट आदि, चिंउटी आदि, भौंरा आदि तथा मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक बढ़ती हुई इन्द्रियाँ होती हैं।

'समनस्क का लक्षण'

सञ्ज्ञिनः समनस्काः ॥ 24 ॥

अर्थः– मन सहित जीव संज्ञी, सैनी या समनस्क कहलाते हैं। **संज्ञी** – हित और अहित की परीक्षा तथा गुणदोष का विचार वा स्मरणादि करने को संज्ञी कहते हैं। **शंका** – हिताहित में प्रवृत्ति मन की सहायता से ही होती है, विग्रहगति में मन रहता नहीं, फिर जीव मन के बिना विग्रहगति में नया शरीर धारण करने के लिए गमन कैसे करता है?

'समाधान'

विग्रह–गतौ कर्म–योगः ॥ 25 ॥

अर्थः– विग्रहगति में कार्मण काययोग होता है। उसी की सहायता से जीव एक गति से दूसरी गति में गमन करता है। **विग्रहगति** – नया शरीर धारण करने के लिए गमन करने को विग्रहगति कहते हैं। **कर्मयोग** – ज्ञानावरणादि कर्मों के समूह को कार्मण कहते हैं। कार्मण काययोग के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो कम्पन होता है उसे कर्मयोग अथवा कार्मणयोग कहते हैं। इसके द्वारा ही जीव मृत्युस्थान से नवीन जन्म लेने के लिए नये स्थान तक जाता है।

'गमन किस प्रकार होता है?'

अनुश्रेणि गतिः ॥ 26 ॥

अर्थः– जीव और पुद्गलों का गमन श्रेणी के अनुसार ही होता है। **श्रेणी**– लोक के मध्य भाग से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशा में क्रम से सन्निवेश (रचना) को प्राप्त हुए आकाश प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणि कहते हैं। **नोट**– जीव मरकर दूसरे शरीर के लिए विग्रहगति में गमन करता है उसी का गमन विग्रहगति में श्रेणी के अनुसार होता है, अन्य का नहीं। इसी तरह जो पुद्गल का शुद्ध परमाणु एक समय में चौदह राजु गमन करता है। उसी का श्रेणी के अनुसार गमन होता है, सब पुद्गलों का नहीं।

'मुक्त जीवों की गति'

अविग्रहा जीवस्य ॥ 27 ॥

अर्थः- मुक्त जीव की गति वक्रता रहित सीधी होती है। **विशेषार्थ**- श्रेणि के अनुसार होने वाली गति के दो भेद हैं- **(1) विग्रहगति**- जिसमें मुड़ना पड़े और **(2) अविग्रहा**- जिसमें मुड़ना न पड़े। इनमें से कर्मों का क्षय कर सिद्धशिला के प्रति गमन करने वाले जीवों के अविग्रह गति होती है।

'संसारी जीवों की गति और समय'

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ 28 ॥

अर्थः- संसारी जीव की गति चार समय से पहले-पहले विग्रहवती अर्थात् मोड़ सहित और अविग्रहा अर्थात् मोड़ रहित दोनों प्रकार की होती है। **विशेषार्थ**- संसारी जीव की गति मोड़ रहित भी होती और मोड़ सहित भी। जो मोड़ रहित होती है उसमें केवल एक समय लगता है, जिसमें एक मोड़ लेना पड़ता है, उसमें दो समय, जिसमें दो मोड़ लेना पड़ते हैं उसमें तीन समय, जिसमें तीन मोड़ लेना पड़ते हैं, उसमें चार समय लगते हैं। यह जीव चौथे समय में कहीं न कहीं नवीन शरीर नियम से धारण कर लेता है। इसलिए विग्रहवती का समय चार समय से के पहले-पहले तक कहा गया है। उक्त गतियों के 4 भेद हैं। ऋजुगति या इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिकागति।

'अविग्रह गति का समय'

एकसमयाऽविग्रहा ॥ 29 ॥

अर्थः- मोड़ रहित गति एक समय मात्र ही होती है। उसमें एक ही समय लगता है।

'विग्रहगति में आहारक-अनाहारक की व्यवस्था'

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ 30 ॥

अर्थः- विग्रहगति में जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है। **आहार**- औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं के ग्रहण को आहार कहते हैं। **अनाहारक**- जब तक जीव आहार को ग्रहण नहीं करता तब तक वह अनाहारक कहलाता है। संसारी जीव अविग्रह गति में आहारक ही होता हैं किन्तु एक,दो और तीन मोड़ा वाली गतियों में क्रम से एक, दो,तीन समय तक अनाहारक रहता है। चौथे समय में नियम से आहारक हो जाता है।

'जन्म के भेद'

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ 31 ॥

अर्थः- जन्म सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद के भेद से तीन प्रकार का होता है। **सम्मूर्च्छन जन्म**- अपने शरीर के योग्य पुद्गल परमाणुओं के द्वारा माता-पिता के रज और वीर्य के बिना ही अवयवों की रचना होने को सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। **गर्भ जन्म**- स्त्री के उदर में रज और वीर्य के मिलने से जो जन्म होता है उसे गर्भ जन्म कहते हैं। **उपपाद जन्म**- माता-पिता के रज और वीर्य के बिना देव नारकियों के निश्चित स्थान विशेष पर उत्पन्न होने को उपपाद जन्म कहते हैं।

'योनियों के भेद'

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ 32 ॥

अर्थः- सचित्त, शीत, संवृत, इनसे उल्टी तीन अचित्त, उष्ण, विवृत एक-एक कर क्रम से मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत ये नौ सम्मूर्च्छन आदि जन्मों की योनियाँ हैं। जीव सहित योनि को सचित्त योनि कहते हैं। जो जीव देखने में न आवे ऐसे जीव के उत्पत्ति स्थान को संवृतयोनि कहते हैं। जो सबके देखने में आवे उस उत्पत्ति स्थान को विवृतयोनि कहते हैं। शेष योनियों का अर्थ स्पष्ट है। **नोट**- कौन योनि किस जीव के होती है। इस विषय को आगे के चार्ट में देखिए।

योनि के भेद और उनके स्वामी

क्रमांक	योनि	नाम स्वामी
(1)	सचित्त	साधारण शरीर
(2)	अचित्त	देव, नारकी
(3)	सचित्ताचित्त	गर्भज
(4)	शीत	तेजस्कायिक और देव नारकियों को छोड़कर
(5)	उष्ण	तेजस्कायिक
(6)	शीतोष्ण	देव, नारकी
(7)	संवृत	देव, नारकी, एकेन्द्रिय
(8)	विवृत	विकलेन्द्रिय
(9)	संवृतविवृत	गर्भज

'गर्भ जन्म किसके होता है?'

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ 33 ॥

अर्थः- जरायुज, अण्डज और पोत इन तीन प्रकार के जीवों के गर्भ जन्म ही होता है। अथवा गर्भ जन्म उक्त जीवों के ही होता है। **जरायुज**- जाल के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली में लिपटे हुए जो जीव पैदा होते हैं उन्हें जरायुज कहते हैं। जैसे- गाय, भैंस, मनुष्य आदि। **अण्डज**- जो जीव अण्डे से उत्पन्न हों उन्हें अण्डज कहते हैं। जैसे- चील, कबूतर आदि पक्षी। **पोत**- पैदा होते समय जिन जीवों पर किसी प्रकार का आवरण न हो और पैदा होते ही चलने फिरने लग जावें उन्हें पोत जन्म कहते हैं। जैसे- हरिण, सिंह आदि।

'उपपाद जन्म किसके होता है'

देवनारकाणामुपपादः ॥ 34 ॥

अर्थः- देव और नारकियों के उपपाद जन्म देव और नारकियों के ही होता है।

'सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है'

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ 35 ॥

अर्थः- गर्भ और उपपाद जन्म वालों से बाकी बचे हुए जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है अथवा सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवों के ही होते हैं। **नोट**- एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म होता है। बाकी तिर्यञ्चों के गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

'शरीरों के नाम व भेद'

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ 36 ॥

अर्थः- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। **औदारिकशरीर**- स्थूल शरीर (जो दूसरे को छेड़े और दूसरे से छिड़ सके) को औदारिक शरीर कहते हैं। यह मनुष्य और तिर्यञ्चों के होता है। **वैक्रियिकशरीर**- जिसमें हल्के भारी तथा कई प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो, उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। यह देव और नारकियों के होता हैं। विक्रिया ऋद्धि इससे भिन्न है। **आहारकशरीर**- सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिए वा संयम की रक्षा के लिए या वन्दना आदि के लिए छठे गुणस्थानवर्ती जीव के मस्तक से एक हाथ का जो सफेद रंग का पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं। **तैजसशरीर**- जिसके कारण शरीर में तेज रहे उसे तैजस शरीर कहते हैं। **कार्मणशरीर**- ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

'शरीरों की सूक्ष्मता का वर्णन'

परं परं सूक्ष्मम् ॥ 37 ॥

अर्थः- पूर्व से आगे-आगे के शरीर सूक्ष्म-सूक्ष्म अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक, वैक्रियिक से आहारक, आहारक से तैजस और तैजस से कार्मण शरीर सूक्ष्म होते हैं।

'शरीरों के प्रदेशों का विचार'

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ 38 ॥

अर्थः- प्रदेशों की अपेक्षा तैजस शरीर से पहले-पहले के शरीर असंख्यातगुणे हैं। **विशेषार्थ**- औदारिक शरीर की अपेक्षा असंख्यात गुणे प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिक में हैं और वैक्रियिक की अपेक्षा असंख्यात गुणे आहारक में हैं।

'तैजस और कार्मण शरीर के प्रदेश'

अनन्तगुणे परे ॥ 39 ॥

अर्थः- शेष के दो शरीर, अनन्तगुण परमाणु वाले हैं। अर्थात् आहारक शरीर से अनन्त गुणे परमाणु तैजस शरीर में और तैजस शरीर की अपेक्षा अनन्त गुणे परमाणु कार्मण शरीर में हैं।

'तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता'

अप्रतिघाते ॥ 40 ॥

अर्थः- तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर बाधा रहित हैं अर्थात् किसी भी मूर्तिक पदार्थ से न स्वयं रुकते हैं और न किसी को रोकते हैं।

अनादिसम्बन्धे च ॥ 41 ॥

अर्थः- ये दोनों शरीर आत्मा के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले हैं। **नोट**- यह कथन सामान्य तैजस और कार्मण की अपेक्षा है। विशेष की अपेक्षा पहले के शरीरों का सम्बंध नष्ट होकर उनके स्थान में नये-नये शरीरों का सम्बंध होता रहता है।

सर्वस्य ॥ 42 ॥

अर्थः- ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवों के होते हैं।

'एक साथ एक जीव के कितने शरीर हो सकते हैं?'

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ 43 ॥

अर्थः- उन तैजस और कार्मण शरीर को आदि लेकर एक साथ

एक जीव के चार शरीर तक विभक्त करना चाहिए। अर्थात्– दो शरीर हों तो तैजस और कार्मण, तीन हों तो तैजस, कार्मण और औदारिक अथवा तैजस, कार्मण और वैक्रियिक तथा चार हों तो तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक अथवा तैजस, कार्मण, औदारिक और वैक्रियिक होता है। इस तरह का साथ चार शरीर हो सकते हैं।

'कार्मण शरीर की विशेषता'

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ 44 ॥

अर्थः– अन्त का कार्मण शरीर उपभोग रहित होता है। **उपभोग**– इन्द्रियों के द्वारा शब्दादिक के ग्रहण करने को उपभोग कहते हैं।

'औदारिक शरीर का लक्षण'

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ 45 ॥

अर्थः– गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न हुआ शरीर औदारिक शरीर कहलाता है।

'वैक्रियिक शरीर का लक्षण'

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ 46 ॥

अर्थः– उपपाद जन्म से होने वाले देव नारकियों का शरीर वैक्रियिक कहलाता है।

'विशेष वैक्रियिक का लक्षण'

लब्धिप्रत्ययं च ॥ 47 ॥

अर्थः– वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तक भी होता है। **लब्धि**– तपोविशेष से प्राप्त ऋद्धि को लब्धि कहते हैं।

'तैजस शरीर की विशेषता'

तैजसमपि ॥ 48 ॥

अर्थः– तैजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय होता है। **विशेषार्थ**– तैजस शरीर दो प्रकार का होता है। एक शरीर में ही रहकर उसको कान्ति देना

वाला, जो संसारी जीवों के पाया जाता है; दूसरा शरीर से निकलकर बाहर जाने वाला यह भी शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है।

'आहारक शरीर का स्वामी का लक्षण'

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव॥ 49 ॥

अर्थः- आहारक शरीर शुभ है अर्थात् इसका कारण शुभ होने से शुभ है और कार्य विशुद्ध होने से विशुद्ध है। व्याघात-बाधा रहित है तथा प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है।

'नारकियों और सम्मूर्च्छनों के वेद'

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ 50 ॥

अर्थः- नारकी और सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव नपुंसक होते हैं।

'देवों के वेद'

न देवाः ॥ 51 ॥

अर्थः- देव नपुंसक नहीं होते हैं। अर्थात् देवों में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग ये दो ही लिंग होते हैं।

'मनुष्यों और तिर्यंचों के वेद'

शेषास्त्रिवेदाः ॥ 52 ॥

अर्थः- शेष बचे हुए मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेद वाले होते हैं।

'अकाल मृत्यु का अभाव'

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ 53 ॥

अर्थः- उपपाद जन्म वाले देव नारकी, तद्भव मोक्षगामियों में श्रेष्ठ तीर्थंकर तथा असंख्यात वर्षों की आयु वाले भोगभूमि के जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं अर्थात् जीवों की असमय में मृत्यु नहीं होती।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ 2 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

तृतीय अध्याय

'अधोलोक का निर्णय'

'सप्त पृथिवियाँ–नरक'

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बुवाता–काशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ 1 ॥

अर्थः– रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये भूमियाँ सात हैं और वे क्रम से नीचे–नीचे घनोदधिवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार हैं। **विशेषार्थ**– अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमः प्रभा ये सात पृथिवियाँ हैं। ये क्रम से नीचे से एक के नीचे हैं। इनमें क्रम से घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवा और मघवी ये सात नरक हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। उसकी मोटाई के तीन भाग हैं। जिन्हें खरभाग, पंकभाग और अब्बहुल भाग कहते हैं। खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है। उसमें ऊपर और नीचे एक–एक हजार योजन छोड़कर बीच के चौदह योजन में असुर कुमारों और राक्षसों के सिवाय शेष नव प्रकार के भवनवासी और सात प्रकार के व्यन्तर रहते हैं। पंकभाग में असुरकुमार और राक्षस रहते हैं और अब्बहुलभाग में प्रथम नरक है। खरभाग की मोटाई सोलह हजार योजन, पंकभाग की चौरासी हजार योजन और अब्बहुलभाग की मोटाई अस्सी हजार योजन है। ये भूमियाँ घनोदधिवातवलय के आधार हैं। घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार हैं। घनवातवलय तनुवातवलय के आधार हैं और तनुवातवलय आकाश के आधार हैं तथा आकाश अपने ही आधार है क्योंकि आकाश सबसे बड़ा और अनन्त है। इसलिए उसका आधार कोई दूसरा नहीं हो सकता है।

'सात पृथिवियों में बिलों की संख्या'

**तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि–
–पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ 2 ॥**

अर्थः- उन पृथिवियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच ही नरक-बिल हैं। बिल जमीन में गड़े हुए ढोल की पोल के समान होते हैं और वे गोल, चौकोन वा त्रिकोण आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

'नारकियों के लेश्यादि के दुःख'

नारका-नित्याशुभतर-लेश्या-परिणाम-देहवेदनाविक्रियाः ॥ 3 ॥

अर्थः- नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभतर लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना ओर विक्रिया के धारक होते हैं। परिणाम- स्पर्श,रस,गंध,वर्ण और शब्द को परिणाम कहते हैं।

नरक-व्यवस्था

क्र.	पृथिवी	प्रस्तार	बिल	शरीर की ऊँचाई	लेश्या	शीतोष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
1.	रत्नप्रभा	13	30लाख	7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल	जघन्य कापोत	उष्ण वेदना	1 सागर	10,000 वर्ष
2.	शर्करा	11	25लाख	15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल	मध्यम कापोत	उष्ण वेदना	3 सागर	1 सागर
3.	बालुका	9	15लाख	31 धनुष 1 हाथ	उत्कृष्ट कापोत जघन्य नील	उष्ण वेदना	7 सागर	3 सागर
4.	पंकप्रभा	7	10लाख	62 धनुष 2 हाथ	मध्यम नील	उष्ण वेदना	10 सागर	7 सागर
5.	धूमप्रभा	5	3 लाख	125धनुष	उत्कृष्ट नील जघन्य कृष्ण	उष्ण शीत	17 सागर	10 सागर

क्र.	पृथिवी	प्रस्तार	बिल	शरीर की ऊँचाई	लेश्या	शीतोष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
6.	तमःप्रभा	3	99,995	250धनुष	मध्यम कृष्ण	महाशीत	22 सागर	17 सागर
7.	महातमः	1	5	500 धनुष	उत्कृष्ट कृष्ण	महाशीत	33 सागर	22 सागर
लेश्या का यह क्रम सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ के अनुसार है।								

'नरकों में पारस्परिक दु:ख'

परस्परोदीरितदु:खा: ॥ 4 ॥

अर्थ:- नारकी जीव आपस में एक दूसरे को दु:ख देते हैं और वे ग्रामशार्दूलों (कुत्तों) की तरह परस्पर में लड़ते हैं। **नोट**- नरकों में भयानक दु:ख और चीरफाड़ होने पर भी असमय में मृत्यु नहीं होती।

'नरकों में असुरकृत दु:ख'

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदु:खाश्च प्राक् चतुर्थ्या: ॥ 5 ॥

अर्थ:- और वे नारकी चौथी पृथ्वी से पहले-पहले अर्थात् तीसरी पृथ्वी पर्यन्त अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामों के धारक अम्बाम्बरीष जाति के असुर कुमारों के द्वारा उत्पन्न किया गया है दु:ख जिनके ऐसे होते हैं। अर्थात् तीसरे नरक तक जाकर अम्बाम्बरीष-असुर कुमार उन्हें पूर्व वैर का स्मरण दिलाकर आपस में लड़ाते हैं और उन्हें दु:खी देखकर हर्षित होते हैं। उनके इसी प्रकार की कषाय का उदय रहता है।

'नरकों में उत्कृष्ट आयु का प्रमाण'

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थिति: ॥ 6 ॥

अर्थ:- उन नरकों में, नारकी जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तैंतीस सागर है।

'मध्यलोक का वर्णन-कछु द्वीप समुद्रों के नाम'

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ 7 ॥

अर्थः- इस मध्यलोक में अच्छे-अच्छे नाम वाले जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवण समुद्र आदि समुद्र हैं। **विशेषार्थ**- सबके बीच में थाली के आकार का जम्बूद्वीप है। उसके चारों तरफ लवण समुद्र है, उसके चारों तरफ धातकीखण्ड द्वीप, उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक-दूसरे को घेरे हुए असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबसे अन्तिम में द्वीप का नाम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है।

'द्वीप और समुद्रों का विस्तार और आकार'

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ 8 ॥

अर्थः- प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले पहले-पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए तथा चूड़ी के समान आकार वाले हैं। द्वीप से समुद्र का और समुद्र से द्वीप का विस्तार दोगुना है तथा द्वीप से द्वीप का और समुद्र से समुद्र का विस्तार चौगुना है। इस प्रकार तीसरे द्वीप का 16 लाख योजन और तीसरे समुद्र का विस्तार 32 लाख योजन है।

'जम्बूद्वीप का विस्तार और आकार'

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ 9 ॥

अर्थः- उन सब द्वीप-समुद्रों के बीच में सुदर्शन मेरु की नाभि जिसकी ऐसा तथा थाली के समान गोल और एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है।

'क्षेत्रों के नाम'

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ 10 ॥

अर्थः- इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

'क्षेत्रविभाजक कुलाचलों के नाम'

तद्विभाजिनःपूर्वापरायताहिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ 11 ॥

अर्थः- उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिन् ये छः वर्षधर-कुलाचल पर्वत हैं। वर्ष का अर्थ यहाँ क्षेत्र है।

'कुलाचलों के वर्ण या रंग'

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ 12 ॥

अर्थः- ऊपर कहें हुए पर्वत क्रम से सुवर्ण, चाँदी, तपाया हुआ सुवर्ण, नीलमणि, चाँदी और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं।

'कुलाचलों का आकार'

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ 13 ॥

अर्थः- पर्वत कई तरह के मणियों से चित्रविचित्र हैं, देव-विद्याधरादि के चित्त को चमत्कृत करते है तथा ऊपर, नीचे और मध्य में एक समान विस्तार वाले हैं।

'कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम'

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकाह्रदास्तेषामुपरि॥14॥

अर्थः- उन पर्वतों के ऊपर क्रम से, पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के सरोवर है।

'प्रथम ह्रद की लम्बाई-चौड़ाई'

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ 15 ॥

अर्थः- पहला सरोवर एक हजार योजन लम्बा और लम्बाई से आधा अर्थात् पाँच सौ योजन चौड़ाई के विस्तार वाला है।

'प्रथम सरोवर की गहराई'

दशयोजनावगाहः ॥ 16 ॥

अर्थः- पहला सरोवर दश योजन गहरा है।

'उसके मध्य में क्या है?'

तन्मध्ये योजनं पुष्करम्॥ 17 ॥

अर्थः- उसके बीच में एक योजन विस्तार का कमल है।

'द्वितीयादि ह्रदों और कमलों का विस्तार'

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च॥ 18 ॥

अर्थः- आगे के सरोवर और कमल क्रम से प्रथम सरोवर तथा उसके कमल से दूने-दूने विस्तार वाले हैं। **नोट**- यह दूने-दूने क्रम तिगिंछ नामक तीसरे सरोवर तक ही हैं। उसके आगे के तीन सरोवर और तीन कमल दक्षिण के सरोवर और कमलों के समान विस्तार वाले हैं।

'कमलों में रहने वाली छह देवियाँ'

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः॥ 19 ॥

अर्थः- एक पल्य की आयु वाली तथा सामानिक और परिषद् जाति के देवों सहित श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम की देवियाँ क्रम से उन सरोवरों के कमलों पर निवास करती हैं।

'चौदह महानदियों के नाम'

गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्ता-सुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाःसरितस्तन्मध्यगाः॥ 20 ॥

अर्थः- गंगा-सिंधु, रोहित-रोहितास्या, हरित्-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा ये चौदह नदियाँ जम्बूद्वीप के पूर्वोक्त सात क्षेत्रों के बीच रहती है। **विशेषार्थ** - पहले पद्म और छठवें पुण्डरीक नामक सरोवर से क्रम से आदि और अन्त की तीन नदियाँ निकली हैं तथा बाकी के सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकली हैं। नदियों और क्षेत्र का क्रम इस प्रकार है :- भरत में- गंगासिन्धु, हैमवत में- रोहित रोहितास्या, हरि में-हरित् हरिकान्ता, विदेह में- सीता सीतोदा, रम्यक में- सुवर्णकूला रूप्यकूला और ऐरावत में- रक्ता रक्तोदा बहती है।

तालाबों का विस्तार आदि

नाम	स्थान	लम्बाई योजन	चौड़ाई योजन	गहराई योजन	कमल योजन	देवी
पद्म	हिमवन्	1000	500	10	1	श्री
महापद्म	महाहिमवन्	2000	1000	20	2	ह्री
तिगिंछ	निषध	4000	2000	40	4	धृति
केसरी	नील	4000	2000	40	4	कीर्ति
महापुण्डरीक	रुक्मिन्	2000	1000	20	2	बुद्धि
पुण्डरीक	शिखरिन्	1000	500	10	1	लक्ष्मी

'पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ'

द्वयोर्द्वयो: पूर्वा: पूर्वगा: ॥ 21 ॥

अर्थ:- गंगा सिंधु इत्यादि दो-दो नदियों में से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती हैं। अर्थात् गंगा, रोहित, हरित, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्व समुद्र में जाकर मिलती हैं।

'पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ'

शेषास्त्वपरगा: ॥ 22 ॥

अर्थ:- प्रत्येक जोड़े के दूसरी-दूसरी नदियाँ पश्चिम की ओर जाती हैं। अर्थात् सिंधु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा से सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती हैं।

'महानदियों की सहायक नदियाँ'

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्य: ॥ 23 ॥

अर्थ:- गंगा सिन्धु आदि नदियों के युगल चौदह हजार सहायक नदियों से घिरे हुए हैं। **नोट**- सहायक नदियों का क्रम भी विदेह क्षेत्र तक आगे-आगे के युगलों में पूर्व के युगलों से दूना-दूना है और उत्तर के तीन क्षेत्रों में दक्षिण के तीन क्षेत्रों के समान है। **नदी युगल**- गंगा-सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला, रक्ता-रक्तोदा।

‘भरतक्षेत्र का विस्तार’

भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागाः योजनस्य ॥ 24 ॥

अर्थः– भरतक्षेत्र पाँच सौ छब्बीस योजन विस्तार वाला और एक योजन के उन्नीस भागों में छह भाग अधिक है। **विशेषार्थ**– भरत क्षेत्र का विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन है।

‘द्वितीयादिक क्षेत्रों और पर्वतों का विस्तार’

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ 25 ॥

अर्थः– विदेहक्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र भरतक्षेत्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

‘विदेहक्षेत्र के आगे के पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार’

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ 26 ॥

अर्थः– उत्तर के ऐरावत से लेकर नीलपर्वत तक जितने क्षेत्र और पर्वत आदि हैं उनका विस्तार आदि दक्षिण के क्षेत्र और पर्वत आदि के समान है। इसका खुलासा इस प्रकार है :-

क्षेत्रों और पर्वतों का विस्तार

संख्या	क्षेत्र	विस्तार योजन	संख्या	पर्वत	विस्तार योजन
(1)	भरत	526 6/19 योजन	(1)	हिमवन्	1052 12/19योजन
(2)	हैमवत	2105 5/19 योजन	(2)	महाहिमवन्	4210 10/19योजन
(3)	हरि	8421 1/19 योजन	(3)	निषध	16842 2 /19योजन
(4)	विदेह	33684 4/19 योजन	(4)	नील	16842 2/19योजन
(5)	रम्यक	8421 1/19 योजन	(5)	रुक्मि	4210 10/19योजन
(6)	हैरण्यवत	2105 5/19 योजन	(6)	शिखरी	1052 12/19योजन
(7)	ऐरावत	526 6/19 योजन			

‘भरत और ऐरावत क्षेत्र में कालचक्र का परिवर्तन’

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ 27 ॥

अर्थः- छहकालों से युक्त, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी द्वारा भरत और ऐरावत क्षेत्र में जीवों को अनुभव आदि की बढ़ती तथा घटती या न्यूनता होती रहती है। **विशेषार्थ** - बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं:- (1) उत्सर्पिणी - जिसमें जीवों के ज्ञान आदि की वृद्धि होती है और (2) अवसर्पिणी - जिसमें जीवों के ज्ञान आदि का ह्रास होता है। अवसर्पिणी के छह भेद हैं - (1) सुषमसुषमा, (2) सुषमा, (3) सुषमदुःषमा, (4) दुःषमसुषमा, (5) दुःषमा और (6) दुःषमदुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के भी दुःषमदुःषमा को आदि लेकर छह भेद हैं। इन छह भेदों के काल नियम इस प्रकार हैं- (1) सुषमसुषमा - चार कोड़ा-कोडी सागर, (2) सुषमा - तीन कोड़ा-कोडी सागर, (3) सुषमदुःषमा - दो कोड़ा-कोड़ी सागर, (4) दुःषमसुषमा - ब्यालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर, (5) दुःषमा - इक्कीस हजार वर्ष, (6) अतिदुःषमा (दुःषमा-दुःषमा)- इक्कीस हजार वर्ष। भरत और ऐरावत क्षेत्र में इन छह भेदों सहित उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का परिवर्तन होता रहता है। असंख्यात अवसर्पिणी बीज जाने के बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है।

विशेष- भरत और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी म्लेच्छखण्डों तथा विजयार्थ पर्वत की श्रेणियों में अवसर्पिणी काल के समय चतुर्थकाल के आदि से लेकर अन्त का परिवर्तन होता है और उत्सर्पिणी काल के समय तृतीय काल के अन्तर से लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। इसमें आर्यखण्ड़ों की तरह छहों कालों का परिवर्तन नहीं होता और न इनमें प्रलयकाल पड़ता है।

'अन्य भूमियों की व्यवस्था'

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ 28 ॥

अर्थः- भरत और ऐरावत के सिवाय अन्य क्षेत्र एक ही अवस्था में रहते हैं। उनके काल का परिवर्तन नहीं होता।

'हैमवत आदि क्षेत्रों में आयु'

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ 29 ॥

अर्थः– हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य वा तिर्यंचों की आयु क्रम से एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्य की होती है। **नोट**– इन तीन क्षेत्रों के मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई क्रम से एक, दो और तीन कोश की होती है। शरीर का रंग क्रम से नील, शुक्ल और पीत होता है।

'हैरण्यवत आदि में आयु'

तथोत्तराः ॥ 30 ॥

अर्थः– उत्तर के क्षेत्रों के मनुष्यों और तिर्यञ्चों की आयु हैमवत आदि क्षेत्रों के मनुष्यों वा तिर्यञ्चों के समान होती है।

विशेषार्थ– हैरण्यवत क्षेत्र में आयु हैमवत क्षेत्र के समान, रम्यक क्षेत्र में आयु हरिक्षेत्र के समान तथा उत्तरकुरु में आयु देवकुरु के समान होती है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप से तीनों भोगभूमियों के दो-दो क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप में छह भोगभूमियाँ और अढ़ाई द्वीप में कुल 30 भोग भूमियाँ हैं। जिनमें सब तरह की भोग-उपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है अथवा जहाँ भोगों की ही प्रधानता होती उसे भोगभूमि कहते हैं।

'विदेहक्षेत्र में आयु'

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ 31 ॥

अर्थः– विदेहक्षेत्र में मनुष्यों और तिर्यंचों की आयु संख्यात वर्ष की होती है। विदेहक्षेत्र में ऊँचाई पाँच सौ धनुष और आयु एक करोड़ पूर्व वर्ष की होती है।

'भरतक्षेत्र का विस्तार'

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ 32 ॥

अर्थः– भरत-क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बे वाँ भाग है। **विशेषार्थ** – 24वें सूत्र में भरतक्षेत्र का जो विस्तार बतलाया है उसमें और इनमें कोई भेद नहीं है। सिर्फ कथन करने का प्रकार दूसरा है। यदि एक लाख के एक सौ नब्बे हिस्से किए जायें तो उनमें हर एक का प्रमाण 526 6/19 योजन होगा।

'धातकीखण्ड का वर्णन'

द्विर्धातकीखण्डे ॥ 33 ॥

अर्थः- धातकीखण्ड नामक दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थों की रचना जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है।

'पुष्करद्वीप का वर्णन'

पुष्करार्द्धे च ॥ 34 ॥

अर्थः- पुष्करद्वीप के आधे भाग में क्षेत्र और पर्वत आदि की सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। **विशेष**- पुष्करद्वीप का विस्तार 16 लाख योजन है। उसके ठीक बीच में चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिसमें द्वीप के दो हिस्से हो गए हैं। पूर्वार्ध में सब रचना धातकीखण्ड के समान है और जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। इस द्वीप के उत्तरकुरु प्रान्त में एक पुष्कर (कमल) है उसके संयोग से ही इसका नाम पुष्कर द्वीप पड़ा है।

'मनुष्य क्षेत्र'

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ 35 ॥

अर्थः- मानुषोत्तरपर्वत के पहले अर्थात् अढ़ाईद्वीप में ही मनुष्य होते हैं। मानुषोत्तरपर्वत के आगे ऋद्धिधारी मुनि तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते हैं।

'मनुष्य के भेद'

आर्या म्लेच्छाश्च ॥ 36 ॥

अर्थः- मनुष्य के दो भेद हैं- आर्य और म्लेच्छ। **आर्य** - जो अनेक गुणों से सम्पन्न हों तथा गुणी पुरुष जिनकी सेवा करें, उन्हें आर्य कहते हैं। **म्लेच्छ**- जो आचार-विचार से भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्म-कर्म का कुछ विवेक न हो, उन्हें म्लेच्छ कहते हैं।

'कर्मभूमि का वर्णन'

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ 37 ॥

अर्थः- पाँच मेरु सम्बन्धी, 5 भरत, 5 ऐरावत और देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर 5 विदेह इस तरह अढ़ाईद्वीप में कुल 15 कर्म भूमियाँ हैं और 30 भोगभूमियाँ हैं। **कर्मभूमि** - जहाँ पर असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मों की प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं।

'मनुष्यों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति'

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते॥ 38॥

अर्थः- मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

'तिर्यंचों की स्थिति'

तिर्यग्योनिजानां च॥ 39॥

अर्थः- तिर्यञ्चों की भी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति क्रम से तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त की है।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ 3॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

चतुर्थ अध्याय

'देवों के भेद'

देवाश्चतुर्णिकाया ॥ 1 ॥

अर्थः- देव चार जाति वाले हैं। अर्थात् देवों के चार भेद हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। **देव**- देवगति नामकर्म के उदय से जो नाना द्वीप, समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीक स्थानों में क्रीड़ा करते हैं उन्हें देव कहते हैं।

'भवनत्रिक देवों में लेश्या का विभाग'

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ 2 ॥

अर्थः- पहले के तीन निकायों में पीतान्त अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्याएँ होती हैं।

'चार निकायों के प्रभेद'

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ 3 ॥

अर्थः- सोलहवें स्वर्ग तक के चार प्रकार के देवों के क्रम से दश, आठ, पाँच और बारह भेद हैं। अर्थात् 10 प्रकार के भवनवासी, आठ प्रकार के व्यन्तर, पाँच प्रकार के ज्योतिषी और बारह प्रकार के वैमानिक देव होते हैं।

'चार प्रकार के देवों के सामान्य भेद'

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ॥ 4 ॥

अर्थः- उक्त चार प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दश भेद होते हैं। **इन्द्र** - जो देव दूसरे देवों में नहीं रहने वाली अणिमा आदि ऋद्धियों से सहित हों, उसे इन्द्र कहते हैं। ये देव राजा के तुल्य होते हैं। **सामानिक**- जिनकी आयु वीर्य भोग उपभोग आदि इन्द्र

के तुल्य हो पर आज्ञारूप ऐश्वर्य से रहित हों उन्हें सामानिक कहते हैं। ये देव पिता, गुरु के तुल्य होते हैं। **त्रायस्त्रिंश** – जो देव मंत्री, पुरोहित के स्थानापन्न हों उन्हें त्रायस्त्रिंश कहते हैं। ये देव एक इन्द्र की सभा में तैंतीस ही होते हैं। **पारिषद** – जो देव इन्द्र की सभा में बैठने वाले हों उन्हें पारिषद कहते हैं। **आत्मरक्ष** – जो देव अंगरक्षक के सदृश होते हैं उन्हें आत्मरक्ष कहते हैं। **लोकपाल** – जो देव कोतवाल के समान लोक का पालन करते हैं उन्हें लोकपाल कहते हैं। **अनीक** – जो देव पदाति आदि सात तरह की सेवा में विभक्त रहते हैं वे अनीक कहलाते हैं। **प्रकीर्णक** – जो देव नगरवासियों के समान हों उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। **आभियोग्य** – जो देव दासों के समान सवारी आदि के काम आवें वे आभियोग्य हैं। **किल्विषिक** – जो देव चाण्डालादिक की तरह नीच काम करने वाले हों उन्हें किल्विषिक कहते हैं।

'व्यंतर और ज्योतिषी देवों में दश भेदों में कमी'

त्रायस्त्रिंश–लोकपालवर्ज्या–व्यन्तरज्योतिष्काः ॥ 5 ॥

अर्थः– व्यंतर और ज्योतिषी देव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेद से रहित हैं।

'देवों में इन्द्रों की व्यवस्था'

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ 6 ॥

अर्थः– भवनवासी और व्यन्तरों के प्रत्येक भेद में दो–दो इन्द्र होते हैं। **भावार्थ** – भवनवासियों के दश भेदों में बीस और व्यन्तरों के आठ भेदों में सोलह इन्द्र होते हैं तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं।

'देवों के काम सेवन की विधि'

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ 7 ॥

अर्थः– ऐशान स्वर्ग पर्यन्त के देव अर्थात् भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और पहले और दूसरे स्वर्ग के देव मनुष्यों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं।

'शेष स्वर्गों के देवों में कामसेवन की विधि'

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥ 8 ॥

अर्थः- शेष स्वर्गों के देव, देवियों के स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनने से और मन के विचारने के कामसेवन करते हैं अर्थात् कामवासना शांत हो जाती है। तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव देवाँगनाओं के स्पर्श से, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्ग के देव देवियों के रूप देखने से, नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग के देव देवियों के शब्द सुनने से तथा तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देव, देवियों के मन में विचारने मात्र से तृप्त हो जाते हैं, उनकी कामेच्छा शांत हो जाती है।

'कल्पातीतों में मैथुन का निषेध'

परेऽप्रवीचाराः ॥ 9 ॥

अर्थः- सोलहवें स्वर्ग से आगे के देव कामसेवन से रहित होते हैं। उनके कामेच्छा ही उत्पन्न नहीं होती।

'भवनवासियों के दश भेद'

भवनवासिनो सुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीप दिक्कुमाराः ॥ 10 ॥

अर्थः- भवनवासी देवों के दश भेद हैं। असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार। **नोट** - इनके वेषभूषा और वार्तालाप वगैरह कुमार की तरह होते हैं। इससे इन्हें कुमार कहते हैं। ये देव भवनों में निवास करते हैं। इसलिए इन्हें भवनवासी कहते हैं।

'व्यन्तरदेवों के आठ भेद'

व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूतपिशाचाः ॥ 11 ॥

अर्थः- व्यन्तर देव-किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ तरह के होते हैं।

'ज्योतिषी देवों के पाँच भेद'

ज्योतिष्का:सूर्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ 12 ॥

अर्थः- ज्योतिषीदेव-सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और प्रकीर्णक तारों के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं। **नोट** - ये सब चमकीले होते हैं। इससे इन्हें ज्योतिष्क कहते हैं। ज्योतिषी देवों का निवास मध्यलोक के सम धरातल से 710 योजन की ऊँचाई से लेकर 900 योजन की ऊँचाई तक 110 योजन आकाश में है।

'ज्योतिषी देवों का गमन'

मेरुप्रदक्षिणा: नित्यगतयो नृलोके ॥ 13 ॥

अर्थः- ऊपर कहे हुए ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए हमेशा गमन करते रहते हैं। **नोट** - जम्बूद्वीप में 2, लवणसमुद्र में 4, धातकीखण्ड द्वीप में 12, कालोदधि में 42 और पुष्करार्ध में 72 सूर्य तथा इतने ही चन्द्रमा हैं।

'ज्योतिषी देवों से लाभ'

तत्कृत: कालविभाग: ॥ 14 ॥

अर्थः- घड़ी, घण्टा, दिन, रात आदि व्यवहार काल का विभाग उन्हीं गतिशील ज्योतिषी देवों के द्वारा किया जाता है। अर्थात् व्यवहार काल सूर्य, चन्द्रमा आदि की गति से जाना जाता है।

'मनुष्य लोक से बाहर ज्योतिषी देवों की स्थिति'

बहिरवस्थिता: ॥ 15 ॥

अर्थः-मनुष्य लोक-अढ़ाई द्वीप से बाहर के ज्योतिषी देव स्थिर हैं।

'वैमानिक देवों का वर्णन'

वैमानिका: ॥ 16 ॥

अर्थः- अब यहाँ से वैमानिक देवों का वर्णन शुरु होता है। **विमान** - जिसमें रहने वाले जीव विशेष पुण्यशाली माने गये हैं उसे विमान कहते हैं। विमान में पैदा होने वाले देवों को वैमानिक कहते हैं।

'वैमानिक देवों के भेद'

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ 17 ॥

अर्थः– वैमानिक देवों के दो भेद हैं। (1) कल्पोपपन्न और (2) कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदों की कल्पना होती है। ऐसे स्वर्गों को कल्प कहते हैं। उनमें जो पैदा हों उन्हें कल्पोपन्न कहते हैं और जो सोलहवें स्वर्ग से आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं।

'कल्पों का स्थिति क्रम'

उपर्युपरि ॥ 18 ॥

अर्थः– सोलह स्वर्गों के आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर ये सब विमान क्रम से ऊपर-ऊपर हैं।

'वैमानिक देवों के रहने का स्थान'

सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयो-र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ 19 ॥

अर्थः– सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्रार इन छह युगलों के बारह स्वर्गों में, आनत-प्राणत इन दो स्वर्गों में, आरण-अच्युत इन दो स्वर्गों में, नवग्रैवेयक विमानों में, नव अनुदिश विमानों में और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पाँच अनुत्तर विमानों में वैमानिक देव रहते हैं। **नोट** – **(1)** इस सूत्र में यद्यपि, अनुदिशविमानों का पाठ नहीं है तथापि "नवसु" इस पद से उनका ग्रहण कर लेना चाहिए। **(2) नव ग्रैवेयक**– सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, विशाल, सुमन, सौमन और प्रीतिकर ये नव ग्रैवेयक हैं। **(3) नव अनुदिश** – आदित्य, अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभास, अर्चिप्रभ, अर्चिर्मध्य, अर्चिरावर्त, अचिर्विशिष्ट ये नव अनुदिश हैं।

'वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर अधिकता'

स्थितिप्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥ 20 ॥

अर्थः- वैमानिक देव- आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञान विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर-ऊपर विमानों में अधिक-अधिक हैं।

'वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर हीनता'

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ 21 ॥

अर्थः- ऊपर-ऊपर के देव गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा हीन हैं। **नोट** - सोलहवें स्वर्ग से आगे के अपने विमान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते हैं।

'वैमानिक देवों में लेश्या का वर्णन'

पीतपद्मशुक्ल-लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ 22 ॥

अर्थः- दो युगलों में, तीन युगलों में तथा शेष समस्त विमानों में क्रम से पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है। **विशेषार्थ** - पहले और दूसरे स्वर्ग में पीतलेश्या, तीसरे और चौथे स्वर्ग में पीत और पद्मलेश्या, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्ग में पद्मलेश्या, नवमें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग में पद्म और शुक्ललेश्या तथा शेष आनतादि में शुक्ललेश्या है। उसमें भी अनुदिश और अनुत्तर 14 विमानों में परम शुक्ललेश्या होती है।

'कल्प संज्ञा कहाँ तक है'

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ 23 ॥

अर्थः- ग्रैवेयकों से पहले-पहले के 16 स्वर्ग कल्प कहलाते हैं। इनसे आगे के विमान कल्पातीत हैं। नव ग्रैवेयक आदि के देव एक समान वैभव के धारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं।

'लौकान्तिकों का लक्षण'

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ 24 ॥

अर्थः- ब्रह्मलोक (पाँचवाँ स्वर्ग) है आलय (निवास स्थान) जिनका ऐसे लौकांतिक देव हैं। **नोट** - ये देव ब्रह्मलोक के अन्त में रहते हैं अथवा एक भवावतारी होने से लोक (संसार) का अन्त (नाश) करने वाले होते हैं, इसलिए लौकांतिक कहलाते हैं। ये द्वादशांग के पाठी होते हैं, ब्रह्मचारी रहते हैं और तीर्थंकरों के सिर्फ तप कल्याणक में आते हैं। इन्हें देवर्षि भी कहते हैं।

'लौकांतिक देवों के नाम'

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ 25 ॥

अर्थः- (1) सारस्वत, (2) आदित्य, (3) वह्नि, (4) अरुण, (5) गर्दतोय, (6)तुषित, (7) अव्याबाध और (8) अरिष्ट। ये आठ लौकांतिक देव हैं। वे ब्रह्मलोक की ऐशान आदि आठ दिशाओं में रहते हैं। से सभी स्वतन्त्र हैं। किसी इन्द्र के आधीन नहीं हैं। सब समान हैं, इनमें कोई छोटा कोई बड़ा नहीं। विषयों से विरक्त रहते हैं। इसलिए इन्हें देवर्षि कहते हैं। अन्य देव इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं और जब तीर्थंकरों को वैराग्य होता है, उस समय उन्हें प्रतिबोधन करने के उद्देश्य से देव उनके पास जाते हैं।

'अनुदिश तथा अनुत्तर वासी देवों में अवतार का नियम'

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ 26 ॥

अर्थः-विजय,वैजयंत,जयंत,अपराजित तथा अनुदिश विमानों के अहमिन्द्र द्विचरमा होते हैं अर्थात् मनुष्यों के दो जन्म लेकर नियम से मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र एक भवावतारी होते हैं।

'तिर्यञ्च कौन हैं?'

औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ 27 ॥

अर्थः- उपपाद जन्म वाले देव, नारकी तथा मनुष्यों से अतिरिक्त जीव तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च समस्त संसार में व्याप्त हैं।

'भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन'

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता: ॥ 28 ॥

अर्थ:- भवनवासियों में असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष के छह कुमारों की आयु क्रम से 1 सागर, 3 पल्य, 2 1/2 पल्य, 2 पल्य और 1 1/2 पल्य है।

'सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु'

सौधर्मैशानयो: सागरोपमे अधिके ॥ 29 ॥

अर्थ:- सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की आयु दो सागर से कुछ अधिक है। **नोट** - यहाँ 'सागरोपमे' इस द्विवचनान्त प्रयोग से ही दो सागर अर्थ किया जाता है। यह अधिकता घातायुष्क जीवों की अपेक्षा है और वह अधिकता बारहवें स्वर्ग तक अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर होती है। **घातायुष्क** - जो मनुष्य या तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि विशुद्ध परिणामों से ऊपर के स्वर्गों की आयु को बांधकर पीछे संक्लेश परिणाम से आयु का घात कर लेता है उसे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

'सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु'

सानत्कुमारमाहेन्द्रयो: सप्त ॥ 30 ॥

अर्थ:- सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक है।

'ब्रह्म से अच्युत स्वर्ग तक के देवों की उत्कृष्ट आयु'

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ 31 ॥

अर्थ:- आगे के युगलों से 7 सागर से क्रमपूर्वक 3,7,9,11,13 और 15 सागर अधिक आयु है अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में 10 सागर से कुछ अधिक, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग में 14 सागर से कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में 16 सागर से कुछ अधिक, सतार और सहस्रार स्वर्ग में 18 सागर से कुछ अधिक, आनत और प्राणत स्वर्ग में 20 सागर तथा आरण और अच्युत स्वर्ग में 22 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। **नोट** - सूत्र में 'तु' शब्द होने के कारण अधिक शब्द का सम्बन्ध बारहवें स्वर्ग तक ही होता है क्योंकि घातायुष्क जीवों की उत्पत्ति यहाँ तक होती है।

'ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तरों में उत्कृष्ट आयु'

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥ 32॥

अर्थः- आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयकों में विजय आदि चार विमान तथा नव अनुदिशों में और सर्वार्थसिद्धि विमान में एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है अर्थात् पहले ग्रैवेयक में 23 सागर दूसरे में 24 सागर आदि अनुदिशों में 32 सागर और अनुत्तरों में 33 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। **नोट** - सूत्र में 'सर्वार्थसिद्धि' इस पद को विजयादि से पृथक् करने से सूचित होता है कि सर्वार्थसिद्धि में सिर्फ उत्कृष्ट स्थिति ही होती है, जघन्य नहीं।

'स्वर्गों में जघन्य आयु का वर्णन'

अपरा पल्योपममधिकम्॥ 33॥

अर्थः- सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

'परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा॥ 34॥'

अर्थः- पहले-पहले युगल की उत्कृष्ट आयु आगे-आगे के युगलों में जघन्य आयु है। जैसे - सौधर्म और ऐशान स्वर्ग की जो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागर की है वह सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में जघन्य आयु है। इसी क्रम से आगे जानना चाहिए। सर्वार्थसिद्धि में जघन्य आयु नहीं होती है।

'नारकियों की जघन्य आयु'

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥ 35॥

अर्थः- इसी प्रकार दूसरे आदि नरकों में भी नारकियों की जघन्य आयु है। अर्थात् पहले नरक की उत्कृष्ट आयु दूसरे नरक की जघन्य आयु है। इसी तरह समस्त नरकों में जानना चाहिए।

'प्रथम नरक की जघन्य आयु'

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्॥ 36॥

अर्थः- पहले नरक में नारकियों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है।

'भवनवासियों की जघन्य आयु'

भवनेषु च ॥ 37 ॥

अर्थः- भवनवासियों में जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है।

'व्यन्तरों की जघन्य आयु'

व्यन्तराणां च ॥ 38 ॥

अर्थः- व्यन्तर देवों की भी जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है।

'व्यन्तरों की उत्कृष्ट आयु'

परा पल्योपममधिकम् ॥ 39 ॥

अर्थः- व्यन्तरों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

'ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट आयु'

ज्योतिष्काणां च ॥ 40 ॥

अर्थः- ज्योतिषी देवों की भी उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

'ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु'

तदष्टभागोऽपरा ॥ 41 ॥

अर्थः- ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु उस एक पल्य के आठवें भाग है।

'लौकांतिक देवों की आयु'

लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ 42 ॥

अर्थः- समस्त लौकान्तिक देवों की जघन्य और उत्कृष्ट आयु आठ सागर प्रमाण है।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

पंचम अध्याय

'अजीवतत्त्व का वर्णन'

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ 1 ॥

अर्थः– धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार अजीव तथा बहुप्रदेशी हैं। **नोट** – इस सूत्र में बहुप्रदेशी नहीं होने से कालद्रव्य का ग्रहण नहीं किया है।

'द्रव्यों की गणना'

द्रव्याणि ॥ 2 ॥

अर्थः– उक्त चार पदार्थ द्रव्य हैं। द्रव्य का लक्षण आगे मूल–सूत्रों में कहा जावेगा।

जीवाश्च ॥ 3 ॥

अर्थः– जीव भी द्रव्य है। **नोट** – यहाँ 'जीवाः' इस बहुवचन से जीवद्रव्य के अनेक भेद सूचित होते हैं। उनके सिवाय 39वें सूत्र में कालद्रव्य का भी कथन होगा। इसलिए इन सबको मिलाने पर (1) जीवद्रव्य, (2) पुद्गलद्रव्य, (3) धर्मद्रव्य, (4) अधर्मद्रव्य, (5) आकाशद्रव्य और (6) कालद्रव्य, ये छह द्रव्य होते हैं। जो द्रव्य सत्ता रूप में होकर बहुप्रदेशी होता है उसे अस्तिकाय कहते हैं। वे कालद्रव्य को छोड़कर पाँच हैं।

'द्रव्यों की विशेषता'

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ 4 ॥

अर्थः– ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य नित्य, अवस्थित और पुद्गल को छोड़कर शेष 5 द्रव्य अरूपी हैं। कभी नष्ट नहीं होते, इसलिए नित्य हैं। अपनी 6 संख्या का उल्लंघन नहीं करते, इसलिए अवस्थित हैं और रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श से रहित हैं,इसलिए अरूपी हैं।

'पुद्गलद्रव्य अरूपी नहीं है'

रूपिणः पुद्गलाः ॥ 5 ॥

अर्थः- पुद्गलद्रव्य रूपी अर्थात् मूर्तिक है। **विशेष** - यद्यपि सूत्र में पुद्गल को रूपी बतलाया है पर साहचर्य से रस, गन्ध तथा स्पर्श का भी ग्रहण हो जाता है।

'द्रव्यों के स्वभेद की गणना'

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ 6 ॥

अर्थः- आकाश पर्यन्त एक-एक द्रव्य है अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य एक-एक हैं। जीवद्रव्य अनन्त हैं। पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं और कालद्रव्य असंख्यात (अणुरूप) हैं।

'धर्मादिक तीन द्रव्यों की निष्क्रियता'

निष्क्रियाणि च ॥ 7 ॥

अर्थः- धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य क्रिया रहित हैं। **क्रिया**- एक स्थान से दूसरे स्थान में प्राप्त होने को क्रिया कहते हैं। **नोट** - धर्म और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं तथा आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों जगह व्याप्त है, इसलिए अन्य क्षेत्र का अभाव होने से इनमें हलन-चलन रूप क्रिया नहीं होती है।

'धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य के प्रदेश'

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ 8 ॥

अर्थः- धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं। **प्रदेश** - जितने क्षेत्र को एक पुद्गल परमाणु रोकता है उतने क्षेत्र को एक प्रदेश कहते हैं। **नोट** - सब जीवद्रव्यों के अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं इसलिए सूत्र में एक-एक जीव का ग्रहण किया है।

'आकाशद्रव्य के प्रदेश'

आकाशस्यानन्ताः ॥ 9 ॥

अर्थः- आकाशद्रव्य के अनन्त प्रदेश हैं। परन्तु लोकाकाश के असंख्यात ही प्रदेश हैं।

'पुद्गलद्रव्य के प्रदेश'

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्॥ 10॥

अर्थः– पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं। **शंका**– जब लोकाकाश में असंख्यात ही प्रदेश हैं तब उसमें अनन्त प्रदेश वाले पुद्गल तथा शेष द्रव्य किस तरह रह सकेंगे? **समाधान**– पुद्गलद्रव्य में दो तरह का परिणमन होता है। एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल। जब उसमें सूक्ष्म परिणमन होता है, तब लोकाकाश के एक प्रदेश में भी अनन्त प्रदेश वाला पुद्गल स्कन्ध स्थान पा लेता है। उसके सिवाय द्रव्यों में एक दूसरे को अवगाहन देने का सामर्थ्य है, जिससे अल्पक्षेत्र में भी समस्त द्रव्यों के निवास में कोई बाधा नहीं होती।

'परमाणु के प्रदेश'

नाणोः॥ 11॥

अर्थः– पुद्गल परमाणु के दो आदिक प्रदेश (खण्ड) नहीं होते अर्थात् वह एक प्रदेशी ही है।

'समस्त द्रव्यों के रहने का स्थान'

लोकाकाशेऽवगाहः॥ 12॥

अर्थः– समस्त द्रव्यों का (अवगाह) स्थान लोकाकाश में है। **लोकाकाश** – आकाश के जितने हिस्से में जीव आदि छहों द्रव्य रहते हैं उतने हिस्से को लोकाकाश कहते हैं। शेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

'धर्माधर्मद्रव्य के रहने का स्थान'

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने॥ 13॥

अर्थः– धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह तिल में तैल की तरह समस्त लोकाकाश में हैं।

'पुद्गल के रहने का स्थान'

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्॥ 14॥

अर्थः- पुद्‌गलद्रव्य का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश को लेकर संख्यात, असंख्यात प्रदेशों में विभाग करने योग्य है।

'एक जीव के रहने का स्थान'

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ 15 ॥

अर्थः- जीवों का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक क्षेत्र में है। **शंका** - जबकि एक जीवद्रव्य असंख्यात प्रदेशी है तब वह लोक के असंख्यातवें भाग में कैसे रह सकता है?

'समाधान'

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ 16 ॥

अर्थः- दीपक के प्रकाश की तरह प्रदेशों के संकोच और विस्तार के कारण जीव लोकाकाश के असंख्यातवें आदि भाग में रहता है अर्थात् जिस तरह एक बड़े मकान में दीपक के रख देने से उसका प्रकाश समस्त मकान में फैल जाता है और उसी दीपक को एक छोटे बर्तन के भीतर रख देने से उसका प्रकाश उसी में संकुचित होकर रह जाता है, उसी तरह जीव भी जितना बड़ा या छोटा शरीर पाता है। उसमें उतना ही विस्तृत या संकुचित होकर रह जाता है। परन्तु केवली समुद्‌घात अवस्था में सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है और सिद्ध अवस्था में अंतिम शरीर से कुछ कम रहता है। **नोट** - मूल शरीर को छोड़कर आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को समुद्‌घात कहते हैं।

'धर्म और अधर्मद्रव्य का कार्य या लक्षण'

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ 17 ॥

अर्थः- स्वयं ही गमन तथा स्थिति को प्राप्त हुए जीव और पुद्‌गलों को गति तथा स्थिति में सहायता देना क्रम से धर्म और अधर्मद्रव्य का उपकार है। **भावार्थ** - जो जीव और पुद्‌गलों को चलने में सहायक हो उसे धर्मद्रव्य तथा जो ठहरने में सहायक हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

'आकाशद्रव्य का उपकार'

आकाशस्यावगाहः ॥ 18 ॥

अर्थः– समस्त द्रव्यों को अवकाश देना आकाश द्रव्य का उपकार है। **विशेष** – जो सब द्रव्यों को ठहरने के लिए स्थान देवे उसे आकाशद्रव्य कहते हैं।

'पुद्‌गलद्रव्य का उपकार'

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्‌गलानाम् ॥ 19 ॥

अर्थः– औदारिक आदि शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छवास ये पुद्‌गलद्रव्य के उपकार हैं अर्थात् शरीरादि की रचना पुद्‌गल से ही होती है।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ 20 ॥

अर्थः– इन्द्रियजन्य सुख–दुःख, जीवन और मरण ये भी पुद्‌गलद्रव्य के उपकार हैं। **नोट** – इस सूत्र में जो उपग्रह शब्द का ग्रहण किया है उससे सूचित होता है कि पुद्‌गल परस्पर में एक दूसरे का उपकार करते हैं। जैसे– राख कांसे का, पानी लोहे का, साबुन कपड़े आदि। यहाँ उपकार शब्द का अर्थ निमित्त मात्र ही समझना चाहिए अन्यथा दुःख/मरण आदि उपकार नहीं कहलावेंगे।

'जीवों का उपकार'

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ 21 ॥

अर्थः– जीवों का परस्पर उपकार है अर्थात् जीव कारण वश एक दूसरे का उपकार करते हैं। जैसे– स्वामी सेवक का, सेवक स्वामी का, गुरु शिष्य का और शिष्य गुरु का।

'कालद्रव्य का उपकार'

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ 22 ॥

अर्थः– वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये कालद्रव्य के उपकार हैं। **वर्तना** – जो द्रव्यों को बर्तावे उसे वर्तना कहते हैं। **परिणाम** –

एक धर्म के त्यागरूप और दूसरे धर्म के ग्रहणरूप जो पर्याय है उसे परिणाम कहते हैं। जैसे- जीवों में ज्ञानादि और पुद्गलों में वर्णादि। **क्रिया**- हलन-चलन रूप परिणति को क्रिया कहते हैं। **परत्वापरत्व** - छोटे-बड़े व्यवहार को परत्वापरत्व कहते हैं। जैसे - 25 वर्ष के मनुष्य को बड़ा और 21 वर्ष के मनुष्य को उसकी अपेक्षा छोटा कहते हैं। ये सब कालद्रव्य की सहायता से होते हैं। इसलिए उन्हें देखकर अमूर्तिक निश्चय कालद्रव्य का अनुमान कर लेना चाहिए।

'पुद्गलद्रव्य का लक्षण'

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ 23 ॥

अर्थः- स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण वाले पुद्गल हैं। **विशेष** - ये चारों गुण हर एक पुद्गल में एक साथ रहते हैं। इनके उत्तर भेद इस तरह हैं। स्पर्श के आठ भेद - कोमल, कठोर, हल्का, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा)। रस के पाँच भेद- खट्टा, मीठा, कडुआ, कषायला और चरपरा। गन्ध के दो भेद- सुगन्ध और दुर्गन्ध। वर्ण के पाँच भेद - काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। ये बीस पुद्गल के गुण कहलाते हैं क्योंकि हमेशा उसी में रहते हैं।

'पुद्गल की पर्याय'

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥ 24 ॥

अर्थः- उक्त लक्षणवाले पुद्गल - शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार), भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत सहित हैं अर्थात् ये पुद्गल की पर्यायें हैं।

'पुद्गल के भेद'

अणवः स्कन्धाश्च ॥ 25 ॥

अर्थः- पुद्गलद्रव्य, अणु और स्कन्ध इस प्रकार दो भेदरूप हैं। **अणु** - जिसका दूसरा विभाग न हो सके ऐसे पुद्गल को अणु कहते हैं। **स्कन्ध** - दो, तीन, संख्यात, असंख्यात तथा अनंत परमाणुओं के पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं।

'स्कन्धों की उत्पत्ति का कारण'

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ 26 ॥

अर्थ:- पुद्‌गलद्रव्य के स्कन्ध भेद /बिछुड़ने, संघात/ मिलने और भेद-संघात दोनों से उत्पन्न होते हैं। जैसे - 100 परमाणु वाला स्कन्ध है उसमें से 10परमाणु बिखर जाने से 90 परमाणु वाला स्कन्ध बन जाता है। उसमें 10 परमाणु मिल जाने से 110 परमाणु वाला स्कन्ध बन जाता है और उसमें एक साथ दश परमाणुओं के बिछुड़ने और 15 परमाणुओं के मिल जाने से 105 परमाणु वाला स्कन्ध बन जाता है। **नोट** - सूत्र में द्विवचन के स्थान में जो बहुवचन रूप प्रयोग किया है उसी से यह तीसरा अर्थ व्यक्त हुआ है।

'अणु की उत्पत्ति का कारण'

भेदादणुः ॥ 27 ॥

अर्थ:- अणु की उत्पत्ति स्कन्धों के भेद (टूटने) से होती है।

'चाक्षुष (देखने योग्य स्थूल) स्कन्ध की उत्पत्ति'

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ 28 ॥

अर्थ:- चक्षु इन्द्रिय से देखने योग्य स्कन्ध भेद और संघात दोनों से उत्पन्न होते हैं। अकेले भेद से उत्पन्न नहीं हो सकता।

'द्रव्य का लक्षण'

सद् द्रव्यलक्षणम् ॥ 29 ॥

अर्थ:- द्रव्य का लक्षण सत् (अस्तित्व) है।

'सत् का लक्षण'

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ 30 ॥

अर्थ:- जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित हो, वह सत् है। **उत्पाद** - द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं। जैसे- मिट्‌टी की पिण्ड पर्याय से घट का उत्पाद। **व्यय** - पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं। जैसे - घट पर्याय उत्पन्न होने पर पिण्ड पर्याय का

व्यय। **ध्रौव्य** - दोनों पर्यायों में मौजूद रहने को ध्रौव्य कहते हैं। जैसे - पिण्ड तथा घट पर्याय में मिट्टी का बना रहना।

'नित्य का लक्षण'

तद्भावाव्ययं नित्यम्॥ 31॥

अर्थ:- जो द्रव्य तद्भाव रूप से अव्यय है, वही नित्य है। **भावार्थ**- प्रत्यभिज्ञान के हेतु को तद्भाव कहते हैं। जिस द्रव्य को पहले समय में देखने के बाद दूसरे आदि समयों में देखने पर "यह वही है जिसे पहले देखा था" ऐसा जोड़रूप ज्ञान हो, वह द्रव्य नित्य है। परन्तु यह नित्यता पदार्थ में सामान्य स्वरूप की अपेक्षा होती है, विशेष अर्थात् पर्याय की अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य हैं। इसलिए संसार के सब पदार्थ नित्यानित्यरूप है।

'एक वस्तु में दो विरुद्ध धर्म सिद्ध करने की रीति'

अर्पितानर्पितसिद्धेः॥ 32॥

अर्थ:- विवक्षित और अविवक्षित रूप से एक ही द्रव्य में नाना धर्म रहते हैं। वक्ता जिस धर्म को कहने की इच्छा करता है उसे अर्पित-विवक्षित कहते हैं और वक्ता उस समय जिस धर्म को नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित-अविवक्षित है। जैसे - वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नय से वस्तु का प्रतिपादन करेगा तो नित्यता विवक्षित कहलावेगी और यदि पर्यायार्थिक नय से प्रतिपादन करेगा तो अनित्यता विवक्षित है, जिस समय किसी पदार्थ को द्रव्य की अपेक्षा नित्य कहा जा रहा है उसी समय वह पदार्थ पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी है। पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदि की तरह एक ही पदार्थ पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी हैं। पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदि की तरह एक ही पदार्थ में अनेक धर्म रहने पर भी विरोध नहीं आता है।

'परमाणुओं के बन्ध होने में कारण'

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः॥ 33॥

अर्थः– चिकनाई और रूखापन के निमित्त से दो तीन आदि परमाणुओं का बन्ध होता है। **बन्ध** – अनेक पदार्थों में एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध विशेष को बन्ध कहते हैं।

'एक गुण वाले परमाणुओं में बन्ध का अभाव'

न जघन्यगुणानाम्॥ 34॥

अर्थः– जघन्य गुण सहित परमाणुओं का बन्ध नहीं होता है। **गुण**– स्निग्धता और रूक्षता के अविभागी प्रतिच्छेदों (जिसका टुकड़ा न हो सके ऐसे अंशों) को गुण कहते हैं। **जघन्य गुण सहित परमाणु** – जिस परमाणु में स्निग्धता और रूक्षता का एक अविभागी अंश हो उसे जघन्य गुण सहित परमाणु कहते हैं।

'बन्ध के अभाव का नियम'

गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ 35॥

अर्थः– गुणों की समानता होने पर समान जाति वाले परमाणु के साथ बन्ध नहीं होता। जैसे– दो गुण वाले स्निग्ध परमाणु का दूसरे दो गुण वाले स्निग्ध परमाणु के साथ बन्ध नहीं होता। **नोट**– सूत्र में ''सदृशानाम्'' इस पद के ग्रहण से प्रकट होता है कि गुणों की विषमता में समान जाति वाले अथवा भिन्न जाति वाले पुद्गलों का बन्ध हो जाता है।

'बन्ध किनका होता है?'

द्व्यधिकादिगुणानां तु॥ 36॥

अर्थः– किन्तु दो अधिक गुण वालों के साथ ही बन्ध होता है अर्थात् बन्ध तभी होगा जब एक परमाणु से दूसरे परमाणु में 2 अधिक गुण होंगे। जैसे – दो गुण वाले परमाणु का चार गुण वाले परमाणु के साथ बन्ध होगा। इससे अधिक व कम गुण वाले के साथ नहीं होगा। यह बन्ध स्निग्ध–स्निग्ध का, रूक्ष–रूक्ष का, स्निग्ध और रूक्ष का भी होता है।

'बन्ध होने पर होने वाली अवस्था'

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च॥ 37॥

अर्थः– बन्धरूप अवस्था में अधिक गुण वाले परमाणुओं को अपने रूप परिणमाने वाले होते हैं। जैसे– गीला गुड़ अपने साथ बन्ध को प्राप्त हुए रज को गुड़रूप परिणमा लेता है।

'द्रव्य का लक्षण'

गुणपर्ययवद् द्रव्यम्॥ 38॥

अर्थः– जिसमें गुण और पर्याय पाई जावे उसे द्रव्य कहते हैं। **गुण**– द्रव्य की अनेक पर्याय पलटते रहने पर भी जो द्रव्य से कभी पृथक् न हो, निरन्तर द्रव्य के साथ रहे, उसे गुण कहते हैं। जैसे– जीव के ज्ञान आदि, पुद्गल के रूप इत्यादि। **पर्याय** – क्रम से होने वाली वस्तु की विशेषता को पर्याय कहते हैं। जैसे– जीव की नर, नारकादि।

'काल भी द्रव्य है'

कालश्च॥ 39॥

अर्थः– काल भी द्रव्य है, क्योंकि यह भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा गुण–पर्यायों से सहित है। **नोट** – यह कालद्रव्य रत्नों की राशि की तरह एक दूसरे से पृथक् रहते हुए लोकाकाश के समस्त प्रदेशों पर स्थित है। यह एक प्रदेशी और अमूर्तिक है।

'कालद्रव्य की विशेषता'

सोऽनन्तसमयः॥ 40॥

अर्थः– कालद्रव्य अनन्त समयवाला है। यद्यपि वर्तमान काल एक समय मात्र ही है तथापि भूत भविष्यत् की अपेक्षा अनंत समय वाला है। **समय** – कालद्रव्य के सबसे छोटे हिस्से को समय कहते हैं। मन्दगति से चलने वाला पुद्गल परमाणु आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर जितने काल में पहुँचता है उतना काल एक समय है। इन समयों के समूह से ही आवलि, घण्टा, आदि व्यवहार काल होता है। व्यवहार काल निश्चय काल द्रव्य की पर्याय है। **निश्चय काल द्रव्य** – लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर रत्नों की राशि की तरह जो स्थित है उसे निश्चय काल द्रव्य कहते हैं। वर्तना उसी का कार्य है।

'गुण का लक्षण'

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ 41 ॥

अर्थः- जो द्रव्य के आश्रय हों और स्वयं गुणों से रहित हों, वे गुण कहलाते हैं। जैसे - जीव के ज्ञान आदि। ये जीवद्रव्य के आश्रय रहते हैं तथा उनमें कोई दूसरा गुण नहीं रहता।

'पर्याय का लक्षण'

तद्भावः परिणामः ॥ 42 ॥

अर्थः- जीवादि द्रव्य जिस रूप हैं उनके उसी रूप रहने को परिणाम या पर्याय कहते हैं। जैसे-जीव की नर-नरकादि पर्याय।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः ॥ 5 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

षष्ठ अध्याय

'आस्रवतत्त्व का वर्णन योग का स्वरूप तथा भेद'

कायवाङ्मनः कर्म योगः ॥ 1 ॥

अर्थः– काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। अर्थात् काय, वचन और मन के द्वारा आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्द (हलन-चलन) होता है, उसे योग कहते हैं। योग के तीन भेद हैं :– **मनोयोग** – मन की निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन–चलन होता है उसे मनोयोग कहते हैं। **वचनयोग** – वचन के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्द होता है, उसे वचनयोग कहते हैं। **काययोग**– काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्द होता है, उसे काययोग कहते हैं। इन तीनों योगों की उत्पत्ति में वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम कारण है।

'आस्रव का स्वरूप'

स आस्रवः ॥ 2 ॥

अर्थः– वह तीन प्रकार का योग ही आस्रव है। जिस प्रकार कुएँ के भीतर पानी आने में झिरें कारण होती हैं। उसी प्रकार आत्मा में कर्म आने में योग कारण है। कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। **नोट** – यद्यपि योग आस्रव के होने में कारण है तथापि सूत्र में कारण में कार्य का उपचार कर उसे आस्रवरूप कह दिया है। जैसे प्राणों की स्थिति में कारण होने से अन्न ही को प्राण कह देते हैं।

'योग के निमित्त से आस्रव के भेद'

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ 3 ॥

अर्थः– शुभयोग पुण्यकर्म के आस्रव का और अशुभयोग पापकर्म के आस्रव का कारण है। **शुभयोग** – शुभ परिणामों से रचे हुए योग को शुभयोग कहते हैं। जैसे – अरहन्त की भक्ति करना, जीवों की रक्षा करना आदि। **अशुभयोग** – अशुभ परिणामों से रचे हुए योग को अशुभयोग

कहते हैं। जैसे – जीवों की हिंसा करना, झूठ बोलना आदि। **पुण्य** – जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। **पाप** – जो आत्मा को अच्छे कामों से बचावे–दूर करे उसे पाप कहते हैं।

'स्वामी की अपेक्षा आस्रव के भेद'

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ 4 ॥

अर्थः– वह योग कषाय सहित जीवों के साम्परायिक आस्रव और कषाय रहित जीवों के ईर्यापथ आस्रव का कारण है। **कषाय** – जो आत्मा को कसे अर्थात् चारों गतियों में भटका कर दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं। जैसे – क्रोध, मान, माया, लोभ। **साम्परायिक आस्रव** – जिस आस्रव का संसार ही प्रयोजन है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं। **ईर्यापथ आस्रव** – स्थिति और अनुभाग रहित कर्मों के आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। **नोट** – ईर्यापथ आस्रव 11वें से 13वें गुणस्थान तक के जीवों के होता है और उसके पहले गुणस्थानों में साम्परायिक आस्रव होता है। 14वें गुणस्थान में आस्रव का सर्वथा अभाव हो जाता है।

'साम्परायिक आस्रव के भेद'

इन्द्रिय–कषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुः पञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ 5 ॥

अर्थः– स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ, क्रोधादि चार कषाय, हिंसादि पाँच अव्रत और सम्यक्त्व आदि पच्चीस क्रियाएँ, इस तरह साम्परायिक आस्रव के 39 भेद हैं। अर्थात् इन सब 39 भेदों के द्वारा साम्परायिक कर्म का आस्रव होता है। पच्चीस क्रियाएँ – **(1) सम्यक्त्व क्रिया** – सम्यक्त्व के बढ़ाने वाली क्रिया को सम्यक्त्व क्रिया कहते हैं। जैसे– देवपूजन आदि। **(2) मिथ्यात्व क्रिया** – मिथ्यात्व को बढ़ाने वाली क्रिया को मिथ्यात्व क्रिया कहते हैं। जैसे – कुदेव पूजन आदि। **(3) प्रयोग क्रिया** – शरीर आदि से गमनागमन रूप प्रवृत्ति करना सो प्रयोग क्रिया है। **(4) समादान क्रिया** – संयमी का असंयम के सन्मुख होना, सो समादान क्रिया

है।(5) **ईर्यापथ क्रिया** – गमन के लिए जो क्रिया होती है, उसे ईर्यापथ क्रिया कहते हैं।(6) **प्रादोषिकी क्रिया** – क्रोध के वश से जो क्रिया हो, वह प्रादोषिकी क्रिया है।(7) **कायिकी क्रिया** – दुष्टता पूर्वक उद्यम करना सो कायिकी क्रिया है। (8) **अधिकरण क्रिया** – हिंसा के उपकरण तलवार आदि का ग्रहण करना सो अधिकरण क्रिया है।(9) **पारितापिकी क्रिया** – जीवों को दुःख उत्पन्न करने वाली क्रिया को पारितापिकी क्रिया कहते हैं।(10) **प्राणातिपातिकी क्रिया** – आयु,इन्द्रिय आदि प्राणों का वियोग करना सो प्राणातिपातिकी क्रिया है।(11) **दर्शन क्रिया** – राग के वशीभूत होकर मनोहर रूप देखना, सो दर्शन क्रिया है। (12) **स्पर्शन क्रिया** – राग के वशीभूत होकर वस्तु का स्पर्श करना स्पर्शन क्रिया है। (13) **प्रात्ययिकी क्रिया** – विषयों के नये–नये कारण मिलाना प्रात्ययिकी क्रिया है। (14) **समन्तानुपात क्रिया** – स्त्री, पुरुष अथवा पशुओं के बैठने तथा सोने आदि के स्थान में मलमूत्रादि क्षेपण करना, समन्तानुपात क्रिया है। (15) **अनाभोग क्रिया** – बिना देखी बिना शोधी हुई भूमि पर बैठना अनाभोग क्रिया है।(16) **स्वहस्त क्रिया** – लोभ के वशीभूत हो दूसरे के द्वारा करने योग्य क्रिया को स्वयं करना स्वहस्त क्रिया है। (17) **निसर्ग क्रिया** – पाप को उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति को भला समझना निसर्ग क्रिया है। (18) **विदारण क्रिया** – पर के लिए हुए पापों का प्रकाशित करना विवरण क्रिया है। (19) **आज्ञाव्यापादिकी क्रिया** – चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से शास्त्रोक्त आवश्यकादि क्रियाओं को करने में असमर्थ होकर अन्यथा निरूपण करना सो आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।(20) **अनाकांक्षा क्रिया** – प्रमाद अथवा अज्ञान के वशीभूत होकर आगमोक्त क्रियाओं में अनादर करना अनाकांक्षा क्रिया है। (21) **प्रारम्भ क्रिया** – छेदन, भेदन आदि क्रियाओं में स्वयं प्रवृत्त होना तथा अन्य को प्रवृत्त देखकर हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है। (22) **पारिग्राहिकी क्रिया** – परिग्रह की रक्षा में प्रवृत्त होना पारिग्राहिकी

क्रिया है। **(23) माया क्रिया** – ज्ञान दर्शन आदि में कपट रूप प्रवृत्ति करना माया क्रिया है। **(24) मिथ्यादर्शन क्रिया** – प्रशंसा आदि से किसी को मिथ्यात्व रूप परिणति में दृढ़ करना मिथ्यादर्शन क्रिया है। **(25) अप्रत्याख्यान क्रिया** – चारित्रमोहनीय के उदय से त्यागरूप प्रवृत्ति नहीं होना अप्रत्याख्यान क्रिया है।

'आस्रव की विशेषता में कारण'

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ 6 ॥

अर्थः– तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य की विशेषता से आस्रव में हीनाधिकता होती है। **तीव्रभाव** – अत्यन्त बड़े हुए, क्रोधादि के द्वारा जो तीव्र रूप भाव होते हैं उनको तीव्रभाव कहते हैं। **मन्दभाव** – कषायों की मन्दता से जो भाव होते हैं उन्हें मन्दभाव कहते हैं। ज्ञातभाव – यह प्राणी मारने के योग्य है इस तरह जान कर प्रवृत्त होने को ज्ञातभाव कहते हैं। **अज्ञातभाव** – प्रमाद अथवा अज्ञान से प्रवृत्ति करने को अज्ञातभाव कहते हैं। **अधिकरण** – जिसके आश्रय अर्थ रहे उसे अधिकरण कहते हैं। **वीर्य** – द्रव्य की स्वशक्ति विशेष को वीर्य कहते हैं।

'अधिकरण के भेद'

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ 7 ॥

अर्थः– अधिकरण के दो भेद हैं– (1) जीव और (2) अजीव। अर्थात् आस्रव जीव और अजीव दोनों के आश्रय हैं।

'जीवाधिकरण के भेद'

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोग–कृतकारितानुमत–कषायविशेषैस्त्रिस्त्रि–स्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ 8 ॥

अर्थः– आदि का जीवाधिकरण आस्रव–संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन, वचन, कायरूप तीन योग, कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोधादि चार कषायों की विशेषता से 108 भेद रूप है। **विशेष** – संरम्भादि तीनों

में तीन योगों का गुणा करने से 9 भेद हुए। इन 9 भेदों में कृत आदि तीन को गुणा करने से 27 भेद हुए और इन 27 भेदों में 4 कषाय को गुणा करने पर कुल 108 भेद हुए। **संरम्भ** – हिंसादि पापों के करने का मन में विचार करना संरम्भ है। **समारम्भ** – हिंसादि पापों के कारणों का अभ्यास करना समारंभ है। **आरंभ**– किसी कार्य को प्रारंभ करना आरंभ है। **कृत** – स्वयं करना कृत है। **कारित** – दूसरे से कराना कारित है। **अनुमत** – दूसरे के द्वारा किए गए कार्य को भला समझना अनुमत है।

'अजीवाधिकरण के भेद'

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्॥ 9॥

अर्थः– पर अर्थात् अजीवाधिकरण आस्रव–दो प्रकार की निर्वर्तना, चार प्रकार का निक्षेप, दो प्रकार का संयोग और तीन प्रकार का निसर्ग, इस तरह 11 भेद वाला है। **निर्वर्तना** – रचना करने को निर्वर्तना कहते हैं। इसके दो भेद हैं– (1) मूलगुण निर्वर्तना और (2) उत्तरगुण निर्वर्तना। **मूलगुण निर्वर्तना** – शरीर मन तथा श्वासोच्छ्वास की रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है। **उत्तरगुणनिर्वर्तना** – काष्ठ, मिट्टी आदि से चित्रादि की रचना करना उत्तरगुण निर्वर्तना है। **निक्षेप** – वस्तु के रखने को निक्षेप कहते हैं। इसके चार भेद हैं– अप्रत्यवेक्षित निक्षेप, दुःप्रमृष्ट निक्षेप, सहसा निक्षेप और अनाभोग निक्षेप। **अप्रत्यवेक्षित निक्षेप** – बिना देखे किसी वस्तु को रखना अप्रत्यवेक्षित निक्षेप है। **दुःप्रमृष्ट निक्षेप** – यत्नाचार रहित होकर रखने को दुःप्रमृष्ट निक्षेप कहते हैं। **सहसा निक्षेप** – शीघ्रता से रखना सहसा निक्षेप है। **अनाभोग निक्षेप** – किसी वस्तु को योग्य स्थानों में न रखकर बिना देखे ही यहाँ–वहाँ रख देना अनाभोग निक्षेप है। **संयोग** – मिला देने का नाम संयोग है। इसके दो भेद हैं – भक्तपान संयोग और उपकरण संयोग। **भक्तपान संयोग** – आहार–पानी को दूसरे आहार–पानी में मिलाना भक्तपान संयोग और **उपकरण संयोग**– कमण्डलु आदि उपकरणों को दूसरे की पीछी आदि से पोंछना उपकरण संयोग है। **निसर्ग**–

प्रवर्तन को निसर्ग कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। कायनिसर्ग, वाकनिसर्ग और मनोनिसर्ग। काय को प्रवर्तना, वचनों को प्रवर्तना और मन को प्रवर्तना ही काय, वचन और मनोनिसर्ग है।

'ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव'

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥10॥

अर्थः- ज्ञान-दर्शन के विषय में किए गए प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्म के आस्रव हैं। **प्रदोष** - किसी धर्मात्मा के द्वारा की गई तत्त्वज्ञान की प्रशंसा का नहीं सुहाना और ईर्ष्या करना प्रदोष है। **निह्नव**- जानते हुए भी किसी कारण से ज्ञान को छिपाना निह्नव है। **मात्सर्य** - अपने को शास्त्रज्ञान होने पर भी दूसरे को इसलिए नहीं बताना कि यदि यह जान जावेगा तो मेरे बराबर हो जावेगा; मात्सर्य है। **अन्तराय** - किसी के ज्ञानाभ्यास में विघ्न डालना अन्तराय है। **आसादन**- दूसरे के द्वारा प्रकाशित होने योग्य ज्ञान को रोक देना आसादन है। **उपघात**- सच्चे ज्ञान में दोष लगाना उपघात है।

'असातावेदनीय कर्म के आस्रव'

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥11॥

अर्थः- निज, पर तथा दोनों के विषय में स्थित दुःखः, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातावेदनीय के आस्रव हैं। **दुःख** - पीड़ा रूप परिणाम विशेष को दुःख कहते हैं। **शोक** - अपना उपकार करने वाले पदार्थ का वियोग होने से विकलता होना शोक है। **ताप** - संसार में अपनी निन्दा आदि के हो जाने से पश्चात्ताप करना ताप है। **आक्रन्दन**- पश्चाताप से अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन है। **वध** - आयु आदि प्राणों का वियोग करना वध है। **परिदेवन** - संक्लेश परिणामों का अवलम्बन कर इस तरह रोना कि सुनने वालों के हृदय में दया उत्पन्न हो जावे सो परिदेवन है। **नोट** - यद्यपि शोक आदि दुःख के ही भेद हैं तथापि दुःख की जातियाँ बतलाने के लिए सबका ग्रहण किया है।

'सातावेदनीय कर्म का आस्रव'

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य॥12॥

अर्थः- भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि, योग, क्षान्ति और शौच तथा अर्हद्भक्ति आदि ये साता वेदनीय के आस्रव हैं। **भूतव्रत्यनुकम्पा** - भूत/संसार के समस्त प्राणी और व्रती/अणुव्रत या महाव्रतधारी जीवों पर दया करना सो भूतव्रत्यनुकम्पा है। **दान** - निज और पर के उपकार योग्य वस्तु के देने को दान कहते हैं। **सरागसंयामादि** - पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों से रिक्त होने से तथा छह काय के जीवों की हिंसा न करने को संयम कहते हैं और रागसहित संयम को सरागसंयम कहते हैं। **नोट** - यहाँ आदि शब्द से संयामासंयम (श्रावक के व्रत) अकाम निर्जरा (बन्दीखाने आदि में संक्लेशता रहित भोगोपभोग का त्याग करना) और बालतप (मिथ्यादर्शन सहित तपस्या करना) का भी ग्रहण होता है। **योग** - इन सबको अच्छी तरह धारण करना योग कहलाता है। **क्षान्ति** - क्रोधादि कषाय के अभाव को क्षांति कहते हैं। **शौच** - लोभ का त्याग करना शौच है। **नोट** - इति शब्द से अर्हद्भक्ति, मुनियों की वैयावृत्ति आदि का ग्रहण करना चाहिए।

'दर्शनमोहनीय का आस्रव'

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य॥ 13 ॥

अर्थः- केवली, श्रुत (शास्त्र), संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका), धर्म और देव इनका अवर्णवाद करना दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है। **अवर्णवाद** - गुणवानों को झूठ दोष लगाना, सो अवर्णवाद है। **केवली का अवर्णवाद** - केवली ग्रासाहार करके जीवित रहते हैं इत्यादि सो केवली का अवर्णवाद है। **श्रुत का अवर्णवाद** - शास्त्रों में मांस भक्षण करना आदि लिखा है ऐसा कहना सो श्रुत का अवर्णवाद है। **संघ का अवर्णवाद** - ये शूद्र हैं, मलिन हैं, नग्न हैं इत्यादि कहना सो संघ का अवर्णवाद है। **धर्म का अवर्णवाद** - जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए धर्म

में कुछ भी गुण नहीं है। उसके सेवन करने वाले असुर होवेंगे, इत्यादि कहना धर्म का अवर्णवाद है। **देव का अवर्णवाद** - देव मदिरा पीते हैं, मांस खाते हैं, जीवों की बलि में प्रसन्न होते हैं आदि कहना देव का अवर्णवाद है।

'चारित्रमोहनीय का आस्रव'

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ 14 ॥

अर्थः- कषाय के उदय से होने वाले तीव्र परिणाम चारित्रमोहनीय के आस्रव हैं।

नरक आयु का आस्रव

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ 15 ॥

अर्थः- बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह का होना नरक आयु का आस्रव है।

'तिर्यञ्च आयु का आस्रव'

माया तैर्यग्योनस्य ॥ 16 ॥

अर्थः- माया (छलकपट) तिर्यञ्च आयु का आस्रव है।

'मनुष्य आयु का आस्रव'

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ 17 ॥

अर्थः- थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह का होना मनुष्य आयु का आस्रव है।

स्वभावमार्दवं च ॥ 18 ॥

अर्थः- स्वभाव से ही सरल परिणामी होना भी मनुष्य आयु का आस्रव है। **नोट** - इस सूत्र को पृथक लिखने का आशय यह है कि इस सूत्र में बताई हुई बातें देवायु के आस्रव में भी कारण हैं।

'चारों आयुओं का आस्रव'

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ 19 ॥

अर्थः- दिग्व्रतादि 7 शील और अहिंसादि पाँच व्रतों का अभाव भी समस्त आयुओं का आस्रव है। **नोट** - शील और व्रत का अभाव रहते हुए जब कषायों में अत्यन्त तीव्रता और अत्यन्त मन्दता होती है तभी वे क्रम से चारों आयुओं के आस्रव के कारण होते हैं।

'देवायु का आस्रव'

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ 20 ॥

अर्थः- सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देव आयु के आस्रव हैं।

सम्यक्त्वं च ॥ 21 ॥

अर्थः- सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्म का आस्रव है। **नोट** - (1) इस सूत्र को पृथक् लिखने का प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्व अवस्था में वैमानिक देवों की ही आयु का आस्रव है। (2) यद्यपि सम्यग्दर्शन किसी भी कर्म के बन्ध में कारण नहीं है तथापि सम्यग्दर्शन की अवस्था में जो रागांश पाया जाता है उसी से बन्ध होता है। इसी तरह सरागसंयम, संयमासंयम आदि के विषय में भी जानना चाहिए।

'अशुभनाम कर्म का आस्रव'

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ 22 ॥

अर्थः- योगों की कुटिलता और विसंवादन - अन्यथा प्रवृत्ति करना अशुभनाम कर्म के आस्रव हैं।

'शुभनाम कर्म का आस्रव'

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ 23 ॥

अर्थः- योगवक्रता और विसंवादन से विपरीत अर्थात् योगों की सरलता और अन्यथा प्रवृत्ति का अभाव ये शुभनाम कर्म के आस्रव हैं।

'तीर्थंकर-नामकर्म का आस्रव'

दर्शनविशुद्धि-र्विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग-

संवेगौ-शक्तितस्त्यागतपसी-साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग-प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ 24 ॥

अर्थः- **(1) दर्शनविशुद्धि** - सम्यग्दर्शन के दोष हटाना। **(2) विनयसम्पन्नता** - गुणों का, गुरुओं का और गुण गुरुओं का आदर सत्कार, करना। **(3) शीलव्रतेष्वनतिचार** - सात शीलों और पाँच व्रतों के अतिचार (दोष) हटाना। **(4) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग** - निरन्तर ज्ञानाभ्यास में प्रवृत्त रहना। **(5) संवेग** - संसार के दुःखों से भयभीत रहना। **(6) शक्तितस्त्याग** - यथाशक्ति दान देना। **(7) शक्तितस्तप** - यथाशक्ति उपवासादि तप करना। **(8) साधुसमाधि** - दिगम्बर साधु के तप में उपस्थित विघ्न को दूर कर उनके संयम की रक्षा करना। **(9) वैयावृत्यकरण** - रोगी या वृद्ध साधु की सेवा सुश्रूषा करना। **(10) अर्हद्भक्ति** - अरिहन्त की भक्ति (अनुराग) करना। **(11) आचार्यभक्ति** - आचार्य की भक्ति करना। **(12) बहुश्रुतभक्ति** - उपाध्याय की भक्ति करना। **(13) प्रवचनभक्ति** - जिनवाणी की भक्ति करना। **(14) आवश्यकापरिहाणि** - छह आवश्यकों में हानि (त्रुटि) न होने देना। **(15) मार्गप्रभावना** - जैन शासन के प्रभाव का प्रकाश करना और **(16) प्रवचनवत्सलत्व** - गोवत्स की तरह सहधर्मियों से स्नेह करना। **नोट** - इन भावनाओं में दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना है। उसके अभाव में सबके अथवा यथा संभव हीनाधिक होने पर भी तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव नहीं होता और उसके रहते हुए अन्य भावनाओं के अभाव में भी तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव होता है।

'नीच गोत्रकर्म के आस्रव'

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचै-र्गोत्रस्य ॥ 25 ॥

अर्थः- दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना तथा दूसरे के मौजूद गुणों को ढांकना और अपने झूठे गुणों को प्रकट करना, ये नीच गोत्रकर्म के आस्रव हैं।

'उच्च गोत्रकर्म के आस्रव'

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥ 26॥

अर्थः- नीचगोत्र के आस्रवों से विपरीत अर्थात् परप्रशंसा तथा आत्मनिन्दा और नम्र वृत्ति तथा मद का अभाव ये उच्चगोत्र कर्म के आस्रव हैं।

'अन्तरायकर्म का आस्रव'

विघ्नकरणमन्तरायस्य॥ 27॥

अर्थः- पर के दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य में विघ्न करना अन्तराय कर्म के आस्रव हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः॥ 5॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

सप्तम-अध्याय

शुभास्रव-वर्णन

'व्रत का लक्षण'

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरति-र्व्रतम्॥ 1 ॥

अर्थ:- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों से भावपूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है।

'व्रत के भेद'

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ 2 ॥

अर्थ:- व्रत के दो भेद हैं- अणुव्रत और महाव्रत। हिंसादि पापों का एक देश त्याग करने से अणुव्रत और सर्वदेश त्याग करने से महाव्रत होते हैं।

'व्रतों की स्थिरता के कारण'

तत्स्थैर्यार्थं भावना: पञ्च पञ्च ॥ 3 ॥

अर्थ:- उन व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं। **भावना** - किसी वस्तु का बार-बार चिंतवन करना सो भावना है।

'अहिंसाव्रत की भावनाएँ'

वाङ्मनोगुप्तीर्यादान-निक्षेपण-समित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥ 4 ॥

अर्थ:- **वाग्गुप्ति** - वचन को रोकना, **मनोगुप्ति** - मन की प्रवृत्ति को रोकना, **ईयासमिति** - चार हाथ जमीन देखकर चलना, **आदाननिक्षेपण समिति** - भूमि को जीव रहित देखकर सावधानी से किसी वस्तु को उठाना, रखना और **आलोकितपान भोजन** - देखकर/शोधकर भोजनपान ग्रहण करना। ये पाँच अहिंसाव्रत की भावनाएँ हैं।

'सत्यव्रत की भावनाएँ'

क्रोध-लोभ-भीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ 5 ॥

अर्थः– **क्रोध प्रत्याख्यान** – क्रोध का त्याग करना, **लोभ प्रत्याख्यान** – लोभ का त्याग करना, **भीरुत्व प्रत्याख्यान** – भय का त्याग करना, **हास्य प्रत्याख्यान** – हास्य का त्याग और **अनुवीचि भाषण** – शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना। ये सत्यव्रत की पाँच भावनायें हैं।

'अचौर्यव्रत की भावनाएँ'

शून्यागार–विमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥ 6 ॥

अर्थः– **शून्यागारवास** – पर्वतों की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना, **विमोचितावास** – राजा वगैरह के द्वारा छुड़वाए हुए दूसरे के स्थान में निवास करना, **परोपरोधाकारण** – अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरे को नहीं रोकना, **भैक्ष्यशुद्धि** – चरणानुयोग शास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि रखना और **सधर्माविसंवाद** – सहधर्मी भाईयों से यह हमारा है, वह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना; ये पाँचों अचौर्यव्रत की भावनाएँ हैं।

'ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ'

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरस–स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ 7 ॥

अर्थः– **स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग** – स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग **तन्मनोहरांगनिरीक्षण त्याग** – स्त्रियों के मनोहर अंगों के देखने का त्याग करना, **पूर्वरतानुस्मरण त्याग** – अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग करना, **वृष्येष्टरस त्याग** – कामवर्द्धक गरिष्ट रसों का त्याग करना और **स्वशरीरसंस्कार त्याग** – अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना। ये पाँच ब्रह्मचर्यव्रत की भावनाएँ हैं।

'परिग्रहत्यागव्रत की भावनाएँ'

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेष–वर्जनानि पञ्च ॥ 8 ॥

अर्थः– स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों के इष्ट–अनिष्ट और विषयों में क्रम से राग–द्वेष नहीं करना। ये पाँच परिग्रह–त्यागव्रत की भावनाएँ हैं।

'हिंसादि पाँच पापों के विषय में करने योग्य विचार'

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ 9 ॥

अर्थः– हिंसादि पाँच पापों के होने पर लोक में तथा परलोक में सांसारिक और पारमार्थिक प्रयोजनों का नाश तथा निन्दा को देखना पड़ता है, ऐसा विचार करें। **विशेषता** – हिंसादि पाप करने से इस लोक तथा परलोक में अनेक आपत्तियाँ प्राप्त होती हैं और निंदा भी होती है,इसलिए इनको छोड़ना ही अच्छा है।

'पापों से विरक्त होने की भावना'

दुःखमेव वा ॥ 10 ॥

अर्थः– अथवा हिंसादिक पाँच पाप दुःखरूप ही हैं ऐसा विचार करें। **नोट** – यहाँ कार्य के कारण का उपचार समझना चाहिए, क्योंकि हिंसादि दुःख के कारण हैं, पर यहाँ उन्हें कार्य अर्थात् दुःख रूप वर्णन किया है।

'व्रतधारी सम्यग्दृष्टि की भावनाएँ'

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिक–क्लिश्यमाना–विनेयेषु ॥ 11 ॥

अर्थः– और सत्त्व (प्राणिमात्र), गुणाधिक (जो गुणों से अधिक हों), क्लिश्यमान (दुःखी रोगी वगैरह), अविनेय (मिथ्यादृष्टि उद्दण्ड प्रकृति के धारक) जीवों में क्रम से मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना भावे। **मैत्री** – दूसरी को दुःख न हो ऐसे अभिप्राय को मैत्री भावना कहते हैं। **प्रमोद** – अधिक गुणों के धारी जीवों को देखकर मुख प्रसन्नता आदि से प्रकट होने वाली अंतरंग की भक्ति को प्रमोद कहते हैं। **कारुण्य** – दुःखी जीवों को देखकर उनके उपकार करने के भावों को कारुण्य भाव कहते हैं। **माध्यस्थ्य भाव** – जो जीव तत्त्वार्थ श्रद्धान से रहित हैं तथा हित

का उपदेश देने से उल्टे चिढ़ते हैं उनमें राग-द्वेष का अभाव होना सो माध्यस्थ भाव है।

'संसार और शरीर के स्वभाव का विचार'

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ 12 ॥

अर्थः- संवेग (संसार के भय) और वैराग्य (रागद्वेष के अभाव) के लिए क्रम से संसार और शरीर का स्वभाव के चिंतवन करें।

'हिंसापाप का लक्षण'

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ 13 ॥

अर्थः- प्रमाद (पाँच इन्द्रिय, चार कषाय, चार विकथा, स्नेह और निद्रा ये पन्द्रह प्रमाद हैं) के योग (अयत्नाचार या प्रमादी के मन, वचन, काय की प्रवृत्ति) से यथासम्भव द्रव्यप्राण (पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दश द्रव्य प्राण हैं) या भावप्राण (ज्ञान-दर्शन को भावप्राण कहते हैं) का वियोग करना हिंसा कहलाती है। **विशेषार्थ** - (1) जिस समय कोई व्रती जीव ईर्यासमिति से गमन कर रहा हो, यदि उस समय कोई क्षुद्र जीव अचानक उसके पैर के नीचे दब जावे तो वह व्रती उस हिंसा पाप का भागी नहीं होगा, क्योंकि उसके प्रमाद नहीं है। (2) एक जीव किसी जीव को मारना चाहता था पर मौका न मिलने से मार न सका तो भी वह ≀हसा का भागी होगा, क्योंकि वह प्रमाद सहित है और अपने भाव प्राणों की हिंसा करने वाला है।

'असत्य का लक्षण'

असदभिधानमनृतम् ॥ 14 ॥

अर्थः- प्रमाद के योग से जीवों को दुःखदायक व मिथ्यारूप वचन बोलना सो असत्य है।

'स्तेय-चोरी का लक्षण'

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ 15 ॥

अर्थः- प्रमाद के योग से बिना दी हुई किसी की वस्तु के ग्रहण करने को चोरी कहते हैं।

'कुशील का लक्षण'

मैथुनमब्रह्म ॥ 16 ॥

अर्थः- मैथुन को अब्रह्म अर्थात् कुशील कहते हैं। **मैथुन** - चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से राग परिणाम सहित स्त्री-पुरुष के परस्पर स्पर्श करने की इच्छा को मैथुन कहते हैं।

'परिग्रह का लक्षण'

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ 17 ॥

अर्थः- मूर्च्छा को परिग्रह कहते हैं। **मूर्च्छा** - बाह्य धन, धान्यादि तथा अंतरंग क्रोधादि कषायों में ये मेरी है, ऐसा भाव रखना सो मूर्च्छा है।

'व्रती की परिभाषा'

निःशल्यो व्रती ॥ 18 ॥

अर्थः- शल्य रहित जीव व्रती कहलाता है। जब तक एक भी शल्य है तब तक जीव व्रती नहीं हो सकता। **शल्य** - जो आत्मा को कांटे की तरह दुःख दे उसे शल्य कहते हैं। उसके तीन भेद हैं - (1) माया शल्य - छल कपट करना, (2) मिथ्यात्व शल्य - तत्त्वों का श्रद्धान न होना और (3) निदान शल्य - आगामी काल में विषयों की वांछा करना।

'व्रती के भेद'

अगार्यनगारश्च ॥ 19 ॥

अर्थः- अगारी (गृहस्थ) और अनगारी (मुनि गृहत्यागी) इस प्रकार व्रती के दो भेद हैं।

'अगारी का लक्षण'

अणुव्रतोऽगारी ॥ 20 ॥

अर्थः- अणुव्रत - अणु अर्थात् एकदेश व्रत पालने वाला जीव

अगारी कहलाता है। अणुव्रत के पाँच भेद हैं- **अहिंसाणुव्रत** - संकल्पपूर्वक त्रस जीवों की हिंसा का परित्याग करना सो अहिंसाणुव्रत है। **सत्याणुव्रत**- राग-द्वेष, भय आदि के वश हो स्थूल असत्य बोलने का त्याग करना, सत्याणुव्रत है। **अचौर्याणुव्रत** - स्थूल चोरी के त्याग को अचौर्याणुव्रत कहते हैं। **ब्रह्मचर्याणुव्रत** - परस्त्री सेवन का त्याग करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है। **परिग्रहपरिमाणाणुव्रत** - आवश्यकता से अधिक परिग्रह का त्याग कर शेष का परिमाण करना सो परिग्रह परिमाणाणुव्रत है।

'अणुव्रत के सहायक सात शीलव्रत'

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथि संविभागव्रतसम्पन्नश्च॥ 21॥

अर्थ:- वह व्रती दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड व्रत इन तीन गुणव्रतों से तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथिसंविभागव्रत, इन चार शिक्षाव्रतों से सहित होता है अर्थात् व्रती श्रावक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह व्रतों का धारी है। **गुणव्रत** - जो अणुव्रतों का उपकार करते हैं उन्हें गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत के 3 भेद हैं- **दिग्व्रत** - मरण पर्यन्त सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए दशों दिशाओं में आने-जाने का परिमाण कर उससे बाहर नहीं जाना, सो दिग्व्रत है। **देशव्रत** - जीवन पर्यन्त के लिए किए हुए दिग्व्रत में और भी संकोच करके घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदि तक किसी गृह मुहल्ले आदि तक आना जाना रखना, सो देशव्रत है। **अनर्थदण्डव्रत** - प्रयोजन रहित पापवर्धक क्रियाओं का त्याग करना सो अनर्थदण्ड है। इसके पाँच भेद हैं। - (1) **पापोपदेश** - हिंसा आरम्भ आदि पाप के कामों का उपदेश देना, (2) **हिंसादान** - तलवार आदि हिंसा के उपकरण देना, (3) **अपध्यान** - दूसरे का बुरा विचारना, (4) **दुःश्रुति** - राग-द्वेष को बढ़ाने वाले खोटे शास्त्रों का सुनना और (5) **प्रमादचर्या** - बिना प्रयोजन यहाँ-वहाँ घूमना तथा पृथ्वी आदि का खोदना।

शिक्षाव्रत – जिनसे मुनिव्रत पालन की शिक्षा मिलती है उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। इसके चार भेद हैं– **(1) सामायिक** – मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदना से पाँचों पापों का त्याग करना, सो सामायिक है। **(2) प्रोषधोपवास** – पहले और आगे के दिनों में एकासन के साथ अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास आदि करना, प्रोषधोपवास है। **(3) उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत** – भोग (जो एक बार भोगने में आता है) और उपभोग (जो बार–बार भोगने में आता है) की वस्तु का परिमाण कर उससे अधिक ममत्व नहीं करना, सो उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत है। **(4) अतिथिसंविभागव्रत** – अतिथि अर्थात् मुनियों के लिए आहार, कमण्डलु पिच्छी वसतिका दान देना, सो अतिथिसंविभागव्रत है।

'व्रती को सल्लेखना धारण करने का उपदेश'

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ 22 ॥

अर्थः– गृहस्थ मरण के समय होने वाली सल्लेखना की प्रीतिपूर्वक सेवन करता है। **सल्लेखना** – इस लोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजन की अपेक्षा न करके शरीर और कषाय के कृश करने को सल्लेखना कहते हैं।

'सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार'

शंकाकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ 23 ॥

अर्थः– शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव से पाँच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं। **शंका** – जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे हुए तत्त्वों में संदेह करना अथवा सप्तभय (इह लोकभय, परलोकभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, वेदनाभय, रोगभय या मरणभय और अकस्मात्‌भय) करना। **कांक्षा** – इस लोक या परलोक में सांसारिक सुखों की चाह करना। **विचिकित्सा** – दुःखी दरिद्री जीवों को अथवा रत्नत्रय से पवित्र परन्तु बाह्य में मलिन मुनियों के शरीर को देखकर ग्लानि करना।

अन्यदृष्टिप्रशंसा – मिथ्यादृष्टियों के ज्ञान तप आदि को मन से अच्छा समझना और **अन्यदृष्टिसंस्तव** – मिथ्यादृष्टियों के ज्ञान तप आदि की वचनों से प्रशंसा करना।

'5 व्रत और 7 शीलों के अतिचारों की संख्या'

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्॥ 24॥

अर्थः- पाँच व्रत और सात शीलों में भी क्रम से पाँच-पाँच अतिचार होते हैं। जिनका वर्णन आगे के सूत्रों में है।

'अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार'

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥ 25॥

अर्थः- **बन्ध** – इच्छित स्थान में जाने से रोकने के लिए रस्सी आदि से बांधना। **वध** – कोड़ा, वेंत आदि से मारना। **छेद** – नाक, कान आदि अंगों को छेदना। **अतिभारारोपण** – शक्ति से अधिक भार लादना। **अन्नपाननिरोध** – समय पर खाना-पीना नहीं देना। ये पाँच अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं।

'सत्याणुव्रत के अतिचार'

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः॥ 26॥

अर्थः- **मिथ्योपदेश** – झूठा उपदेश देना। **रहोभ्याख्यान** – स्त्री-पुरुष की एकान्त की बात को प्रकट करना। **कूटलेखक्रिया** – झूठा दस्तावेज आदि लिखना। **न्यासाप्रहार** – किसी की धरोहर का अपहरण करना और **साकारमन्त्रभेद** – हाथ चलाने आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर उसे प्रकाशित कर देना। ये पाँच सत्याणुव्रत के अतिचार हैं।

'अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार'

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः॥ 27॥

अर्थः– **स्तनेप्रयोग** – चोर की चोरी के लिए प्रेरणा करना व उसके उपाय बताना। **तदाहृतादान** – चोर के द्वारा चुराई हुई वस्तु को खरीदना। **विरुद्धराज्यातिक्रम** – राजा की आज्ञा के विरुद्ध चलना, टाउन–ड्यूटी टैक्स वगैरह नहीं देना। **हीनाधिकमानोन्मान** – देने–लेने के बाँट–तराजू वगैरह को कमती–बढ़ती रखना और **प्रतिरूपकव्यवहार** – बहूमूल्य वस्तु में अल्पमूल्य की वस्तु मिलाकर असलीभाव से बेचना। ये पाँच अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

'ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार'

परविवाहकरणेत्वरिका – परिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडा–कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ 28 ॥

अर्थः– **परविवाहकरण** – दूसरे के पुत्र–पुत्रियों का विवाह करना, कराना। **परिगृहीतेत्वरिकागमन** – पति सहित व्यभिचारिणी स्त्रियों के पास आना–जाना, लेन–देन रखना, रागभावपूर्वक बातचीत करना। **अपरिगृहीतेत्वरिकागमन** – पति रहित वेश्या आदि व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ आना–जाना, लेन–देन आदि का व्यवहार रखना। **अनंगक्रीड़ा** – काम सेवन के लिए निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से काम सेवन करना और **कामतीव्राभिनिवेश** – काम सेवन की अत्यन्त अभिलाषा रखना। ये पाँच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

'परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार'

क्षेत्रवास्तुहिरण्य–सुवर्ण–धन–धान्यदासीदास–कुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥29॥

अर्थः– **क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम** – खेत तथा रहने के घरों के प्रमाण का उल्लंघन करना। **हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम** – चाँदी, सोने के प्रमाण का उल्लंघन करना। **धन–धान्यप्रमाणातिक्रम** – गाय, भैंस आदि पशु तथा गेंहू, चना आदि अनाज के प्रमाण का उल्लंघन करना। **दासीदासप्रमाणातिक्रम** – नौकर–नौकरानियों के प्रमाण का उल्लंघन करना और **कुप्यप्रमाणातिक्रम** – वस्त्र तथा बर्तन आदि के प्रमाण का उल्लंघन करना। ये परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार हैं।

'दिग्व्रत के अतिचार'

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि।।। 30 ।।

अर्थः- ऊर्ध्वव्यतिक्रम - प्रमाण से अधिक ऊँचाई वाले पर्वत आदि पर चढ़ना। **अधोव्यतिक्रम** - प्रमाण से अधिक नीचाई वाले कुएँ आदि में उतरना। **तिर्यग्व्यतिक्रम** - समान स्थान में प्रमाण से अधिक लम्बे जाना। **क्षेत्रवृद्धि** - प्रमाण किए हुए क्षेत्र को बढ़ा लेना और **स्मृत्यन्तराधान** - किए हुए प्रमाण को भूल जाना। ये पाँच दिग्व्रत के अतिचार हैं।

'देशव्रत के पाँच अतिचार'

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।। 31 ।।

अर्थः- आनयन - मर्यादा से बाहर की चीज को बुलाना। **प्रेष्यप्रयोग** - मर्यादा के बाहर नौकर आदि को भेजना। **शब्दानुपात** - खाँसी आदि के शब्द के द्वारा मर्यादा से बाहर वाले आदमियों को अपना अभिप्राय समझा देना। **रूपानुपात** - मर्यादा से बाहर रहने वाले आदमियों को अपना शरीर दिखाकर इशारा करना और **पुद्गलक्षेप** - मर्यादा से बाहर कंकर, पत्थर फेंकना। ये पाँच देशव्रत के अतिचार हैं।

'अनर्थदण्डव्रत के पाँच अतिचार'

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याऽसमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानार्थक्यानि ।। 32 ।।

अर्थः- कन्दर्प - राग से हास्य सहित अशिष्ट वचन बोलना। **कौत्कुच्य** - शरीर से कुचेष्टा करते हुए अशिष्ट वचन बोलना। **मौखर्य** - धृष्टतापूर्वक आवश्यकता से अधिक बोलना। **असमीक्ष्याधिकरण** - बिना प्रयोजन मन, वचन, काय की अधिक प्रवृत्ति करना और **उपभोग परिभोगानर्थक्य** - भोग-उपभोग के पदार्थों का जरूरत से अधिक संग्रह करना। ये पाँच अनर्थदण्डव्रत के अतिचार हैं।

'सामायिकशिक्षाव्रत के अतिचार'

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि॥ 33॥

अर्थः– मनोयोगदुष्प्रणिधान – मन की अन्यथा प्रवृत्ति करना। **वाग्योगदुष्प्रणिधान** – वचन की अन्यथा प्रवृत्ति करना। **काययोग-दुष्प्रणिधान** – शरीर की अन्यथा प्रवृत्ति करना। **अनादर** – उत्साह रहित होकर सामायिक करना और **स्मृत्यनुपस्थान** – एकाग्रता के अभाव में सामायिक पाठ आदि का भूल जाना। ये पाँच सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार हैं।

'प्रोषधोपवासशिक्षाव्रत के अतिचार'

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ 34॥

अर्थः– अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग – बिना देखी, बिना शोधी हुई जमीन में मलमूत्रादि का क्षेपण करना। **अप्रत्यवेक्षिता–प्रमार्जितादान** – बिना देखे, बिना शोधे हुए पूजन आदि के उपकरण उठाना। **अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण** – बिना शोधे हुए वस्त्र चटाई आदि बिछाना। **अनादर** – भूख से व्याकुल होकर आवश्यक धर्म कार्यों को उत्साह रहित होकर करना और **स्मृत्यनुपस्थान** – करने योग्य आवश्यक धर्म कार्यों को भूल जाना। ये पाँच प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार हैं।

'उपभोगपरिभोगपरिमाण–शिक्षाव्रत के अतिचार'

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुष्पक्वाहाराः॥ 35॥

अर्थः– सचित्ताहार – जीव सहित हरे फल आदि का भक्षण करना। **सचित्तसम्बन्ध आहार** – सचित्त पदार्थ से सम्बन्ध को प्राप्त हुई चीज का आहार करना। **सचित्तसंमिश्राहार** – सचित्त पदार्थ से मिले हुए पदार्थ का आहार करना। **अभिषवाहार** – गरिष्ट पदार्थ का आहार करना और **दुःपक्वाहार** – अध पके अथवा अधिक पके हुए पदार्थ का आहार करना। ये पाँच उपभोगपरिमाण–परिभोग व्रत के अतिचार हैं।

'अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत के अतिचार'

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमा: ॥ 36 ॥

अर्थ:- **सचित्तनिक्षेप** – सचित्त पत्र आदि में भोजन को रखकर देना। **सचित्तापिधान** – सचित्त पत्र आदि से ढके हुए भोजनादि का दान करना। **परव्यपदेश** – दूसरे दातार की वस्तु देना। **मात्सर्य** – अनादरपूर्वक देना अथवा दूसरे दाता से ईर्ष्या करके देना और **कालातिक्रम** – योग्य काल का उल्लंघन कर अकाल में देना। ये पाँच अतिथिसंविभागव्रत के अतिचार हैं।

'सल्लेखना के अतिचार'

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ 37 ॥

अर्थ:- **जीविताशंसा** – सल्लेखना धारण कर जीने की इच्छा करना। **मरणाशंसा** – वेदना से व्याकुल होकर शीघ्र मरने की वांछा करना। **मित्रानुराग** – मित्रों का स्मरण करना। **सुखानुबन्ध** – पूर्वकाल में भोगे हुए सुखों का स्मरण करना और **निदान** – आगामी काल में विषयों की इच्छा करना। से पाँच सल्लेखनाव्रत के अतिचार हैं। **नोट** – ऊपर कहे हुए 70 अतिचारों का त्यागी ही निर्दोष व्रती कहलाता है।

'दान का लक्षण'

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ 38 ॥

अर्थ:- अपने और पर के उपकार के लिए धनादिक का त्याग करना दान है। **नोट** – दान देने में अपना उपकार तो यह है कि पुण्य का बन्ध होता है और पर का उपकार यह है कि दान लेने वाले के सम्यग्ज्ञान आदि गुणों की वृद्धि होती है।

'दान की विशेषता'

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेष: ॥ 39 ॥

अर्थ:- विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातृविशेष और पात्रविशेष से उस दान में विशेषता होती है। **विधिविशेष** – नवधा भक्ति के क्रम को

विधिविशेष कहते हैं। **द्रव्यविशेष** – तप स्वाध्याय आदि की वृद्धि में कारण आहार को द्रव्यविशेष कहते हैं। **दातृविशेष** – श्रद्धा आदि सप्तगुण सहित दातार को दातृविशेष कहते हैं। **पात्रविशेष** – सम्यक्चारित्रादि गुण सहित मुनि आदि को पात्र विशेष कहते हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

अष्टम अध्याय

बन्धतत्त्व का वर्णन

'बन्ध के कारण'

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥ 1 ॥

अर्थः- मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच कर्म बन्ध के कारण हैं। **मिथ्यादर्शन** - अतत्त्वों के श्रद्धान को अथवा तत्त्वों का श्रद्धान न होने को मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके दो भेद हैं - (1) **गृहीत मिथ्यादर्शन** - दूसरों के उपदेश से जो अतत्त्व श्रद्धान होता है, उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। (2) **अगृहीत मिथ्यादर्शन** - उपदेश के बिना ही केवल मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो मिथ्या श्रद्धान होता है उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। मिथ्यादर्शन के पाँच भेद और भी हैं - एकान्त, विपरीत, संशय, वैनयिक और अज्ञान। **एकान्त मिथ्यादर्शन** - अनेक धर्मात्मक वस्तु में यह इसी प्रकार है, इस तरह के एकान्त अभिप्राय को एकान्त मिथ्यादर्शन कहते हैं। जैसे-बौद्ध मत वाले वस्तु को अनित्य ही मानते और वेदान्ती सर्वथा नित्य ही मानते हैं। **विपरीत मिथ्यादर्शन** - परिग्रह सहित भी गुरु हो सकता है, केवली कवलाहार करते हैं, स्त्री के भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इत्यादि उल्टे श्रद्धान को विपरीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। **संशय मिथ्यादर्शन** - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये मोक्ष के मार्ग हैं अथवा नहीं, इस प्रकार चलायमान श्रद्धान को संशय मिथ्यादर्शन कहते हैं। **वैनयिक मिथ्यादर्शन**-सब प्रकार के देवों को तथा सब प्रकार के मतों को समान मानना, वैनयिक मिथ्यादर्शन है। **अज्ञान मिथ्यादर्शन** - हिताहित की परीक्षा न करके श्रद्धान करना, अज्ञान मिथ्यात्व है। **अविरति** - छह काय के जीवों की हिंसा के त्याग न करने और पाँचों इन्द्रियों तथा मन को विषयों में जाने से न रोकने को अविरति कहते हैं। इसके पृथ्वीकायिकाविरति आदि बारह भेद हैं। **प्रमाद** - 5 समिति, 3 गुप्ति, 8 शुद्धि (भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि,

भैक्ष्यशुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि ये आठ शुद्धियाँ हैं) 10 धर्म इत्यादि अच्छे कार्यों में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न करने को प्रमाद कहते हैं। इसके 15 भेद हैं। **कषाय**– जो आत्मा को कसे उसे कषाय कहते हैं। इसके 25 भेद हैं। **योग**– मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। इसके 15 भेद हैं– 4 मनोयोग, 4 वचनयोग और 7 काययोग हैं। **नोट** – ये मिथ्यादर्शन आदि सम्पूर्ण तथा पृथक्–पृथक् बन्ध के कारण हैं। अर्थात् किसी के पाँचों ही बन्ध के कारण हैं, किसी के अविरति आदि 4 कारण हैं, किसी के प्रमाद आदि 3 कारण हैं, किसी के कषाय आदि 2 कारण हैं, किसी के सिर्फ एक योग ही बन्ध का कारण है।

'बन्ध का लक्षण'

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ 2 ॥

अर्थः– जीव कषाय सहित होने से कर्म के योग्य कार्मण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओं को जो ग्रहण करते हैं वह बन्ध है। **भावार्थ** – सम्पूर्ण लोक में कार्मण वर्गणारूप पुद्गल भरे हुए हैं। कषाय के निमित्त से उनका आत्मा के साथ सम्बन्ध हो जाता है। यही बन्ध कहलाता है। **नोट**– इस सूत्र में कर्मयोग्यान् ऐसा समास न करके जो अलग–अलग ग्रहण किया है। उससे सूत्र का यह अर्थ निकलता है कि जीव कर्म से सकषाय होता है और सकषाय होने से कर्मरूप पुद्गलों को ग्रहण करता है यही बन्ध कहलाता है।

'बन्ध के भेद'

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ 3 ॥

अर्थः– प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ये बन्ध के चार भेद हैं। **प्रकृतिबन्ध** – कर्मों के स्वभाव को प्रकृतिबन्ध कहते हैं। **स्थितिबन्ध** – ज्ञानावरणादि कर्मों का अपने स्वभाव से च्युत नहीं होना, सो स्थितिबन्ध है। **अनुभागबन्ध** – ज्ञानावरणादि कर्मों के रस विशेष को अनुभागबन्ध कहते हैं। **प्रदेशबन्ध** – ज्ञानावरणादि कर्म रूप होने वाले पुद्गल स्कन्धों के परमाणुओं की संख्या को प्रदेशबन्ध कहते हैं। **नोट** – इन चार प्रकार के बन्धों में प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

'प्रकृतिबन्ध का वर्णन'

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ 4 ॥

अर्थः- पहला प्रकृति बन्ध - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे आठ प्रकार का है। **ज्ञानावरण** - जो आत्मा के ज्ञानगुण को घाते, उसे ज्ञानावरण कहते हैं। **दर्शनावरण** - जो आत्मा के दर्शन गुण को घाते, उसे दर्शनावरण कहते हैं। **वेदनीय** - जिसके उदय से जीवों को सुख-दुःख होवे, उसे वेदनीय कहते हैं। **मोहनीय** - जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगे उसे मोहनीयकर्म कहते हैं। **आयु** - जो इस जीव को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव में से किसी एक शरीर में रोक रखे, उसे आयुकर्म कहते हैं। **नाम** - जिसके उदय से शरीर आदि की रचना हो, उसे नामकर्म कहते हैं। **गोत्र** - जिसके उदय से यह जीव ऊँच-नीच कुल में पैदा होवे, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। **अन्तराय** - जिसके उदय से जीव के दान, लाभ, भोग, उपयोग और वीर्य में विघ्न आवे, उसे अन्तरायकर्म कहते हैं। **नोट** - उक्त आठ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातियाँ हैं और बाकी के चार कर्म अघातियाँ हैं।

'प्रकृतिबन्ध के उत्तर भेद'

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ 5 ॥

अर्थः- ऊपर कहे हुए ज्ञानावरणादि कर्म क्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद वाले हैं।

'ज्ञानावरणकर्म के पाँच भेद'

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ 6 ॥

अर्थः- मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पाँच ज्ञानावरण कर्म के भेद हैं। **मतिज्ञानावरण** - मतिज्ञान को ढाँकने वाला। **श्रुतज्ञानावरण** - श्रुतज्ञान को ढाँकने वाला। **अवधिज्ञानावरण** - अवधिज्ञान को ढाँकने वाला। **मनःपर्ययज्ञानावरण** - मनःपर्ययज्ञान को ढाँकने वाला और **केवल-ज्ञानावरण** - केवलज्ञान को ढाँकने वाला। ये पाँच ज्ञानावरण के भेद हैं।

'दर्शनावरणकर्म के भेद'

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च॥ 7॥

अर्थः- चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरण कर्म के भेद हैं। **चक्षुदर्शनावरण** - जो कर्म चक्षु इन्द्रियों से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दें, उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। **अचक्षुदर्शनावरण** - जिस कर्म के उदय से चक्षु-इन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मन से पदार्थ का सामान्य अवलोकन न हो सके उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं। **अवधिदर्शनावरण** - जो कर्म केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं। **निद्रा** - मद, खेद, श्रम आदि को दूर करने के लिए जो शयन करते हैं सो निद्रा है। वह निद्रा जिस कर्म के उदय से हो वह कर्म निद्रादर्शनावरण है। **निद्रा-निद्रा** - नींद के बाद फिर नींद आने को निद्रानिद्रा कहते हैं। निद्रा-निद्रा के वशीभूत होकर जीव अपनी आँखों को नहीं खोल सकता। **प्रचला** - बैठे-बैठे नेत्र, शरीर आदि में विकार करने वाला शोक तथा थकावट आदि से उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है। प्रचला के वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है। **प्रचलाप्रचला** - प्रचला के ऊपर प्रचला के आने को प्रचलाप्रचला प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचला के द्वारा शयन अवस्था में मुँह से लार बहने लगती है तथा अंगोपांग चलने लगते हैं। **स्त्यानगृद्धि** - जिस निद्रा के द्वारा सोती अवस्था में भी नाना तरह के भयंकर कार्य कर डाले और जागने पर कुछ मालूम ही न हो कि मैंने क्या किया है उसको स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

'वेदनीय कर्म के भेद'

सदसद्वेद्ये॥ 8॥

अर्थः- सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय कर्म के भेद हैं। **सद्वेद्य** - जिसके उदय से देव आदि गतियों में शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त होता है उसे सद्वेद्य कहते हैं। **असद्वेद्य** - जिसके उदय से नरकादि गतियों में तरह-तरह के दुःख प्राप्त हों उसे असद्वेद्य कहते हैं।

मोहनीयकर्म के भेद

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्वतदुभयान्य-कषायकषायौ हास्यरत्यरति-शोक-भयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ 9 ॥

अर्थः- दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय ये चारों भेद रूप मोहनीयकर्म क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद रूप हैं। जिनमें से सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व ये तीन दर्शनमोहनीय कर्म के भेद हैं। अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय ये दो भेद चारित्रमोहनीय के हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये 9 भेद अकषाय वेदनीय के हैं और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेद स्वरूप क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीय के हैं।
विशेषार्थ - मोहनीयकर्म के मुख्य में दो भेद हैं। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। उनमें दर्शनमोहनीय के 3 भेद और चारित्रमोहनीय के 25 भेद इस प्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्म के 28 भेद हैं। **दर्शन मोहनीय** - जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करता है, उसे दर्शन मोहनीय कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। **मिथ्यात्व** - जिस कर्म के द्वारा सर्वज्ञ कथित मार्ग से पराङ्मुखता हो अर्थात् मिथ्यादर्शन हो, उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। **सम्यक्त्व** - जिस प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन में दोष उत्पन्न हो, उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं। **सम्यक् मिथ्यात्व** - जिस प्रकृति के उदय से मिले हुए दही गुड़ के स्वाद की तरह उभयरूप परिणाम हों, उसे सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। **चारित्र मोहनीय** - जो आत्मा के चारित्रगुण को घाते, उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं। उसके दो भेद हैं- कषायवेदनीय जो आत्मा के गुण, शुभ और शुद्धभाव, धर्मक्षेत्र या धर्म को कषता (नष्ट करता) है, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। कषाय वेदनीय के 16 भेद हैं। **अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ** - जो आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते, उसे अनन्तानुबंधी कहते हैं। अनन्त संसार

का कारण होने से मिथ्यात्व को अनन्त कहते हैं। इसके साथ ही उसका बन्ध होता है, इसलिए इसको अनन्तानुबंधी कहते हैं। **अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ** - जिसके उदय से देशचारित्र न हो सके, उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। **प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ** - जो प्रत्याख्यान अर्थात् सकलचारित्र को घाते, उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। **संज्वलन क्रोध मान, माया लोभ** - जिसके उदय से यथाख्यातचारित्र न हो सके, उसे संज्वलन कहते हैं। यह कषाय सम् अर्थात् संयम के साथ ज्वलित-जागृत रही आती है; इसलिए इसका नाम संज्वलन है। **अकषायवेदनीय** - जो क्रोधादिक की तरह आत्मा के गुणों का घात नहीं करता उसे अथवा जो कषाय के साथ-साथ अपना कार्य या फल दिखलाता है उसे अकषायवेदनीय कहते हैं। इसके नौ भेद हैं। **हास्य** - जिसके उदय से हसी आवे, वह हास्य नोकषाय है। **रति** - जिसके उदय से विषयों में प्रेम हो, वह रति है। **अरति** - जिसके उदय से विषयों में प्रेम न हो, वह अरति है। **शोक** - जिसके उदय से शोक चिंता हो, वह शोक है। **भय** - जिसके उदय से भय लगे, डर लगे; वह भय है। **जुगुप्सा** - जिसके उदय से ग्लानि हो, वह जुगुप्सा है। **स्त्रीवेद** - जिसके उदय से पुरुष के साथ रमने के भाव हों, वह स्त्रीवेद है। **पुंवेद** - जिसके उदय से स्त्री के साथ रमने के भाव हों, वह पुंवेद है। **नपुंसकवेद** - जिसके उदय से स्त्री-पुरुष दोनों से रमने की इच्छा हो, वह नपुंसकवेद है। **नोट** - इन कषायों में आगे-आगे मन्दता है और नीचे-नीचे तीव्रता है।

'आयुकर्म के भेद'

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि॥ 10॥

अर्थः- नरकायु,तिर्यञ्चायु, मानुषायु और देवायु ये चार आयुकर्म के भेद हैं। **विशेषार्थ** - जिस कर्म के उदय से जीव नारकी, तिर्यञ्च, मानुष और देवों के शरीर में रुका रहे, उसे नरकायु, तिर्यञ्चायु, मानुषायु और देवायु कहते हैं।

'नामकर्म के भेद'

गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरस-गन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोग-तयःप्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशः-कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ 11 ॥

अर्थः- गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति ये इक्कीस तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति ये दश तथा इनसे उल्टे साधारण, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, स्थूल, अपर्याप्ति, अस्थिर, अनादेय, अयशः कीर्ति ये दश और तीर्थंकरत्व इस प्रकार सब मिलाकर नामकर्म के 42 भेद हैं। गति आदि अवान्तर भेद जोड़ने से नामकर्म के 93 भेद होते हैं। **(1) गति** - जिसके उदय से जीव दूसरे भव को प्राप्त करता है, उसे गति नामकर्म कहते हैं। उसके चार भेद हैं- नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। जिसके उदय से आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगति होवे उसे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति नामकर्म कहते हैं। **(2) जाति** - जिस कर्म के उदय से जीव नरकादि गतियों में अव्यभिचार रूप समानता से एकरूपता को प्राप्त होवे वह जाति नामकर्म है। इसके पाँच भेद हैं- एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति,चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति। जिसके उदय से एकेन्द्रिय जाति में पैदा हों उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार सब भेद का लक्षण जानना चाहिए। **(3) शरीर** - जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना हो, उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मण शरीर। जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य सब भेदों के

लक्षण जानना चाहिए। **(4) अंगोपांग** – जिसके उदय से अंग–उपांगों की रचना हो, उसे अंगोपांग नामकर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं– औदारिकशरीर अंगोपांग, वैक्रियकशरीरांगोपांग और आहारकशरीरागोपांग। जिसके उदय से औदारिक शरीर के अंग और उपांगों की रचना हो, उसे औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष दो भेदों के लक्षण समझना चाहिए। **(5) निर्माण** – जिस कर्म के उदय से अंगोपांगों की यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो, उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। **(6) बन्धन नामकर्म** – शरीर नामकर्म के उदय से ग्रहण किए हुए पुद्गल स्कन्धों का परस्पर सम्बन्ध जिस कर्म के उदय से होता है, उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं– औदारिक बन्धन, वैक्रियक बन्धन, आहारक बन्धन, तैजस बन्धन और कार्मण बन्धन नामकर्म। जिसके उदय से औदारिक शरीर के परमाणु दीवाल में लगे हुए ईंट और गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त हों, उसे औदारिक बन्धन नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदों का लक्षण जानना चाहिए। **(7) संघात नामकर्म** – जिस कर्म के उदय से औदारिकादि शरीरों के प्रदेशों का छिद्रों से रहित बन्ध हो, उसे संघात नामकर्म कहते हैं। इसके भी 5 (पाँच) भेद हैं – औदारिक संघात आदि। **(8) संस्थान नामकर्म** – जिस कर्म के उदय से, शरीर का संस्थान अर्थात् आकार बने, उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं– समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान और हुण्डकसंस्थान। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर ऊपर नीचे तथा बीच के समान भागरूप अर्थात् सुडौल हो, उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला और ऊपर मोटा हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की वामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो, उसे स्वातिसंस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो,

उसे कुब्जकसंस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से बौना शरीर हो, उसे वामनसंस्थान कहते हैं और जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास आकृति के न हों, उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते हैं। **(9)** **संहनन नामकर्म** - जिस कर्म के उदय से हड्डियों के बन्धन में विशेषता हो उसे संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं - वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन अर्द्धनाराच संहनन, कीलक संहनन और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन। जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (हड्डियाँ) वज्र की हों, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र की कीलियाँ हों परन्तु वेष्टन वज्र के न हों, उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों, उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियों की संधियाँ अर्धकीलित हों, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों, उसे कीलक संहनन कहते हैं। ॥ 5 ॥ और जिसके उदय से अलग-अलग हड्डियाँ नसों से बन्धी हुई हों, परस्पर में कीलित नहीं हों उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं। ॥ 6 ॥ **(10)** **स्पर्श** - जिसके उदय से शरीर में स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं - कोमल, कठोर, हल्का, भारी, शीत, उष्ण, चिकना और रूखा। **(11) रस** - जिसके उदय से शरीर में रस हो उसे रस नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- चरपरा, कडुआ, कषायला, खट्टा और मीठा। **(12) गन्ध** - जिसके उदय से शरीर में गन्ध हो, उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं - सुगन्ध और दुर्गन्ध । **(13) वर्ण** - जिसके उदय से शरीर में वर्ण अर्थात् रूप हो, उसे वर्ण नामकर्म कहते हैं। इसके 5 भेद हैं - शुक्ल, कृष्ण, नीला, लाल और पीला। **(14)** **आनुपूर्व्य** - जिस कर्म के उदय से विग्रह गति में मरण से पहले के शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं, उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। इसके

चार भेद हैं – नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और देवगत्यानुपूर्व्य। जिस समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यञ्च आयु को पूर्ण कर पूर्व शरीर से पृथक् हो नरक भव के प्रति जाने को सन्मुख होता है, उस समय पूर्व शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश जिस कर्म के उदय से होते हैं, उस नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदों के लक्षण जानना चाहिए। **(15) अगुरुलघु** – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे के गोले की तरह भारी और आक के तूल की तरह हल्का न हो, वह अगुरुलघु नामकर्म है। **(16) उपघात** – जिस कर्म के उदय से अपने अंगों से अपना घात हो, उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। **(17) परघात** – जिसके उदय से दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हों, उसे परघात नामकर्म कहते हैं। **(18) आतप** – जिस कर्म के उदय से आतपरूप शरीर हो, उसे आतप नामकर्म कहते हैं। **(19) उद्योत** – जिसके उदय से उद्योतरूप शरीर हो, उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं। **(20) उच्छ्वास** – जिसके उदय से शरीर में उच्छ्वास हो, उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं। **(21) – विहायोगति** – जिसके उदय से आकाश में गमन हो, उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं – प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति। **(22) प्रत्येक शरीर** – जिसके उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी है, उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते हैं। **(23) साधारण शरीर** – जिसके उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हों, उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं। **(24) त्रस नामकर्म** – जिसके उदय से द्वीन्द्रियादिक जीवों में जन्म हो, उसे त्रस नामकर्म कहते हैं। **(25) स्थावर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों में जन्म हो, उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं। **(26) सुभग नामकर्म** – जिस कर्म के उदय से दूसरे जीवों को अपने से प्रीति उत्पन्न हो, उसे सुभग नामकर्म कहते हैं। **(27) दुर्भग नामकर्म** – जिस कर्म के उदय से रूपादि गुणों से युक्त होने पर भी दूसरे जीवों को अप्रीति उत्पन्न हो, उसे दुर्भग नामकर्म

कहते हैं। **(28) सुस्वर** – जिसके उदय से जीवों को आपका स्वर उत्तम लगे, उसे सुस्वर नामकर्म कहते हैं। **(29) दु:स्वर** – जिसके उदय से जीवों को आपका स्वर खराब स्वर हो, उसे दु:स्वर नामकर्म कहते हैं। **(30) शुभ** – जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों, उसे शुभ नामकर्म कहते हैं। **(31) अशुभ** – जिसके उदय से शरीर के अवयव देखने में मनोहर न हों, उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं। **(32) सूक्ष्म** – जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी को रोक सकता हो और न किसी से रोका जा सकता हो, उसे सूक्ष्म शरीर नामकर्म कहते हैं। **(33) बादर (स्थूल)** – जिस कर्म के उदय से दूसरे को रोकने वाला तथा दूसरे से रुकने वाला स्थूल शरीर प्राप्त हो, उसे बादर शरीर नामकर्म कहते हैं। **(34) पर्याप्ति** – जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य पूर्ण पर्याप्ति से प्राप्त हो, उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं। **(35) अपर्याप्ति** – जिस कर्म के उदय से जीव के एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हों, उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं। **(36) स्थिर** – जिस कर्म के उदय से शरीर को धातुएँ (रस, रुधिर, माँस, मेद, हाड़, मज्जा और शुक्र) तथा उपधातुएँ (वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम और जठराग्नि) अपने-अपने में स्थिरता को प्राप्त हों, उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं। **(37) अस्थिर** – जिस कर्म के उदय से शरीर की धातुएँ-उपधातुएँ अपने-अपने स्थान पर स्थिर न रहें, उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं। **(38) आदेय** – जिसके उदय से प्रभा सहित शरीर हो, उसे आदेय नामकर्म कहते हैं। **(39) अनादेय** – जिसके उदय से प्रभा रहित शरीर हो, उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं। **(40) यश:कीर्ति** – जिसके उदय से जीव की संसार में प्रशंसा हो, उसे यश:कीर्ति नामकर्म कहते हैं। **(41) अयश:कीर्ति** – जिसके उदय से जीव की संसार में निन्दा हो, उसे अयश:कीर्ति नामकर्म कहते हैं। **(42) तीर्थंकरत्व** – अरहन्त पद के कारणभूत कर्म को तीर्थंकरत्व नामकर्म कहते हैं।

'गोत्रकर्म के भेद'

उच्चैर्नीचैश्च ॥ 12 ॥

अर्थः- उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दो भेद गोत्रकर्म के हैं। **उच्चगोत्र** - जिसके उदय से लोकमान्य कुल में जन्म हो, उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं। **नीचगोत्र** - जिस कर्म के उदय से लोकमान्य कुल में जन्म न हो और लोकनिन्द्य कुल में जन्म हो, उसे नीच-गोत्रकर्म कहते हैं।

'अन्तरायकर्म भेद'

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ 13 ॥

अर्थः- दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तरायकर्म के पाँच भेद हैं। जिसके उदय से दान की इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके, उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदों के लक्षण समझना चाहिए।

'ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति'

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ 14 ॥

अर्थः- आदि के तीन-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा-कोड़ी सागर की है। (दस कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है)। **नोट** - मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव के ही इस उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध होता है।

'मोहनीयकर्म की उत्कृष्ट स्थिति'

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ 15 ॥

अर्थः- मोहनीय-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर की है।

'नाम और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति'

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ 16 ॥

अर्थः- नाम-कर्म और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-कोड़ी सागर की है।

'आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति'

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ 17 ॥

अर्थः- आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर की है।

'वेदनीयकर्म की जघन्य स्थिति'

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ 18 ॥

अर्थः- वेदनीयकर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है।

'नाम और गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति'

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ 19 ॥

अर्थः- नाम और गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

'शेष पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति'

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ 20 ॥

अर्थः- बाकी के ज्ञानावारण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

'अनुभाग बन्ध का लक्षण'

विपाकोऽनुभवः ॥ 21 ॥

अर्थः- कषायों की तीव्रता, मन्दता अथवा मध्यमता से जो आस्रव में विशेषता होती है, उससे होने वाले विशेष पाक को विपाक कहते हैं। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव के निमित्त के वश से नानारूपता को प्राप्त होने वाले पाक को विपाक कहते हैं और इस पाक को ही अनुभव अर्थात् अनुभाग बन्ध कहते हैं। **नोट** - (1) शुभ परिणामों की अधिकता होने पर शुभ प्रकृतियों में अधिक और अशुभ प्रकृतियों में हीन अनुभव होता है। अशुभ परिणामों की अधिकता होने पर अशुभ प्रकृतियों में अधिक और शुभ प्रकृतियों में हीन अनुभव होता है।

स यथानाम ॥ 22 ॥

अर्थः– वह अनुभाग बन्ध कर्मों के नामानुसार ही होता है। **भावार्थ** – जिस कर्म का जैसा नाम है उसके वैसा ही अनुभाग बन्ध पड़ता है। जैसे ज्ञानावरण कर्म के ज्ञान को रोकना, दर्शनावरण कर्म के दर्शन को रोकना आदि।

'फल दे चुकने के बाद कर्मों का क्या होता है'

ततश्च निर्जरा ॥ 23 ॥

अर्थः– तीव्र, मन्द या मध्यम फल दे चुकने के बाद कर्मों की निर्जरा होती है। कर्म उदय में आकर आत्मा से पृथक् हो जाते हैं। निर्जरा के दो भेद हैं – **सविपाक निर्जरा** – शुभ–अशुभ कर्मों को जिस प्रकार बांधा था उसी प्रकार स्थिति पूर्ण होने पर फल देकर आत्मा से पृथक् होने की सविपाक निर्जरा कहते हैं। **अविपाक निर्जरा** – उदय काल प्राप्त न होने पर भी तप आदि उपायों से बीच में ही फल भोग कर खिरा देना को अविपाक निर्जरा कहते हैं। **नोट** – इस सूत्र में जो 'च' शब्द का ग्रहण किया है उससे नवम् अध्याय के 'तपसा निर्जरा' इस सूत्र से सम्बन्ध सिद्ध होता है जिससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मों की निर्जरा तप से भी होती है अर्थात् उक्त दो प्रकार की निर्जरा के कारण क्रम से कर्मों का विपाक और तपश्चरण हैं।

'प्रदेशबन्ध का स्वरूप'

नामप्रत्ययाःसर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताःसर्वात्म–प्रदेशेष्वनन्तान्तप्रदेशाः ॥ 24 ॥

अर्थः– ज्ञानावरणादि कर्म–प्रकृतियों के कारण सब ओर से अथवा देव नारकादि समस्त भवों में मन, वचन, कायरूप योग विशेष से, सूक्ष्म तथा एक क्षेत्रावगाह–रूपस्थित सम्पूर्ण आत्मा के प्रदेशों में जो कर्मरूप पुद्गल के अनन्तानन्त प्रदेश हैं, उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं। **नोट** – उक्त सूत्र में प्रदेशबन्ध के विषय में होने वाले निम्नलिखित 6 प्रश्नों का समाधान

किया गया है– किसके कारण होता है?, किस समय होता है?, किस कारण होता है?, किस स्वभाव वाला है?, किसमें होता है? और कितनी संख्या वाला है? **भावार्थ** – आत्मा के योग विशेषों द्वारा रात्रिकाल में बंधने वाले, ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियों का कारणभूत, आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर कर्मरूप परिणमने योग्य सूक्ष्म, आत्मा के प्रदेशों में क्षीर–नीर की तरह एक होकर स्थित रहने वाले तथा अनन्तानन्त प्रदेशों का प्रमाण लिए प्रदेशबन्ध रूप पुद्‌गल स्कन्धों को प्रदेश बन्ध कहते हैं।

'पुण्यप्रकृतियाँ'

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्॥ 25 ॥

अर्थः– सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं। **नोट** – घातिया कर्मों की समस्त प्रकृतियाँ पाप रूप हैं किन्तु अघातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों रूप हैं। उनमें से 68 प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं।

'पाप प्रकृतियाँ'

अतोऽन्यत्पापम्॥ 26 ॥

अर्थः– इससे भिन्न अर्थात् असातावेदनीय, अशुभआयु, अशुभनाम और अशुभगोत्र; ये पाप प्रकृतियाँ हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोऽध्यायः॥ 8 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

नवम अध्याय

संवर और निर्जरातत्त्व का वर्णन

'संवर का लक्षण'

आस्रवनिरोध: संवर: ॥ 1 ॥

अर्थ:- आस्रव को रोकना, सो संवर है अर्थात् आत्मा में जिन कारणों से कर्मों का आस्रव होता था, उन कारणों को दूर कर देने से जो कर्मों का आना बन्द हो जाता है; उसे संवर कहते हैं। संवर के दो भेद हैं- **द्रव्यसंवर** - पुद्गलमय कर्मों के आस्रव का रुकना और **भावसंवर** - कर्मास्रव के कारणभूत भावों का अभाव होना।

'संवर के कारण'

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रै: ॥ 2 ॥

अर्थ:- वह संवर तीन गुप्ति, पाँच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परिषहों को जीतना और पाँच प्रकार का चारित्र इन छः कारणों से होता है। **गुप्ति** - संसार भ्रमण के कारणभूत मन, वचन, काय इन तीन योगों के निग्रह करने को गुप्ति कहते हैं। **समिति** - जीवों की हिंसा से बचने के लिए यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने को समिति कहते हैं। **धर्म** - जो आत्मा को दुःखों से छुड़ा कर अभीष्ट स्थान में प्राप्त करावे उसे धर्म कहते हैं। **अनुप्रेक्षा** - शरीरादिक के स्वरूप का बार-बार चिन्तवन करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं। **परीषहजय** - भूख आदि की वेदना उत्पन्न होने पर कर्मों की निर्जरा करने के लिए उसे शान्तभावों से सह लेना, सो परिषहजय है। **चारित्र** - कर्मों के आस्रव में कारणभूत बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के रोकने को चारित्र कहते हैं।

'निर्जरा और संवर का कारण'

तपसा निर्जरा च ॥ 3 ॥

अर्थ:- तप से संवर और निर्जरा दोनों होते हैं। **नोट** - (1) तप

का दश प्रकार के धर्मों में अन्तर्भाव हो जाने पर भी जो अलग से ग्रहण किया है। उसका प्रयोजन यह है कि वह संवर और निर्जरा दोनों का कारण है तथा संवर का प्रधान कारण है। (2) यद्यपि पुण्य – कर्म का बन्ध होना भी तप का फल है, तथापि तप का प्रधान फल कर्मों की निर्जरा ही है। जब तप में कुछ न्यूनता होती है, तब उससे पुण्य–कर्म का बन्ध हो जाता है। इसलिए पुण्य का बन्ध होना तप का गौण फल है। जैसे – खेती करने का प्रधान फल तो धान्य उत्पन्न होना है और गौण फल पलाल (प्याल) वगैरह का उत्पन्न होना है।

'गुप्ति का लक्षण व भेद'

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ 4 ॥

अर्थः– भले प्रकार से अर्थात् विषयाभिलाषा को छोड़कर मन, वचन, काय की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के रोकने को गुप्ति कहते हैं। उसके तीन भेद हैं – **(1) मनोगुप्ति** – मन को रोकना, **(2) वचनगुप्ति** – वचन को रोकना और **(3) कायगुप्ति** – शरीर को वश में करना।

'समिति के भेद'

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ 5 ॥

अर्थः– **ईर्या** – चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना। **भाषा** – हित, मित, प्रिय वचन बोलना। **एषणा** – दिन में एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना। **आदान–निक्षेपण** – देख–भालकर किसी वस्तु को उठाना रखना। **उत्सर्ग** – जीव रहित स्थान में मलमूत्र करना। ये पाँच समिति के भेद हैं।

'धर्म के भेद'

उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ 6 ॥

अर्थः– **उत्तम क्षमा** – क्रोध के कारण के उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना। **उत्तम मार्दव** – उत्तम कुल, विद्या, बल आदि का

घमण्ड नहीं करना। **उत्तम आर्जव** – मायाचार का त्याग करना। **उत्तम सत्य** – रागद्वेषपूर्वक असत्य वचनों को छोड़कर हित–मित–प्रिय वचन बोलना। **उत्तम शौच** – लोभ का त्याग कर आत्मा को पवित्र बनाना। **उत्तम संयम** – 5 इन्द्रियों और मन को वश में करना तथा छः काय के जीवों की रक्षा करना। **उत्तम तप** – बाह्य और आभ्यन्तर तप करना। **उत्तम त्याग** – कीर्ति तथा प्रत्युपकार की वांछा रहित होकर चार प्रकार का दान देना। **उत्तम आकिञ्चन्य** – पर पदार्थों में ममत्वरूप परिणामों का त्याग करना और **उत्तम ब्रह्मचर्य** – स्त्री मात्र का त्याग कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन रहना। ये दश धर्म हैं।

'बारह अनुप्रेक्षाएँ'

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभ–धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ 7 ॥

अर्थः– अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारह के स्वरूप को बार–बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा है। **अनित्यानुप्रेक्षा** – संसार के समस्त पदार्थ इन्द्र धनुष बिजली अथवा जल के बबूले के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाले हैं, ऐसा विचार करना, सो अनित्यानुप्रेक्षा है। **अशरण अनुप्रेक्षा** – जिस प्रकार निर्जन वन में भूखे सिंह के द्वारा पकड़े हुए हरिण के बच्चे को कोई शरण नहीं है, उसी प्रकार इस संसार में मरते हुए जीव को कोई शरण नहीं है। यदि अच्छे भावों से धर्म का सेवन किया है तो वही आपत्तियों से बचा सकता है; इस प्रकार चिन्तवन करना, सो अशरण अनुप्रेक्षा है। **संसारानुप्रेक्षा** – इस चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता हुआ जीव पिता से पुत्र, पुत्र से पिता, स्वामी से दास, दास से स्वामी हो जाता है और तो क्या स्वयं अपना ही पुत्र हो जाता है इत्यादि। संसार के दुःखमय स्वरूप का विचार करना सो संसारनुप्रेक्षा है। **एकत्वानुप्रेक्षा** – जन्म, जरा, मरण, रोग आदि के दुःख मैं अकेला ही भोगता हूँ, कुटुम्बी आदि जन

साथी नहीं हैं। इत्यादि विचार करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है। **अन्यत्वानुप्रेक्षा** – शरीर आदि से अपनी आत्मा को भिन्न चिन्तवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है। **अशुचित्वानुप्रेक्षा** – यह शरीर महा–अपवित्र है। खून, मांस आदि से भरा हुआ है। स्नान आदि से कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं। इत्यादि शरीर की अपवित्रता का विचार करना, सो अशुचित्वानुप्रेक्षा है। **आस्रवानुप्रेक्षा** – मिथ्यात्व आदि भावों से कर्मों का आस्रव होता है। आस्रव ही संसार का मूल कारण है। इस प्रकार का विचार करना, सो आस्रवानुप्रेक्षा है। **संवरानुप्रेक्षा** – आत्मा में नवीन कर्मों का प्रवेश नहीं होने देना सो संवर है। संवर से ही जीवों का कल्याण होता है। ऐसा विचार करना सो संवरानुप्रेक्षा है। **निर्जरानुप्रेक्षा** – सविपाक निर्जरा से आत्मा का कुछ भला नहीं होता है किन्तु अविपाक निर्जरा से ही आत्मा का कल्याण होता है; इत्यादि निर्जरा के स्वरूप का चिन्तवन करना, सो निर्जरा अनुप्रेक्षा है। **लोकानुप्रेक्षा** – अनन्त अलोकाकाश के बीच में रहने वाले चौदह राजु प्रमाण लोक के आकाारादिक का चिन्तवन करना, सो लोकानुप्रेक्षा है। **बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा** – रत्नत्रयरूप बोधि का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है; इस प्रकार का विचारना, सो बोधिदुर्लभ भावना है। **धर्मस्वाख्यातत्त्वानुप्रेक्षा** – जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ अहिंसा लक्षण वाला धर्म ही जीवों का कल्याण करने वाला है। इसके प्राप्त न होने से ही जीव चतुर्गति के दुःखों को सहता है, आदि विचार करना, सो धर्मस्वख्या तत्त्वानुप्रेक्षा है। **नोट** – इन अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करने वाला जीव उत्तम क्षमा आदि धर्मों को पालता है और परिषहों को जीतता है। इसलिए उनका कथन दोनों के बीच में किया गया है।

'परीषह सहन करने का उपदेश'

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः ॥ 8 ॥

अर्थः– संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के हेतु बाईस परीषह सहन करने के योग्य हैं।

'परीषह के भेद'

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोश-वधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानाऽदर्शनानि॥ 9॥

अर्थः– क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रजा, अज्ञान और अदर्शन। ये बाईस परीषह हैं। **क्षुधा** – भूख के दुःख को शान्त भाव से सह लेना, सो क्षुधा परीषह जय है। **तृषा** – पिपासा रूपी अग्नि को धैर्य रूपी जल से शान्त करना तृषापरीषह जय है। **शीत** – शीत की वेदना को शान्तभावों से सहना, शीत परीषह जय है। **उष्ण** – गर्मी की वेदना को शान्तभावों से सहना, उष्ण परीषह जय है। **दशंमशक** – डांस, मच्छर, बिच्छू, चिंउटी आदि के काटने से उत्पन्न हुई वेदना को शान्तभावों से सहना, सो दंशमशक परीषह जय है। **नाग्नय** – नग्न रहते हुए भी मन में किसी प्रकार का विकार नहीं करना, सो नाग्न्य परीषह जय है। **अरति** – अरति के कारण उपस्थित होने पर भी संयम में अरति अर्थात् अप्रीति नहीं करना, सो अरति परीषह जय है। **चर्या** – गमन करते समय खेद नहीं होना, सो चर्या परीषह जय है। **निषद्या** – ध्यान के लिए नियमित काल पर्यन्त स्वीकार किए आसन से च्युत नहीं होना, सो निषद्या परीषह जय है। **शय्या** – विषम, कठोर, कंकरीले आदि स्थानों में एक करवट से निद्रा लेना और अनेक उपसर्ग आने पर भी शरीर को चलायमान नहीं करना, सो शय्या परीषह जय है। **आक्रोश** – दुष्ट जीवों के द्वारा कहे हुए कठोर शब्दों को शान्तभावों से सह लेना, सो आक्रोश परीषह जय है। **वध** – तलवार आदि के द्वारा शरीर पर प्रहार करने वाले से भी द्वेष नहीं करना, सो वध परीषय जय है। **याचना** – प्राणों का वियोग होने पर भी आहार आदिक को नहीं मांगना, सो याचना परीषह जय है। **अलाभ** – भिक्षा के प्राप्त न होने पर सन्तोष धारण करना, सो अलाभ परीषह जय है। **रोग** – अनेक रोग होने पर भी उनकी वेदना को शान्तभावों

से सह लेना सो रोग परीषह जय है। **तृणस्पर्श** – चलते समय पैरों में तृण, कण्टक वगैरह के चुभ जाने से उत्पन्न हुए दुःख को सहना, सो तृणस्पर्श परीषह जय है। **मल** – जलकायिक जीवों की हिंसा बचाने के लिए स्नान नहीं करना तथा अपने मलिन शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना, सो मल परीषह जय है। **सत्कार-पुरस्कार** – अपने में गुणों की अधिकता होने पर भी यदि कोई सत्कार-पुरस्कार न करे तो चित्त में कलुषता न करना, सो सत्कार-पुरस्कार जय है। **प्रज्ञा** –ज्ञान की अधिकता होने पर भी मान नहीं करना, सो प्रज्ञा परीषह जय है। **अज्ञान** – ज्ञानादिक की हीनता होने पर लोगों के द्वारा किए हुए तिरस्कार को शान्तभावों से सह लेना, अज्ञान परीषह जय है। **अदर्शन** – बहुत समय तक कठोर तपश्चर्या करने पर भी मुझे अवधिज्ञान तथा चारण आदि ऋद्धियों की प्राप्ति नहीं हुई इसलिए व्रत धारण करना व्यर्थ है; इस प्रकार अश्रद्धा के भाव नहीं होना; सो अदर्शन परीषह जय है। **नोट** – उक्त बाईस परिषहों को संक्लेश रहित भावों से जीत लेने पर संवर होता है।

'किस गुणस्थान में कितने परीषह होते हैं'

सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश॥ 10॥

अर्थः– सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवें और छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें उपशांत मोह तथा बारहवें क्षीणमोह नामक गुणस्थान में 14 परीषह होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं : क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, प्रज्ञा और अज्ञान।

'सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थान में परीषह'

एकादश जिने॥ 11॥

अर्थः– सयोगकेवली गुणस्थान में रहने वाले जिनेन्द्र भगवान् के उक्त 14 परीषहों में से अलाभ, प्रज्ञा और अज्ञान को छोड़कर शेष 11 परीषह होते हैं। **नोट** – जिनेन्द्र भगवान् के वेदनीय कर्म का उदय होने से उसके उदय से होने वाले 11 परीषह कहे गए हैं। यद्यपि मोहनीय कर्म का

उदय न होने से भगवान् को क्षुधादिक की वेदना नहीं होती। तथापि इन परीषहों का कारण वेदनीय कर्म मौजूद है इसलिए उपचार से 11 परीषह कहे गए हैं। वास्तव में उनके एक भी परीषह नहीं होता है।

'छठवें से नवम गुणस्थान तक परीषह'

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ 12 ॥

अर्थ:- बादर साम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय वाले छठवें से नवमें गुणस्थान तक सब परीषह होते हैं। क्योंकि इन गुणस्थानों में परीषहों के कारणभूत कर्मों का उदय है।

'ज्ञानावरण के होने पर होने वाले परीषह'

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ 13 ॥

अर्थ:- प्रज्ञा और अज्ञान ये दो परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होते हैं।

'दर्शनमोह और अन्तराय के होने पर होने वाले परीषह'

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ 14 ॥

अर्थ:- अदर्शन परीषह दर्शनमोह कर्म के उदय से होता है और अलाभ परीषह अन्तराय कर्म के उदय से होता है।

'चारित्रमोह के उदय से होने वाले परीषह'

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ 15 ॥

अर्थ:- चारित्रमोहनीय कर्म का उदय होने पर नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार ये 7 परीषह होते हैं।

'वेदनीयकर्म के उदय से होने वाले परीषह'

वेदनीये शेषाः ॥ 16 ॥

अर्थ:- शेष 11 परीषह वेदनीय कर्म के उदय से होते हैं। जिनके नाम ये हैं- क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल।

'एक साथ होने वाले परीषहों की संख्या'

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ 17 ॥

अर्थः- एक साथ, एक जीव में, एक को आदि लेकर उन्नीस परीषह तक विभक्त करना चाहिए। **भावार्थ** - एक जीव के एक समय में अधिक से अधिक उन्नीस परीषह हो सकते हैं। क्योंकि शीत, उष्ण इन परीषहों में से एक समय में एक ही होगा तथा शय्या, चर्या और निषद्या इन तीन में से भी एक समय में एक ही होगा। इस प्रकार तीन परीषह कम कर दिए गए हैं।

'चारित्र के भेद'

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यात-मितिचारित्रम् ॥ 18 ॥

अर्थः- सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये चारित्र के पाँच भेद हैं। **सामायिक** - भेद रहित सम्पूर्ण पापों के त्याग करने को सामायिकचारित्र कहते हैं। **छेदोपस्थापना** - प्रमाद के वश से चारित्र में कोई दोष लग जाने पर प्रायश्चित्त के द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्र को स्वीकार करना सो छेदोपस्थापना चारित्र हैं। **परिहारविशुद्धि** - जिस चारित्र में जीवों की हिंसा का त्याग हो, जाने से विशेष शुद्धि प्राप्त होती है; उसको परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं। **सूक्ष्मसाम्पराय** - अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय होने पर जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं। **यथाख्यात** - सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

'बाह्यतप के भेद'

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकाय-क्लेशा बाह्यं तपः ॥ 19 ॥

अर्थः- **अनशन** - संयम की वृद्धि के लिए चार प्रकार के आहार का त्याग करना। **अवमौदर्य** - रागभाव दूर करने के लिए भूख से कम भोजन करना। **वृत्तिपरिसंख्यान** - भिक्षा को जाते समय घर, गली आदि

का नियम करना। **रसपरित्याग** – इन्द्रियों का दमन करने के लिए घृत, दुग्ध आदि रसों का त्याग करना। **विविक्तशय्यासन** – स्वाध्याय, ध्यान आदि की सिद्धि के लिए एकान्त तथा पवित्र स्थान में बैठना सोना। **कायक्लेश** – शरीर से ममत्व न रखकर आतापन योग आदि धारण करना। ये बाह्य तप द्रव्यों की अपेक्षा से होते हैं तथा बाह्य में सबके देखने में आते हैं, इसलिए बाह्य तप कहे जाते हैं।

'आभ्यन्तर तप के भेद'

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्॥ 20॥

अर्थः– **प्रायश्चित्त**– प्रमाद अथवा अज्ञान से लगे दोषों की शुद्धि करना **विनय** – पूज्य पुरुषों का आदर करना **वैयावृत्य** – शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा करना। **स्वाध्याय**– ज्ञान की भावना में अनालस भाव स्वाध्याय है। **व्युत्सर्ग**– उभय–परिग्रह का त्याग व्युत्सर्ग है। **ध्यान**– एक अर्थ में मन को लगाना ध्यान है।

विशेषार्थ – प्रायश्चित्त के नौ, विनय के चार, वैयावृत्य के दस, स्वाध्याय के पाँच और व्युत्सर्ग के दो भेद हैं। इनके भेद अग्रिम सूत्रों में कहे जाते हैं।

'आभ्यन्तर तपों के उत्तर भेद'

नव–चतुर्दश–पञ्च–द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्॥ 21॥

अर्थः– ध्यान से पहले के पाँच तपों के क्रम से 9, 4, 10,5 और 2 भेद हैं।

'प्रायश्चित्त तप के भेद'

आलोचना–प्रतिक्रमण–तदुभय–विवेक–व्युत्सर्ग–तपश्छेद–परिहारोप–स्थापनाः॥ 22॥

अर्थः– आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापन ये नौ प्रायश्चित्त तप के भेद हैं। **आलोचना** – गुरु से अपना प्रमाद निवेदन करना। **प्रतिक्रमण** – लगे दोषों पर पश्चात्ताप करना। **तदुभय** – आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करना। **विवेक** – संसक्त आहार तथा उपकरणों का नियमित समय तक त्याग

करना। **व्युत्सर्ग** – कुछ समय के लिए कायोत्सर्ग करना **तप** – उपवासादि करना। **छेद** – एक दिन, एक पक्ष, महीना आदि की दीक्षा का भंग करना। **परिहार** – कुछ समय के लिए संघ से पृथक् कर देना। **उपस्थापन** – पुरानी सम्पूर्ण दीक्षा का छेद कर फिर से नवीन दीक्षा देना। यह प्रायश्चित्त संघ के आचार्य देते हैं मुनि नहीं।

'विनय तप के चार भेद'

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ 23 ॥

अर्थः– **ज्ञानविनय** – आदरपूर्वक योग्यकाल में शास्त्र पढ़ना, अभ्यास करना आदि, **दर्शनविनय** – शंका, कांक्षा आदि दोष रहित सम्यग्दर्शन को धारण करना, **चारित्रविनय** – चारित्र को निदोष रीति से पालना और **उपचारविनय** – आचार्य आदि पूज्य पुरुषों को देखकर खड़े होना, नमस्कार करना आदि। ये चार विनयतप के भेद हैं।

'वैयावृत्य तप के दश भेद'

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥ 24 ॥

अर्थः– आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इन 10 प्रकार के मुनियों की सेवा करना, सो वैयावृत्य 10 प्रकार का है। **आचार्य** – जो मुनि पञ्चाचार का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरों को आचरण कराते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं। **उपाध्याय** – जिनके पास शास्त्रों का अध्ययन किया जाता हो, वे उपाध्याय कहलाते हैं। **तपस्वी** – महान् उपवास करने वाले साधुओं को तपस्वी कहते हैं। **शैक्ष** – शास्त्र के अध्ययन में तत्पर–मुनि शैक्ष कहलाते हैं। **ग्लान** – रोग से पीड़ित मुनि ग्लान कहलाते हैं। **गण** – वृद्ध मुनियों के अनुसार चलने वाले मुनियों के समुदाय को गण कहते हैं। **कुल** – दीक्षा देने वाले आचार्य के शिष्यों को कुल कहते हैं। **संघ** – ऋषि, यति, मुनि, अनगार इन चार प्रकार के मुनियों के समूह को संघ कहते हैं। **साधु** – जिनने बहुत काल से दीक्षा ग्रहण की है उन्हें साधु कहते हैं। **मनोज्ञ** – लोक में जिनकी प्रशंसा बढ़ रही हो, उन्हें मनोज्ञ कहते हैं।

'स्वाध्याय तप के पाँच भेद'

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ 25 ॥

अर्थः- **वाचना** - निर्दोष ग्रन्थ को, उसके अर्थ को तथा दोनों को भव्य जीवों को श्रवण करना, **पृच्छना** - संशय को दूर करने के लिए अथवा कृत निश्चय को दृढ़ करने के लिए प्रश्न पूछना, **अनुप्रेक्षा** - जाने हुए पदार्थ का बार-बार चिन्तवन करना, **आम्नाय** - निर्दोष उच्चारण करते हुए पाठ करना और **धर्मोपदेश** - धर्म का उपदेश करना। ये पाँच स्वाध्याय तप के भेद हैं।

'व्युत्सर्ग तप के दो भेद'

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ 26 ॥

अर्थः- **बाह्योपधि व्युत्सर्ग** - धन धान्यादि बाह्य पदार्थों का त्याग करना और **आभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग** - क्रोध, मान आदि खोटे भावों का त्याग करना। ये दो भेद व्युत्सर्ग तप के हैं।

'ध्यान तप का लक्षण'

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्॥ 27 ॥

अर्थः- उत्तम संहनन वाले का अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त एकाग्रता से चिन्ता का रोकना, ध्यान है। **भावार्थ** - किसी एक विषय में चित्त को रोकना सो ध्यान हैं। वह उत्तम संहनन धारी जीवों के ही होता है और एक पदार्थ का ध्यान अन्तर्मुहूर्त से अधिक समय तक नहीं होता।

'ध्यान के भेद'

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि॥ 28 ॥

अर्थः- आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यान के चार भेद हैं।

'धर्म्य और शुक्लध्यान का फल'

परे मोक्षहेतू॥ 29 ॥

अर्थः- इनमें से धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण है। **नोट** - धर्म्यध्यान परम्परा से और शुक्लध्यान साक्षात् मोक्ष का कारण है। शुरु के आर्त और रौद्र ये दो ध्यान संसार के कारण हैं।

'आर्तध्यान का लक्षण और भेद'

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ 30 ॥

अर्थः- अनिष्ट पदार्थ का संयोग होने पर उसे दूर करने के लिए बार-बार विचार करना सो पहला अनिष्ट संयोगज नामक आर्तध्यान है।

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ 31 ॥

अर्थः- स्त्री, पुत्र आदि इष्ट जनों का वियोग होने पर उनके संयोग के लिए बार-बार चिन्ता करना सो दूसरा इष्ट वियोग नामक आर्तध्यान है।

वेदनायाश्च ॥ 32 ॥

अर्थः- रोगजनित पीड़ा का निरन्तर चिन्तवन करना सो तीसरा वेदना नामक आर्तध्यान है।

निदानं च ॥ 33 ॥

अर्थः- आगामी काल सम्बन्धी विषयों की प्राप्ति में चित्त को तल्लीन करना सो चौथा निदान नामक आर्तध्यान है।

'गुणस्थानों की अपेक्षा आर्तध्यान के स्वामी'

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ 34 ॥

अर्थः- वह आर्तध्यान अविरत अर्थात् आदि के चार गुणस्थान, देशविरत अर्थात् पंचम् गुणस्थान और प्रमत्तसंयत अर्थात् छठवें गुणस्थान में होता है। **नोट**- छठवें गुणस्थान में निदान नाम का आर्तध्यान नहीं होता है।

'रौद्रध्यान के भेद व स्वामी'

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ 35 ॥

अर्थः- हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षण से उत्पन्न हुआ ध्यान रौद्र ध्यान कहलाता है और वह अविरत तथा देशविरत (आदि के

पाँच) गुणस्थानों में होता है। **भावार्थ** – निमित्त के भेद से रौद्रध्यान चार प्रकार का होता है– **हिंसानन्दी** – हिंसा में आनन्द मानकर उसी के साधन जुटाने में तल्लीन रहना **मृषानन्दी** – असत्य बोलने में आनन्द मान कर उसी का चिंतवन करना, **चौर्यानन्दी** – चोरी में आनन्द मानकर उसी का चिन्तवन करना और **परिग्रहानन्दी** – परिग्रह की रक्षा की चिन्ता करना।

'धर्म्यध्यान का लक्षण व भेद'

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्॥ 36॥

अर्थः– आज्ञाविचय,अपायविचय,विपाकविचय और संस्थानविचय के लिए चिन्तवन करना, सो धर्म्यध्यान है। **भावार्थ** – धर्म्यध्यान के चार भेद हैं – **आज्ञाविचय** – आगम की प्रमाणता से अर्थ का विचार करना **अपायविचय** – संसारी जीवों के दुःख का तथा उससे छूटने के उपाय का चिन्तवन करना **विपाकविचय** – कर्म के फल का उदय का विचार करना **संस्थानविचय** – लोक के आकार का विचार करना। **स्वामी**– यह धर्म्यध्यान चौथे गुणस्थान से लेकर सप्तम् गुणस्थान तक श्रेणि चढ़ने के पहले तक होता है।

'शुक्लध्यान के स्वामी'

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः॥ 37॥

अर्थः– प्रारम्भ से पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क नामक दो शुक्लध्यान पूर्व ज्ञानधारी श्रुतकेवली के होते हैं। **नोट** – चकार से श्रुतकेवली के धर्म्यध्यान भी होता है।

परे केवलिनः॥ 38॥

अर्थः– अन्त के सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति, ये दो शुक्लध्यान सयोगकेवली और अयोगकेवली के होते हैं।

शुक्लध्यान के भेद

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि॥ 39॥

अर्थः– पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति; ये शुक्लध्यान के चार भेद हैं।

शुक्लध्यान के आलम्बन

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्॥ 40॥

अर्थः- शुक्लध्यान के चार भेद क्रम से तीन योग, एकयोग, काययोग और योगरहित जीवों के होते हैं अर्थात् पहला पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान मन, वचन, काय, तीनों योगों के धारक के होता है। दूसरा एकत्ववितर्क शुक्लध्यान तीन योगों में से किसी एक योग के धारक के होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान केवल काययोग के धारक के होता है। और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति योगरहित जीवों के होता है।

'आदि के दो शुक्लध्यानों की विशेषता'

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे॥ 41॥

अर्थः- आदि के दो शुक्लध्यान पूर्ण श्रुतज्ञानी के होते हैं तथा ये दोनों शुक्लध्यान वितर्क और विचार सहित हैं।

'एकत्ववितर्क शुक्लध्यान की विशेषता'

अवीचारं द्वितीयम्॥ 42॥

अर्थः- किन्तु दूसरा शुक्लध्यान वीचार से रहित है। **भावार्थ** - जिसमें वितर्क और विचार दोनों हों उसे पृथक्त्ववितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं और जो केवल वितर्क से सहित हो उसे एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं। सूक्ष्म काययोग के आलम्बन से जो ध्यान होता है,उसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान कहते हैं। जिसमें आत्मप्रदेशों में परिस्पन्द पैदा करने वाली श्वासोच्छ्वास आदि समस्त क्रियायें निवृत्त हो जाती हैं, रुक जाती हैं उसे व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक शुक्लध्यान कहते हैं।

'वितर्क का लक्षण'

वितर्कः श्रुतम्॥ 43॥

अर्थः- श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं।

'वीचार का लक्षण'

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः॥ 44॥

अर्थः– अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति/पलटने को वीचार कहते हैं। **अर्थ** – ध्यान योग्य द्रव्य या पर्याय। **व्यञ्जन** – वचन। **योग** – मन, वचन, काय की क्रिया। **संक्रांति** – परिवर्तन। **अर्थसंक्रान्ति** – अर्थ अर्थात् ध्यान करने योग्य पदार्थ को छोड़कर उसकी पर्याय को ध्यावे और पर्याय को छोड़कर द्रव्य को ध्यावे, सो अर्थसंक्रान्ति कहते हैं। **व्यञ्जनसंक्रांति** – श्रुत के एक वचन को छोड़कर अन्य का अवलम्बन करना और उसे छोड़ किसी अन्य का अवलम्बन करना, उसे व्यञ्जन संक्रान्ति कहते हैं। **योगसंक्रान्ति**– काययोग को छोड़कर मनोयोग या वचनयोग को ग्रहण कर और उन्हें छोड़कर किसी अन्य योग को ग्रहण करना, सो योगसंक्रान्ति है।

'पात्रों की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिक का वर्णन'

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येय गुणनिर्जराः ॥ 45 ॥

अर्थः– सम्यग्दृष्टि, पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक, विरत (मुनि), अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने वाला, दर्शनमोह का क्षय करने वाला, चारित्रमोह का उपशम करने वाला, उपशान्तमोह वाला, क्षपकश्रेणी चढ़ता हुआ, क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान और जिनेन्द्र भगवान् इन सबके अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त परिणाामों की विशुद्धता की अधिकता से आयुकर्म को छोड़कर प्रतिसमय क्रम से असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

'निर्ग्रन्थ साधुओं के भेद'

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ 46 ॥

अर्थः– पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ साधु हैं। **पुलाक** – जो उत्तरगुणों की भावना से रहित हों तथा किसी क्षेत्र व काल में मूलगुणों में भी दोष लगावें, उन्हें पुलाक कहते हैं। **बकुश** – जो मूलगुणों का निर्दोष पालन करते हैं परन्तु अपने शरीर व उपकरणादि की शोभा बढ़ाने की कुछ इच्छा रखते हैं, उन्हें बकुश कहते हैं। **कुशील** – ये मुनि दो प्रकार के होते हैं। प्रतिसेवना कुशील और कषाय

कुशील। **प्रतिसेवना कुशील** – जिनके उपकरण तथा शरीरादि से विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुण की परिपूर्णता है, परन्तु उत्तरगुणों में कुछ विराधना दोष हों, उन्हें प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। **कषाय कुशील** – जिन्होंने संज्वलन के सिवाय अन्य कषायों को जीत लिया है, उन्हें कषाय कुशील कहते हैं। **निर्ग्रन्थ** – जिनका मोहनीयकर्म क्षीण हो गया हो ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। **स्नातक** – समस्त घातिया कर्मों का नाश करने वाले केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं।

'पुलाकादि मुनियों में विशेषता'

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥47॥

अर्थः– उक्त मुनियों में संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगों के द्वारा भेदरूप से साध्य हैं। अर्थात् इन आठ अनुयोगों से पुलाक आदि मुनियों के विशेष भेद हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे नमवोऽध्यायः ॥ 9 ॥

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

दशम अध्याय

मोक्ष का वर्णन

‘केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण’

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्॥ 1 ॥

अर्थः– मोहनीयकर्म का क्षय होने से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीणकषाय नामक बारहवाँ गुणस्थान पाकर बाद में एक साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। **भावार्थ** – चार घातियाँ कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने पर केवलज्ञान होता है। **नोट** – घातियाँ कर्मों में सबसे पहले मोहनीयकर्म का क्षय होता है, इसलिए सूत्र में गौरव होने पर भी उसका पृथक् निर्देश किया है।

‘मोक्ष का लक्षण और कारण’

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ 2 ॥

अर्थः– बन्ध के कारणों का अभाव तथा निर्जरा के द्वारा ज्ञानावरणादि समस्त कर्म प्रकृतियों का अत्यन्त अभाव होना मोक्ष है। **भावार्थ** – आत्मा से समस्त कर्मों का सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है और वह संवर तथा निर्जरा के द्वारा प्राप्त होता है।

‘मोक्ष में कर्मों के सिवाय और किसका अभाव होता है ’

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ 3 ॥

अर्थः– मुक्तजीव के औपशमिक आदि भावों का तथा पारिणामिक भावों में से भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है।

‘मोक्ष में रहने वाले भाव’

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ 4 ॥

अर्थः– केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन भावों को छोड़ मोक्ष में अन्य भावों का अभाव हो जाता है। **विशेषार्थ** – मुक्त अवस्था में जीवत्व नामक पारिणामिकभाव और कर्मों के क्षय से

प्रकट होने वाले आत्मिकभाव रहते हैं। शेष का अभाव हो जाता है। जिन गुणों का अनन्तज्ञानादि के साथ सहभाव सम्बन्ध है, ऐसे अनन्तवीर्य, अनन्तसुख आदि गुण भी पाये जाते हैं।

'कर्मों का क्षय होने के बाद'

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्॥ 5 ॥

अर्थ:- समस्त कर्मों का क्षय होने के बाद मुक्तजीव लोक के अन्तभाव पर्यन्त ऊपर को जाते हैं।

'मुक्तजीव के ऊर्ध्वगमन में कारण'

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च॥6 ॥

अर्थ:- पूर्वप्रयोग (पूर्वसंस्कार) से, संगरहित होने से, कर्म-बन्धन के नष्ट होने से, तथा गति परिणाम अर्थात् ऊर्ध्वगमन का स्वभाव होने से मुक्तजीव ऊर्ध्वगमन करता है।

'उक्त चारों कारणों के क्रम से चार दृष्टान्त'

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखा-वच्च॥ 7 ॥

अर्थ:- मुक्तजीव कुम्भकार के द्वारा घुमाये हुए चाक की तरह पूर्वप्रयोग से ऊर्ध्वगमन करता है। जिस प्रकार कुम्भकार चाक को घुमाकर छोड़ देता है तब भी चक्र पहले के भरे हुए वेग के कारण घूमता रहता है। उसी प्रकार जीव भी संसार अवस्था में मोक्ष प्राप्ति के लिए बार-बार अभ्यास करता था। मुक्त होने पर यद्यपि उसका वह अभ्यास छूट जाता है, तथापि वह पहले के अभ्यास से ऊपर को जाता है। मुक्तजीव दूर हो गया है लेप जिसका ऐसे तूम्बे की तरह ऊपर को जाता है। तूम्बे पर जब तक मिट्टी का लेप रहता है, तब तक वह वजनदार होने से पानी में डूबा रहता है। पर ज्योंही उसकी मिट्टी गल जाती है, त्योंही वह पानी के ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार यह जीव जब तक कर्म लेप से सहित होता है तब तक संसार समुद्र में डूबा रहता है पर ज्योंही इसका कर्म लेप दूर होता है,

त्योंही वह ऊपर उठकर लोक के ऊपर पहुँच जाता है। मुक्तजीव कर्म बन्ध से मुक्त होने के कारण एरण्ड के बीज के समान ऊपर को जाता है। एरण्ड वृक्ष का सूखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिगी जिस प्रकार ऊपर-ऊपर को जाती है, उसी प्रकार यह जीव कर्मों का बन्धन दूर होने पर ऊपर को जाता है। मुक्तजीव स्वभाव से ही अग्नि की शिखा की तरह ऊर्ध्वगमन करता है। जिस प्रकार हवा के अभाव में अग्नि (दीपक आदिक) की शिखा ऊपर को जाती है उसी प्रकार कर्मों के बिना यह जीव भी ऊपर को जाता है।

'लोकाग्र के आगे नहीं जाने में कारण'

धर्मास्तिकायाभावात्॥ 8॥

अर्थः- धर्म-द्रव्य का अभाव होने से मुक्तजीव लोकाग्र के आगे अर्थात् अलोकाकाश में नहीं जाते। क्योंकि जीव और पुद्गलों का गमन धर्मद्रव्य की सहायता से ही होता है और अलोकाकाश में धर्मद्रव्य का अभाव है।

'मुक्त जीवों में भेद होने के कारण'

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः॥ 9॥

अर्थः- क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगों से सिद्धों में भेद साधने योग्य हैं। **क्षेत्र** - कोई भरतक्षेत्र से, कोई ऐरावतक्षेत्र से और कोई विदेहक्षेत्र से सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार क्षेत्र की अपेक्षा सिद्धों में भेद होता है। **काल** - कोई उत्सर्पिणीकाल में सिद्ध हुए हैं और कोई अवसर्पिणीकाल में। **गति** - कोई सिद्ध गति से और कोई मनुष्य गति से सिद्ध हुए हैं। **लिंग** - वास्तव में अलिंग से ही सिद्ध होते हैं। अथवा द्रव्यपुलिंग से ही सिद्ध होते हैं। भावलिंग की अपेक्षा तीनों लिंगों से मुक्त हो सकते हैं। **तीर्थ** - कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं कोई बिना तीर्थंकर

हुए सिद्ध होते हैं, कोई तीर्थंकर के काल में सिद्ध होते हैं और कोई तीर्थंकर के मोक्ष चले जाने के बाद उनके तीर्थ (आम्नाय) में सिद्ध हुए हैं। **चारित्र**- चारित्र की अपेक्षा कोई एक से अथवा कोई भूतपूर्वनय की अपेक्षा दो तीन चारित्र से मोक्ष (सिद्ध) हुए हैं। **प्रत्येक-बुद्धबोधित** - किसी ने स्वयं संसार से विरक्त होकर मोक्ष प्राप्त किया है और कोई किसी के उपदेश से। **ज्ञान** - कोई एक ही ज्ञान से और कोई भूतपूर्वनय की अपेक्षा से दो, तीन चार ज्ञान से सिद्ध हुए हैं। **अवगाहना** - कोई उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष से सिद्ध हुए हैं। कोई मध्यम अवगाहना से और कोई जघन्य अवगाहना, कुछ कम साढ़े तीन हाथ से सिद्ध हुए हैं। **अन्तर** - एक सिद्ध से दूसरे सिद्ध होने का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट से आठ समय है तथा विरहकाल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छः माह का होता है। **संख्या** - जघन्य से एक समय में एक ही जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्टता से 108 जीव सिद्ध हो सकते हैं। **अल्पबहुत्व** - समुद्र आदि जल क्षेत्रों से थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेहादि क्षेत्रों से अधिक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सिद्ध जीवों में बाह्य निमित्त की अपेक्षा कुछ भी भेद नहीं है।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रसमाप्तम्

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

इष्टोपदेशः

'मंगलाचरण'

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय, नमोऽस्तु परमात्मने॥ 1॥

अर्थः- **(यस्य)** जिन भगवान् को **(कृत्स्नकर्मणः)** समस्त कर्मों के **(अभावे)** नष्ट हो जाने पर **(स्वयं)** अपने आप **(स्वभावाप्तिः)** स्वभाव की प्राप्ति हो गई है **(तस्मै)** उन **(संज्ञानरूपाय)** अनन्तज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परमात्मा को **(नमः अस्तु)** नमस्कार हो।

'निमित्तोपादान से सिद्धि'

योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता॥ 2॥

अर्थः- **(योग्य)** अपने योग्य **(उपादान)** उपादान के **(योगेन)** मिलने से **(दृषदः)** जैसे स्वर्ण पाषाण को **(स्वर्णता)** स्वर्णपना प्रगट होता **(मता)** माना गया है, उसी तरह **(द्रव्यादि स्वादि)** सुद्रव्य सुक्षेत्र सुकाल आदि **(सम्पत्तौ)** कारण मिल जाने पर **(आत्मनः अपि)** संसारी आत्मा को भी **(आत्मता)** शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति होना **(मता)** माना गया है।

'व्रतों की सार्थकता'

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्बत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान्॥ 3॥

अर्थः- **(व्रतैः)** व्रतों के द्वारा **(दैवं पदं)** देव पद पाना **(वरम्)** अच्छा है (किन्तु) **(अव्रतैः)** अव्रतों द्वारा **(नारकम्)** नरक में उत्पन्न होना **(बत)** हाय **(वरं न)** अच्छा नहीं है, **(हि)** क्योंकि **(छायातपस्थयोः)** छाया में तथा धूप में बैठने वाले पुरुषों के समान **(प्रतिपालयतोः)** व्रत और पापाचरण के फलों में **(महान् भेदः)** बड़ा भारी अन्तर है।

'शिवपद भावों से स्वर्ग सहज ही'

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्द्धे किं स सीदति॥ 4॥

अर्थः- **(यत्र भावः)** जहाँ **(जो)** आत्मा के भाव **(शिवं दत्ते)** मोक्ष को देते हैं (तो उन भावों के द्वारा) **(द्यौः)** स्वर्ग पाना **(क्रियत् दूरवर्तिनी)** कितना दूर है? **(यः गव्यूतिं)** जो मनुष्य दो कोश तक **(आशु नयति)** शीघ्र अपने भार को ले जाता है **(स)** वह मनुष्य **(क्रोषार्द्धे)** आधा कोश ले चलने में **(किं सीदति)** क्या दुःखी होता है?

'स्वर्गसुख का कथन'

हृषीकजमनातंकं, दीर्घकालोपलालितम्।
नाकेनाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव॥ 5॥

अर्थः- **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम्)** देवों को **(हृषीकजं)** पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न **(अनातंकं)** निश्चिन्त **(दीर्घकाल)** दीर्घकाल तक **(उपलालितम्)** देव-देवियों की सेवा द्वारा प्राप्त **(सौख्यं)** सुख **(नाके)** स्वर्ग के **(नाकौकसाम्)** देवों की **(इव)** तरह ही मिलता है।

'इन्द्रिय सुख-दुःख भ्रान्तिमात्र'

वासना मात्रमेवैतत्, सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि॥ 6॥

अर्थः- **(देहिनाम्)** संसारी जीवों को **(एतत् सुखं)** यह इन्द्रिय सुख **(च)** और **(दुःखं)** दुःख **(वासना मात्रं एव)** कल्पना मात्र हैं **(तथा हि)** इसी से **(एते भोगा)** ये इन्द्रियों के भोग **(आपदि)** आपत्ति के समय **(रोगा इव)** रोगों की तरह **(उद्वेजयन्ति)** व्याकुल करते हैं।

'मोहावृतज्ञान वस्तु-स्वरूप को नहीं जानता'

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः॥ 7॥

अर्थः- **(हि)** नियम से **(मोहेन)** मोह से **(संवृतं ज्ञानं)** ढका

हुआ ज्ञान **(स्वभावं)** आत्म–स्वभाव को **(न लभते)** नहीं जान पाता है **(यथा)** जिस तरह के **(मदनकोद्रवैः)** नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्तः पुमान्)** प्रमत्त हुआ मनुष्य **(पदार्थानां)** पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता।

'मोही पर पदार्थ को अपना मानता है'

वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते॥ 8॥

अर्थः– (वपुः धनं) शरीर, धन **(गृहं दाराः)** गृह, स्त्रियाँ **(पुत्राः मित्राणि)** पुत्र, मित्र और **(शत्रवः)** शत्रु **(सर्वथा)** सब तरह से **(अन्य)** अपने आत्मा से अन्य **(स्वभावानि)** स्वभाव वाले हैं परन्तु **(मूढः)** मोही प्राणी इन्हें **(स्वानि)** अपने **(प्रपद्यते)** समझता है।

'संसारीजीव का परिवार कैसा है'

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे॥ 9॥

अर्थः– (नगे–नगे) वृक्ष–वृक्ष पर **(दिग्देशेभ्यः)** दिशाओं और देशों से **(एत्य)** आकर **(खगाः)** पक्षी (रात के समय) **(संवसन्ति)** ठहर जाते हैं तथा **(प्रगे–प्रगे)** प्रातः काल **(स्वस्वकार्यवशात्)** अपने–अपने कार्य के लिए **(देशे)** भिन्न–भिन्न देश में **(दिक्षु यान्ति)** दिशाओं में उड़कर चले जाते हैं।

'अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ'

विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यंगुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते॥ 10॥

अर्थः– (विराधकः) अपकार करने वाला मनुष्य **(हन्त्रे जनाय)** मारने वाले मनुष्य के लिए **(कथं)** क्यों **(परिकुप्यति)** क्रोध करता है **(त्र्यंगुलं)** तीन अंगुले **(फावड़े)** आदि का भूमि पर **(पातयन्)** खोदने के लिए गिरता हुआ मनुष्य **(पद्भ्यां)** पैरों के द्वारा **(दंडेन)** लकड़ी के बैंत द्वारा **(पात्यते)** गिराया **(झुकाया)** जाता है।

'संसार में जीव किस तरह घूमता है'

रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥ 11॥

अर्थः- (**जीवः**) संसारी प्राणी (**संसाराब्धौ**) इस संसार-समुद्र में (**अज्ञानात्**) अज्ञान से (**सुचिरं**) अनादिकाल से (**रागद्वेषद्वयी-दीर्घ**) राग-द्वेषरूपी दो मथानी की (**नेत्राकर्षण-कर्मणा**) रस्सी को खींचने की तरह (**भ्रमति असौ**) घूमता है।

'कोई न कोई आपत्ति मौजूद रहती'

विपद्भवपदावर्ते, पदिके वातिबाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुरा विपदः पुरः॥ 12॥

अर्थः- (**भवपदावर्ते**) संसाररूपी पैर से चलने वाले घटी यन्त्र में (**पदिका इव**) अरहट के डण्डे के समान (**यावत्**) जब तक (**विपद्**) एक विपत्ति (**अतिबाह्यते**) समाप्त की जाती है (**तावत्**) तब तक (**अन्याःप्रचुराः**) दूसरी बहुत-सी (**विपत्तयः**) विपत्तियाँ (**पुरः भवन्ति**) सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

'हर हालत में धन दुःखकर'

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थं मन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा॥ 13॥

अर्थः- (**दुरर्ज्येन**) बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले (**नश्वरेण**) विनश्वर तथा (**असुरक्ष्येण**) सुरक्षित न रहने वाले (**धनादिना**) धन, पुत्रादिकों के द्वारा (**स्वस्थं**) अपने आपको स्वस्थ (सुखी) (**मन्यः**) मानने वाला (**कः अपि जनः**) कोई भी मनुष्य (**सर्पिषा**) घी खाकर (**ज्वरवान् इव**) ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

'संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता'

विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमानमृगाकीर्णवनान्तरतरुस्थवत्॥ 14॥

अर्थः- **(मृगाकीर्ण)** मृग आदि जीवों से भरे तथा **(दह्यमान)** फैली हुई अग्नि से जलते हुये **(वनान्तर)** वन में **(तरुस्थवत्)** किसी वृक्ष पर बैठे हुये मनुष्य के समान **(मूढः)** मूर्ख प्राणी **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिं इव)** विपत्ति के समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

'लोभी को धन इष्ट है'

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम्॥ 15 ॥

अर्थः- **(कालस्य निर्गमम्)** समय के व्यतीत होने को **(आयुर्वृद्धि)** आयु के क्षय और **(क्षयोत्कर्षहेतुं)** धन की वृद्धि का कारण **(वांछतां धनिनां)** मानने वाले धनवान् पुरुषों को **(सुतरां)** अच्छी तरह **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(धनं इष्टम्)** धन का पाना इष्ट है।

'त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं'

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पंकेन, स्नास्यामीति विलिम्पति॥ 16 ॥

अर्थः- **(यः अवित्तः)** जो निर्धन मनुष्य **(त्यागाय)** दान करने के लिए तथा **(श्रेयसे)** अपने सुख **(हित)** के लिए **(वित्तम् संचिनोति)** धन को एकत्रित करता है **(सः)** वह मनुष्य **(स्नास्यामि)** मैं स्नान करूँगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पंकेन विलिम्पति)** कीचड़ से लीपता है।

'हर स्थिति में भोग कष्टकर'

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्ति प्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं कः सेवते सुधीः॥ 17 ॥

अर्थः- **(आरम्भे)** प्रारम्भ में **(तापकान्)** सन्ताप देने वाले **(प्राप्तौ)** प्राप्त हो जाने पर **(अतृप्ति)** तृष्णा **(प्रतिपादकान्)** बढ़ाने

वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटने योग्य **(कामान्)** विषय भोगों को **(कः सुधीः)** कौन बुद्धिमान पुरुष **(कामं)** बड़ी रुचि से **(सेवते)** सेवन करता है?

'अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ'

भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा॥ 18॥

अर्थः- **(यत्संगं प्राप्य)** जिसका संयोग पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** हो जाते हैं तथा **(स कायः)** वह शरीर **(सन्ततापायः)** सदा विनाशीक बना रहता है, अतः **(तदर्थं)** उसको पवित्र करने की **(प्रार्थना वृथा)** कामना व्यर्थ है।

'उपकारक-अपकारक'

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारम्॥ 19॥

अर्थः- **(यत् जीवस्य)** जो कार्य आत्मा का **(उपकाराय)** उपकार करने वाला है **(तत्)** वह **(देहस्य अपकारकम्)** शरीर का अपकार करने वाला है, तथा **(यत्)** जो **(देहस्य उपकाराय)** शरीर का उपकार करने वाला है **(तत्)** वह **(जीवस्य अपकारकम्)** आत्मा का अपकार करने वाला है।

'विवेकी किसमें आदर करें'

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य, इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥ 20॥

अर्थः- **(इतः दिव्यः)** इधर तो दिव्य **(चिन्तामणिः)** चिन्तामणि रत्न और **(इतः)** उधर **(पिण्याकखण्डकम्)** खली का टुकड़ा मिलता है **(चेत् उभे)** यदि दोनों ही **(ध्यानेन)** ध्यान के द्वारा **(लभ्ये)** प्राप्त होते हैं तो **(विवेकिनः)** बुद्धिमान मनुष्य **(क्व)** कहाँ पर (किस वस्तु में) **(अद्रियन्तां)** आदर करें?

'आत्मा का स्वरूप'

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः॥ 21॥

अर्थः- **(आत्मा)** यह आत्मा **(स्वसंवेदन)** आत्म-अनुभव द्वारा **(सुव्यक्तः)** स्पष्ट प्रगट होता है (जाना जाता है) **(तनुमात्रः)** शरीर के बराबर है **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्त)** अनन्त **(सौख्यवान्)** सुख वाला है तथा **(लोकालोक)** लोक और अलोक को **(विलोकनः)** जानने देखने वाला है।

'आत्मध्यान करने का उपाय'

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्॥ 22॥

अर्थः- **(आत्मवान्)** आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रियों को **(संयम्य)** बाहरी विषयों से रोककर **(चेतसः)** चित्त की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपने आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मना एव)** अपने आत्मा द्वारा ही **(आत्मानं)** अपने आत्मा का **(ध्यायेत्)** चिन्तवन करें।

'जो है उसी का दान'

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥ 23॥

अर्थः- **(अज्ञानोपास्तिः)** अज्ञानी की सेवा उपासना **(अज्ञानं)** अज्ञान **(ददाति)** देती है और **(ज्ञानिसमाश्रयः)** ज्ञानियों की सेवा उपासना **(ज्ञानं)** ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि **(इदम् वचः)** यह बात **(सुप्रसिद्धम्)** अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि **(यस्य)** जिसके पास **(यत्तु अस्ति)** जो कुछ होता है, उसी को वह **(ददाति)** देता है।

'आत्मध्यान का फल'

परीषहद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा॥ 24॥

अर्थः- (**अध्यात्मयोगेन**) आत्म का चिन्तवन करने से (**परीषहादि**) परीषह आदि का (**अविज्ञानात्**) अनुभव नहीं होता, जिससे (**आस्रवस्य**) आस्रव को (**निरोधिनी**) रोकने वाली (**कर्मणात्**) कर्मों की (**निर्जरा**) निर्जरा (**आशु जायते**) शीघ्र होने लगती है।

'एकत्व में सम्बन्ध नहीं'

कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, सम्बन्धः कीदृशस्तदा॥ 25॥

अर्थः- (**अहम्**) मैं (**कटस्य**) चटाई का (**कर्त्ता**) बनानेवाला हूँ (**इति**) इस प्रकार (**सम्बन्धः**) कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध (**द्वयोर्द्वयोः**) भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में (**स्यात्**) होता है, परन्तु (**यदा ध्यानं**) जब ध्यान और (**ध्येयं**) ध्येय (**आत्म एव**) आत्मा ही हो (**तदा**) तब (**कीदृशः**) कैसा (**सम्बन्धः**) सम्बन्ध हो सकता है?

'बन्ध और मुक्ति के कारण'

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥ 26॥

अर्थः- (**सममः**) ममता भाव वाला और (**निर्ममः**) ममता रहित (**जीवः**) जीव (**क्रमात्**) क्रम से (**बध्यते**) कर्मों से बँधता तथा (**मुच्यते**) छूटता है (**तस्मात्**) इस कारण (**सर्वप्रयत्नेन**) सब प्रयत्न से (**निर्ममत्वं**) निर्ममतारूप का (**विचिन्तयेत्**) चिन्तवन करे।

'निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार'

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥ 27॥

अर्थः- (**अहम् एकः**) मैं एक हूँ (**निर्ममः**) ममता रहित (**शुद्धः**) शुद्ध हूँ (**ज्ञानी**) ज्ञानी हूँ तथा (**योगीन्द्रगोचरः**) श्रेष्ठ योगियों द्वारा जाना जाता हूँ (**सर्वे अपि**) सभी (**संयोगजा भावा**) संयोग से उत्पन्न होने वाले पदार्थ (**मत्तः**) मुझसे (**सर्वथा**) सब तरह से (**बाह्याः**) बाहर हैं, भिन्न हैं।

'सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा'

दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ 28 ॥

अर्थः- (**इह**) इस संसार में (**देहिनाम्**) जीवों को (**संयोगात्**) संयोग से (**दुःखसन्दोह**) दुःखसमूह का (**भागित्वं**) भागीदार बनना पड़ता है (**ततः**) इस कारण (**एनं सर्व**) इस सब (**शरीर और कर्म के**) संयोग को (**मनोवाक्काय**) मन वचन काय की (**कर्मभिः**) क्रिया से (**त्यजामि**) छोड़ता हूँ।

'पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं'

न मे मृत्युः कुतो भीति र्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ॥ 29 ॥

अर्थः- (**मे**) मेरी (**मृत्युः न**) मृत्यु नहीं है, इस कारण (**मे**) मुझे (**कुतः भीतिः**) कहाँ से भय है? (**मे**) मेरे (**व्याधिः न**) कोई रोग नहीं है, इसलिए (**कुतः व्यथा**) कहाँ से दुःख है (**अहम्**) मैं (**बालः न**) बालक नहीं हूँ (**वृद्धः न**) बूढ़ा नहीं हूँ (**युवा न**) जवान नहीं हूँ (**एतानि**) यह सब बातें (स्थितियाँ)(**पुद्गले**) पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

'ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि'

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥ 30 ॥

अर्थः- (**सर्वे अपि**) सभी (**पुद्गलाः**) पुद्गल परमाणु (**मया मोहात्**) मैंने मोह से (**मुहुः**) बार-बार (**भुक्तोज्झिता**) भोगकर छोड़ दिये हैं, फिर (**अद्य**) आज अब (**उच्छिष्टेषु इव**) जूठन के समान (**तेषु**) उन पुद्गलों में (**विज्ञस्य**) बुद्धिमान (**मम**) मेरी (**का स्पृहा**) क्या अभिलाषा है?

'सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं'

कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥ 31॥

अर्थः- **(कर्म)** कर्म **(कर्महिताबन्धि)** अपने हितरूप साथी कर्मों को ही बाँधता है, तथा **(जीवः)** आत्मा **(जीवहितस्पृहः)** अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है **(स्वस्व)** अपने-अपने **(प्रभावभूयस्त्वे)** शक्तिशाली प्रभाव के होने पर **(को वा स्वार्थ)** कौन-सा व्यक्ति अपना हित **(न वाञ्छति)** नहीं चाहता।

'आत्मोपकारी बनने का उपदेश'

परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत् ॥ 32॥

अर्थः- **(परोपकृतिं)** पर के उपकार करने को **(उत्सृज्य)** त्याग करके **(स्वोपकार)** अपने उपकार करने में **(परः भव)** तत्पर हो जा **(दृश्यमानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** इस जगत् की तरह **(अज्ञः)** अज्ञानी जीव **(परस्य)** अन्य पदार्थ का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

'भेदविज्ञान का उपाय और फल'

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥ 33॥

अर्थः- **(यः)** जो (मनुष्य) **(गुरूपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से तथा **(संवित्तेः)** आत्मज्ञान से **(स्वपरान्तरम्)** स्व और पर पदार्थों के अन्तर को **(जानाति)** जानता है **(सः)** वह **(निरन्तरम्)** सदा **(मोक्ष-सौख्यं)** मोक्ष के सुख को **(जानाति)** जानता है।

'निजात्मा ही गुरु है'

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ 34॥

अर्थः- **(स्वस्मिन्)** अपने आत्मा में **(सत्)** प्रशस्त (मोक्षसुख सम्बन्धी) **(अभिलाषित्वात्)** रमण करने का इच्छुक होने से **(अभीष्ट)** अपने परमप्रिय पदार्थ आत्मा का **(ज्ञापकत्वतः)** जानने वाला होने से तथा **(स्वयं हित)** अपने आप अपने हित का **(प्रयोक्तृत्वात्)** प्रयोग करने वाला होने से **(आत्मा एव)** अपना आत्मा ही **(आत्मनः गुरुः)** अपना गुरु है।

'निमित्त सहायक मात्र है'

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्॥35॥

अर्थः- **(अज्ञः)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** विद्वत्ता **(न आयति)** नहीं पा लेता और **(विज्ञः)** विद्वान **(अज्ञत्वं)** अज्ञानता **(न ऋच्छति)** नहीं पा लेता **(अन्यः)** अन्य (अध्यापक गुरु आदि) **(तु)** तो **(गतेः)** चलने में **(धर्मास्तिकायवत्)** धर्मास्तिकाय की तरह **(निमित्तमात्रम्)** केवल सहायक मात्र हैं।

'निजात्म चिन्तन कौन, कैसे करें'

अभवच्चित्तविक्षेप, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥36॥

अर्थः- **(चित्तविक्षेपः)** चित्त में क्षोभ **(अभवत्)** नहीं है जिसके **(तत्त्व)** तत्त्व विचार में **(संस्थितः)** जिसकी बुद्धि स्थिर है **(योगी)** ऐसा योगी (मुनि) **(एकान्ते)** निर्जन स्थान में **(अभियोगेन)** आलस्य त्यागकर (सावधानी से) **(निजात्मनः)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** स्वरूप-चिन्तन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

'आत्म-संवित्ति की पहचान'

यथा यथा समायति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥37॥

अर्थः- **(यथा-यथा)** जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं**

तत्त्वं) उत्तम तत्त्व (शुद्धात्म-स्वरूप) **(समायाति)** समाविष्ट होता है, **(तथा-तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभाः अपि)** सुलभता से प्राप्त हुए भी **(विषयाः)** विषय-भोग **(न रोचन्ते)** नहीं रुचते हैं।

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥ 38॥

अर्थः- (यथा-यथा) जैसे-जैसे **(सुलभा)** सुलभ **(विषयाः अपि)** विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को रुचते नहीं हैं **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** अपने ज्ञान में **(उत्तमं तत्त्वं)** श्रेष्ठ आत्मा का स्वरूप **(समायाति)** प्रतिभास होने लगता है।

'अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति'

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते॥ 39॥

अर्थः- (निश्शेषं) जब समस्त **(जगत्)** संसार **(इन्द्रजालोपमं)** इन्द्रजाल की तरह (निःसार) **(निशामयति)** दिखाई देता है, तब **(आत्मलाभाय)** अपना आत्म स्वरूप पाने के लिए **(स्पृहयति)** अभिलाषा होती है। फिर **(अन्यत्र)** अन्यत्र किसी बात में **(गत्वा)** जाकर (मन) **(अनुतप्यते)** सन्तप्त **(व्याकुल)** होता है।

'योगी की निर्जन प्रियता'

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्॥ 40॥

अर्थः- (निर्जनं) निर्जन स्थान **(जनितादरः)** जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा अनुभवी पुरुष **(एकान्त)** एकान्त में **(संवासं इच्छति)** रहना चाहता है **(निजकार्यवशात्)** अपने किसी कार्यवश उसे यदि **(किञ्चित् उक्त्वा)** कुछ कहना भी हो तो वह कह करके **(द्रुतम्)** शीघ्र ही उसे **(विस्मरति)** भूल जाता है।

'स्वरूपनिष्ठ योगी की विशेषता'

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति॥ 41॥

अर्थः- **(स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु)** आत्मतत्त्व में स्थिर रहने वाला तो **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न गच्छति)** नहीं चलता है और **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

'योगी की निर्विकल्प दशा'

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः॥ 42॥

अर्थः- **(योगपरायणः)** आत्मध्यान में लगा हुआ **(योगी)** योगी (साधक) **(इदम्)** यह **(किम्)** क्या है **(कीदृशं)** कैसा है **(कस्य)** किसका है **(कस्मात्)** किस कारण से है **(चैव)** और **(क्व)** कहाँ है **(इति)** इस तरह **(अविशेषयन्)** विशेष विचार न करता हुआ **(स्वदेहं अपि)** अपने शरीर को भी **(न अवैति)** नहीं जानता है।

'जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता है'

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति॥ 43॥

अर्थः- **(यः)** जो जीव **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन् आस्ते)** रहता है **(सः तत्र)** वह उस स्थान पर **(रतिम् कुरुते)** प्रीति करता है और **(यः यत्र)** जो जीव जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(सः)** वह **(तस्मात्)** उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्यत्र कहीं **(न गच्छति)** नहीं जाता है।

'साम्यभावी योगी छूटता है'

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बद्ध्यते न विमुच्यतेः॥44॥

अर्थः- **(तद्विशेषाणाम्)** उन शरीर आदि पर पदार्थों के विशेषणों

को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजानकर **(जायते)** बन जाता है **(च)** और **(तद्विशेषः)** उन विशेषताओं को **(अज्ञात)** न समझने वाला **(तु)** तो **(न बद्ध्यते)** कर्म से नहीं बँधता है **(विमुच्यते)** बल्कि छूट जाता है।

'सुख-दुःख के आधार'

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः॥ 45॥

अर्थः- **(परः)** अन्य पदार्थ **(परः)** आत्मा से अन्य हैं अतः **(ततः)** उस अन्य पदार्थ से **(दुःखम्)** दुःख होता है और **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(आत्मा)** अपना आत्मा है अतः **(ततः)** उस आत्मा से **(सुखम्)** सुख होता है **(अत एव)** इसी कारण **(महात्मानः)** महान् पुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा को प्राप्त करने के लिए **(कृतोद्यमाः)** प्रयत्न किया था।

'पर से अनुराग का फल'

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति॥ 46॥

अर्थः- **(यः)** जो **(अविद्वान्)** मूर्ख (बहिरात्मा) **(पुद्गल-द्रव्यम्)** पुद्गलद्रव्य को **(अभिनन्दति)** आत्मरूप से श्रद्धान करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्मा प्राणी का **(तत्)** वह शरीर आदि पुद्गलद्रव्य **(जातु)** कभी भी **(चतुर्गतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं न मुञ्चति)** साथ नहीं छोड़ता।

'स्वरूपनिष्ठता का फल'

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥ 47॥

अर्थः- **(व्यवहार)** व्यवहारचारित्र से **(बहिःस्थितेः)** बाहर ठहरे हुए **(आत्मानुष्ठान)** आत्मध्यान में **(निष्ठस्य)** लवलीन **(योगिनः)**

मुनि के (**योगेन**) आत्मध्यान के द्वारा (**कश्चित्**) कोई अपूर्व (**परमानन्दः**) परम आनन्द (**जायते**) उत्पन्न होता है।

'उस आनन्द का कार्य'

आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दु:खेष्वचेतनः ॥ 48 ॥

अर्थः- (**आनन्दः**) आत्म-ध्यान का आनन्द (**अनारतम्**) निरन्तर (**उद्धं**) बहुत से (**कर्मेन्धनम्**) कर्मरूपी ईंधन को (**निर्दहति**) जलाता है, तथा (**बहिर्दु:खेष्वचेतनः**) बाहरी परीषह उपसर्गादिक दुःख से अनभिज्ञ (**असौ योगी**) वह आत्मध्यानी योगी (**न खिद्यते**) खेदखिन्न (**दुःखी**) नहीं होता।

'मुमुक्षु क्या करे'

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥ 49॥

अर्थः- (**अविद्याभिदुरं**) अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने वाली (**परं ज्योतिः**) आत्मा की उत्कृष्ट ज्योति (**महत् ज्ञानमयं**) महान् ज्ञानरूप है (**मुमुक्षुभिः**) मोक्ष अभिलाषी पुरुषों को (**तत् प्रष्टव्यं**) उसी के विषय में पूछना चाहिए (**तत् एष्टव्यं**) उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिये तथा (**तद् द्रष्टव्यं**) उसी का दर्शन करना चाहिए।

'तत्त्व का सार'

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित् ,सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥ 50 ॥

अर्थः- (**जीवःअन्यः**) जीव अन्य है (**च**) और (**पुद्गलः अन्यः**) पुद्गल अन्य है (**इति**) इस प्रकार (**असौ**) यह (**तत्त्वसंग्रहः**) तत्त्व का सार है, इसके अलावा (**यत्**) जो (**अन्यत् किञ्चित्**) कुछ अन्य बात इस विषय में (**उच्यते**) कही जाती है (**सः**) वह (**तस्य एव विस्तरः**) उसका ही विस्तार है।

'इष्टोपदेश ग्रन्थ के अध्ययन का फल'

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः॥ 51॥

अर्थः- (**धीमान् भव्यः**) बुद्धिमान् भव्यपुरुष (**इति**) इस प्रकार (**इष्टोपदेशं**) इष्टोपदेश ग्रन्थ को (**सम्यक् अधीत्य**) अच्छी तरह अध्ययन करके (**स्वमतात्**) अपने आत्मज्ञान से (**मानापमान**) सम्मान और अपमान के (**समतां**) समता भाव को (**वितन्य**) फैला करके (**मुक्ताग्रहः**) आग्रह को त्यागता हुआ (**सजने**) गाँव आदि में (**वा**) अथवा (**वने**) निर्जन वन में (**विनिवसन्**) रहता हुआ (**निरुपमां**) अनुपम (**मुक्तिश्रियम्**) मुक्तिलक्ष्मी को (**उपयाति**) प्राप्त करता है।

इति पूज्यपादाचार्यकृत इष्टोपदेशः।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

दव्वसंगहो

'मंगलाचरण'

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा॥ 1॥

अन्वयार्थ :- **(जेण)** जिन **(जिणवरवसहेण)** जिनवर ऋषभदेव ने **(जीवंअजीवं)** जीव और अजीव **(दव्वं)** द्रव्य का **(णिद्दिट्ठं)** वर्णन किया है, ऐसे **(देविंदविंदवंदं)** देवों और इन्द्रसमूह से वन्दनीय **(तं)** उन प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को **(अहं)** मैं नेमिचन्द्र आचार्य **(सव्वदा)** सदा **(सिरसा)** शिर नमाकर **(वंदे)** नमस्कार करता हूँ।

'जीवद्रव्य के नव अधिकारों के नाम'

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥ 2॥

अन्वयार्थ :- **(सो)** वह जीव **(जीवो)** जीनेवाला, **(उवओगमओ)** उपयोगमयी, **(अमुत्ति)** अमूर्तिक, **(कत्ता)** कर्त्ता, **(सदेहपरिमाणो)** शरीर के बराबर रहने वाला, **(भोक्ता)** भोक्ता, **(संसारत्थो)** संसार में रहने वाला, **(सिद्धो)** सिद्ध तथा **(विस्ससोड्ढगई)** स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

'जीवत्वाधिकार का लक्षण'

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय-बलमाउ-आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो, णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स॥ 3॥

अन्वयार्थ :- **(जस्स)** जिसके **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(तिक्काले)** भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल में **(इंदिय)** इन्द्रिय, **(बलं)** बल **(आउ)** आयु **(य)** और **(आणपाणो)** श्वासोच्छ्वास; **(एदे)** ये **(चदुपाणा)** चार प्राण होते हैं **(दु)** और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से जिसके **(चेदणा)** चेतना हो **(सो)** वह **(जीवो)** जीव है।

'उपयोग अधिकार और दर्शनोपयोग के भेद'

उवओगो दुवियप्पो, दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं॥4॥

अन्वयार्थ :- (**उवओगो**) उपयोग (**दुवियप्पो**) दो प्रकार का है (**दंसणं**) एक दर्शनोपयोग (**च**) और (**णाणं**) दूसरा ज्ञानोपयोग (**दंसणं**) दर्शनोपयोग (**चक्खु अचक्खू**) चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन (**ओही**) अवधिदर्शन (**अध**) और (**केवलदंसणं**) केवलदर्शन इस प्रकार (**चदुधा**) चार प्रकार का (**णेयं**) जानना चाहिए।

'ज्ञानोपयोग के भेद'

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जवकेवलमवि, पच्चक्खपरोक्खभेयं च॥ 5॥

अन्वयार्थ :- (**णाणं**) ज्ञानोपयोग (**मदिसुदओही अणाणणाणाणि**) मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, अवध्यज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान (**अवि**) और (**मणपज्जव**) मनःपर्ययज्ञान तथा (**केवलं**) केवलज्ञान इस तरह (**अट्ठवियप्पं**) आठ प्रकार का होता है (**च**) और (**पच्चक्खपरोक्खभेयं**) प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दो भेद रूप होता है।

'जीवद्रव्य का लक्षण'

अट्ठ-चदुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं॥ 6॥

अन्वयार्थ :- (**ववहारा**) व्यवहारनय से (**अट्ठचदुणाणदंसण**) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन (**सामण्णं**) सामान्य रूप से (**जीवलक्खणं**) जीव का स्वरूप (**भणियं**) कहा गया है (**पुण**) और (**सुद्धणया**) शुद्ध निश्चय से (**सुद्धं**) शुद्ध (**दंसणं**) दर्शन और (**णाणं**) ज्ञान जीव का स्वरूप कहा गया है।

'अमूर्तित्व अधिकार'

वण्णरसपंचगंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो॥ 7॥

अन्वयार्थ :- **(णिच्छया)** निश्चयनय से **(जीवे)** जीवद्रव्य में **(वण्णरसपंच)** रक्त, कृष्ण, श्वेत, पीत और नील ये पाँच वर्ण; तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और चरपरा ये पाँच रस **(दो गंधा)** सुगन्ध और दुर्गन्ध ये दो गन्ध तथा **(अट्ठफासा)** गुरु,लघु, कड़ा, नरम, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष ये आठ स्पर्श **(णो)** नहीं **(संति)** होते हैं, **(तदो)** इसलिए जीव **(अमुत्ति)** मूर्त्तिरहित है और **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(बंधादो)** कर्मबन्ध की अपेक्षा **(मुत्ति)** मूर्त्तिक है।

'कर्त्ता अधिकार'

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ 8 ॥

अन्वयार्थ :- **(ववहारदो)** व्यवहारनय से **(आदा)** जीव **(पुग्गलकम्मादीणं)** ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म और शरीरादि नो कर्मों का **(कत्ता)** कर्त्ता है और **(णिच्छयदो)** अशुद्धनिश्चयनय से **(चेदणकम्माण)** रागादि भावकर्मों का और **(सुद्धणया)** शुद्ध निश्चय से **(सुद्धभावाणं)** अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

'भोक्ता अधिकार'

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥ 9 ॥

अन्वयार्थ :- **(आदा)** जीव **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(पुग्गलकम्मप्फलं)** ज्ञानावरणादि पौद्गलिक कर्मों के फल **(सुहदुक्खं)** सुख-दुःख को **(पभुंजेदि)** भोगता है और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से **(आदस्स)** आत्मा के **(चेदणभावं)** शुद्धदर्शन और शुद्धज्ञानस्वरूप भावों का **(खु)** ही भोक्ता है।

'स्वदेहपरिमाण अधिकार'

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥10 ॥

अन्वयार्थ :- (**ववहारा**) व्यवहारनय से (**चेदा**) जीव (**उवसंहारप्पसप्पदो**) संकोच और विस्तार गुण के कारण (**असमुहदो**) समुद्घात अवस्था के अतिरिक्त (**अणुगुरुदेहपमाणो**) नाम-कर्म द्वारा प्राप्त अपने छोटे-बड़े शरीर के बराबर रहता है (**वा**) और (**णिच्छयणयदो**) निश्चयनय से (**असंखदेसो**) असंख्यात प्रदेशी है।

'संसारी अधिकार'

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी॥ 11॥

अन्वयार्थ :- (**पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी**) पृथिवीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये (**विविहथावरेइंदी**) अनेक प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं और (**संखादी**) शंख, चींटी, भौंरा तथा मनुष्य आदि क्रम से (**विगतिगचदुपंचक्खा**) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये (**तसजीवा**) त्रसजीव (**होंति**) होते हैं।

'त्रसस्थावरों के 14 जीवसमास'

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य॥ 12॥

अन्वयार्थ :- (**पंचिंदिय**) पंचेन्द्रिय जीव (**समणा**) समनस्क-संज्ञी तथा (**अमणा**) अमनस्क-असंज्ञी तथा (**परे सव्वे**) शेष सब (**णिम्मणा**) मनरहित जीव (**णेया**) जानना चाहिए (**एइंदी**) एकेन्द्रिय जीव (**बादरसुहमा**) बादर-स्थूल तथा सूक्ष्म इस तरह दो प्रकार के होते हैं और (**सव्वे**) संज्ञी, असंज्ञी, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, सूक्ष्मैकेन्द्रिय और बादरैकेन्द्रिय। ये 7 प्रकार के सब जीव (**पज्जत्त**) पर्याप्त (**य**) और (**इदरा**) अपर्याप्त इस तरह 14 चौदह जीवसमास होते हैं।

'द्वितीय तथा तृतीय प्रकार से 14 जीवसमास का वर्णन'

मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥ 13॥

अन्वयार्थ :- (**तह**) तथा (**संसारी**) संसारी जीव (**असुद्धणया**) व्यवहारनय से (**चउदसहिं**) चौदह (**मग्गणगुणठाणेहिं**) मार्गणा और

गुणस्थानों के भेद वाले **(हवंति)** होते हैं **(य)** और **(सुद्धणया)** निश्चयनय से **(सव्वे)** सब जीव **(हु)** निश्चयपूर्वक **(सुद्धा)** विकल्परहित शुद्ध **(विण्णेया)** जानने चाहिए।

'सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व अधिकार'

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहिं संजुत्ता॥ 14॥

अन्वयार्थ :- **(णिक्कम्मा)** ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरहित **(अट्ठगुणा)** सम्यक्त्वादि अष्ट गुणसहित **(चरमदेहदो)** अन्तिम शरीर से **(किंचूणा)** कुछ कम **(णिच्चा)** नित्य **(उप्पादवएहिं)** उत्पाद और व्यय से **(संजुत्ता)** सहित जीव **(सिद्धा)** सिद्ध हैं तथा **(लोयग्गठिदा)** लोक के अग्रभाग में रहते हैं।

'अजीवद्रव्यों के नाम'

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादि-गुणो अमुत्ति सेसा दु॥ 15॥

अन्वयार्थ :- **(पुण)** फिर **(पुग्गल)** पुद्गल **(धम्मो)** धर्म **(अधम्म)** अधर्म **(आयासो)** आकाश और **(कालो)** काल **(अज्जीवो)** अजीव **(णेओ)** जानना चाहिए। **(पुग्गल रूवादिगुणो)** पुद्गल रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण वाला **(मुत्तो)** मूर्तिक है **(दु)** और **(सेसा)** शेष चारों द्रव्य **(अमुत्ति)** रूपादिमान नहीं है।

'पुद्गलद्रव्य की विभाव-व्यञ्जन पर्यायें'

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया॥ 16॥

अन्वयार्थ :- **(सद्दो)** शब्द, **(बंधो)** बन्ध, **(सुहुमो)** सूक्ष्म, **(थूलो)** स्थूल, **(संठाणभेदतमछाया)** आकार, खण्ड, अन्धकार, छाया **(उज्जोदादवसहिया)** उद्योत और आतप से सब **(पुग्गलदव्वस्स)** पुद्गलद्रव्य की **(पज्जाया)** पर्यायें हैं।

'धर्मद्रव्य का स्वरूप'

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई॥ 17॥

अन्वयार्थ :- **(जह)** जैसे **(गइपरिणयाण)** गति में परिणत **(मच्छाणं)** मछलियों को **(तोयं)** जल **(गमणसहयारी)** चलने-तैरने में सहायता करता है **(तह)** उसी प्रकार **(गइपरिणयाण)** गमन में परिणत **(पुग्गलजीवाण)** पुद्गल और जीवों के **(गमणसहयारी)** चलने में सहायक **(धम्मो)** धर्मद्रव्य है। **(सो)** वह धर्मद्रव्य तथा जल **(अच्छंता)** गमनक्रिया में अपरिणत जीव पुद्गल तथा मत्स्यादि को **(णेय)** नहीं **(णेई)** चलाता है।

'अधर्मद्रव्य का स्वरूप'

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरइ ॥ 18 ॥

अन्वयार्थ :- **(जह)** जैसे **(छाया)** छाया **(पहियाणं)** पथिकों को ठहरने में सहायक है, उसी प्रकार **(ठाणजुदाण)** ठहरने वाले **(पुग्गलजीवाण)** पुद्गल जीवों को **(ठाणसहयारी)** ठहरने में सहायक **(अधम्मो)** अधर्मद्रव्य है। **(सो)** वह अधर्मद्रव्य **(गच्छंता)** चलने वाले जीव, पुद्गल तथा पथिकों को **(णेव)** नहीं **(धरइ)** ठहराता है।

'आकाशद्रव्य का लक्षण'

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ 19 ॥

अन्वयार्थ:-**(जीवादीणं)** जीवादि द्रव्यों को **(अवगासदाणजोग्गं)** अवकाश देने के योग्य **(जेण्हं)** जिन भगवान् का कहा हुआ **(आयासं)** आकाशद्रव्य **(वियाण)** जानो **(लोगागासं)** लोकाकाश और **(अल्लोगागासं)** अलोकाकाश **(इदि)** इस प्रकार आकाशद्रव्य **(दुविहं)** दो प्रकार का होता है।

'लोकाकाश का विशेष स्वरूप'

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिए।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो॥ 20॥

अन्वयार्थ :- (**जावदिए**) जितने (**आयासे**) आकाश में (**धम्माधम्मा**) धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य (**कालो**) कालद्रव्य (**य**) और (**पुग्गलजीवा**) पुद्गल तथा जीवद्रव्य (**संति**) रहते हैं (**सो**) वह (**लोगो**) लोकाकाश है, (**तत्तो**) उससे (**परदो**) आगे (**अलोगुत्तो**) अलोकाकाश कहा गया है।

'व्यवहार और निश्चयकाल का स्वरूप'

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो॥ 21॥

अन्वयार्थ :- (**जो**) जो (**दव्वपरिवट्टरूवो**) द्रव्यों के परिवर्तन में कारणरूप है तथा (**परिणामादीलक्खो**) परिणमन और लक्षणों से जाना जाता है (**सो**) वह (**ववहारो**) व्यवहार (**कालो**) काल (**हवेइ**) होता है (**य**) और (**वट्टणलक्खो**) वर्तना लक्षण वाला (**परमट्ठो**) परमार्थ/निश्चयकाल है।

'निश्चयकाल का स्थान और द्रव्यगणना'

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि॥ 22॥

अन्वयार्थ :- (**इक्केक्के**) एक-एक (**लोयायासपदेसे**) लोकाकाश के प्रदेश पर (**जे**) जो (**इक्केक्का**) एक-एक काल के अणु (**रयणाणं**) रत्नों की (**रासीमिव**) राशि के समान (**हु**) स्फुटरूप से पृथक्-पथक् (**ठिया**) स्थित हैं और (**ते**) वे (**कालाणु**) काल के अुण (**असंखदव्वाणि**) असंख्यात द्रव्य हैं।

'षड्द्रव्यों का उपसंहार और पञ्चास्तिकाय'

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।

उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥ 23 ॥

अन्वयार्थ :- (**एवं**) इस प्रकार (**जीवाजीवप्पभेददो**) जीव और अजीव के प्रभेद से (**इदं दव्वं**) यह द्रव्य (**छब्भेयं**) छः प्रकार का (**उत्तं**) कहा गया है (**दु**) और (**कालविजुत्तं**) कालद्रव्य को छोड़कर शेष (**पंच**) पाँच (**अत्थिकाया**) अस्तिकाय (**णादव्वा**) जानने चाहिए।

'अस्ति और काय का लक्षण'

संति जदो तेणेदे, अत्थि त्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥ 24 ॥

अन्वयार्थ :- (**जदो**) क्योंकि (**एदे**) जीवादि पाँच द्रव्य (**संति**) हैं (**तेण**) इसलिए इनको (**जिणवरा**) जिनेन्द्र भगवान् (**अत्थि त्ति**) ''अस्ति'' इस प्रकार (**भणंति**) कहते हैं और (**जम्हा**) क्योंकि (**काया इव**) काय के समान (**बहुदेसा**) बहुप्रदेशी हैं (**तम्हा**) इसलिए (**काया**) ''काय'' कहते हैं (**य**) और इस तरह दोनों (**अत्थिकाया**) मिलकर ''अस्तिकाय'' कहलाते हैं।

'द्रव्यों की प्रदेशसंख्या'

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत - आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ 25 ॥

अन्वयार्थ :- (**जीवे**) एक जीव में (**धम्माधम्मे**) धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य में (**असंखा**) असंख्यात (**पदेसा**) प्रदेश (**होंति**) होते हैं। (**आयासे**) आकाशद्रव्य में (**अणंत**) अनन्त प्रदेश, (**मुत्तं**) पुद्गलद्रव्य में (**तिविह**) संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं और (**कालस्स**) कालद्रव्य में (**एगो**) एक प्रदेश होता है (**तेण**) इसलिए (**सो**) वह कालद्रव्य (**काओ**) कायवान् (**ण**) नहीं है।

'एक प्रदेशी पुद्गल परमाणु भी कायवान् है'

एयपदेसो वि अणु, णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥ 26 ॥

अन्वयार्थ :- **(एयपदेसो वि)** एक प्रदेशी भी **(अणु)** अणु **(णाणाखंधप्पदेसदो)** नाना स्कन्धरूप प्रदेशों की अपेक्षा **(बहुदेसो)** बहुत प्रदेश वाला **(होदि)** होता है **(य)** और **(तेण)** इसलिए **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञ **(उवयारा)** व्यवहारनय से अणु को **(काओ)** कायवान् **(भणंति)** कहते हैं।

'प्रदेश का लक्षण'

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु वट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं॥ 27॥

अन्वयार्थ :- **(जावदिय)** जितना **(आयासं)** आकाश **(अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्ध)** जिसका भाग न हो सके ऐसे पुद्गल परमाणु से रोका जाय **(तं)**, उसे **(खु)** ही **(सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं)** समस्त परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ **(पदेसं)** प्रदेश **(जाणे)** जानो।

'आस्रवादि निरूपण करने की प्रतिज्ञा'

आसवबंधणसंवर-णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो॥ 28॥

अन्वयार्थ :- **(जे)** जो **(सपुण्णपावा)** पुण्य और पाप सहित **(आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो)** आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये **(जीवाजीवविसेसा)** जीव और अजीव के विशेष भेद हैं **(तेवि)** उनको भी **(समासेण)** संक्षेप से **(पभणामो)** कहते हैं।

'भावास्रव और द्रव्यास्रव का स्वरूप'

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो सो विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि॥ 29॥

अन्वयार्थ :- **(अप्पणो)** आत्मा के **(जेण)** जिस **(परिणामेण)** परिणाम से **(कम्मं)** कर्म **(आसवदि)** आता है **(सो)** वह **(जिणुत्तो)** जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहा हुआ **(भावासवो)** भावास्रव **(विण्णेओ)** जानना चाहिए और **(कम्मासवणं)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का आना **(परो)** द्रव्यास्रव **(होदि)** होता है।

'भावास्रव का विशेष स्वरूप और भेद'

मिच्छत्ताविरदिपमाद-जोगकोहादओथ विण्णेया।
पण-पण-पणदह तिय चदु , कमसो भेदा दु पुव्वस्स॥ 30॥

अन्वयार्थ :- (**पुव्वस्स**) प्रथम भावास्रव के (**मिच्छत्ता-विरदिपमादजोगकोहादओथ**) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोध आदि भेद हैं (**दु**) और उनके (**कमसो**) क्रम से (**पण-पण-पणदह तिय चदु**) पाँच-पाँच, पन्द्रह, तीन और चार (**भेदा**) ये 32 भेद (**विण्णेया**) जानने चाहिए।

'द्रव्यास्रव का लक्षण'

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो॥ 31॥

अन्वयार्थ :- (**णाणावरणादीणं**) ज्ञानावरणादि कर्मों के (**जोग्गं**) योग्य (**जं**) जो (**पुग्गलं**) पुद्गल (**समासवदि**) आता है, (**स**) वह (**जिणक्खादो**) जिनेन्द्र भगवान् का कहा हुआ (**अणेयभेओ**) अनेक भेद वाला (**दव्वासवो**) द्रव्यास्रव (**णेओ**) जानना चाहिए।

'भावबन्ध और द्रव्यबन्ध का लक्षण'

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदण-भावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो॥ 32॥

अन्वयार्थ :- (**जेण**) जिस (**चेदणभावेण**) चैतन्य परिणाम से (**कम्मं**) कर्म (**बज्झदि**) बंधता है (**सो**) वह (**भावबन्धो**) भावबन्ध है (**दु**) तथा (**कम्मादपदेसाणं**) कर्म और आत्मा के प्रदेशों का (**अण्णोण्णपवेसणं**) एक-दूसरे में मिल जाना (**इदरो**) द्रव्यबन्ध है।

'प्रकृति बन्धादि और उनके कारण'

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति॥33॥

अन्वयार्थ :- (**बंधो**) बन्ध (**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा**) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से (**चदुविधो**) चार प्रकार का होता है। इनमें (**पयडिपदेसा**) प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध (**जोगा**) मन, वचन और काययोग से (**दु**) और (**ठिदिअणुभागा**) स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध (**कसायदो**) क्रोधादि कषायों से (**होंति**) होते हैं।

'भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप'

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो॥ 34॥

अन्वयार्थ :- (**जो**) जो (**चेदणपरिणामो**) चैतन्य परिणाम (**कम्मस्सासवणिरोहणे**) कर्मों का आस्रव के रोकने में (**हेऊ**) कारण है, (**सो**) वह (**खलु**) ही (**भावसंवरो**) भावसंवर है और (**दव्वासवरोहणे**) द्रव्यास्रव का रुकना (**अण्णो**) दूसरा द्रव्यसंवर है।

'भावसंवर के भेद'

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहा-परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया, णादव्वा भावसंवरविसेसा॥ 35॥

अन्वयार्थ :- (**वदसमिदीगुत्तीओ**) व्रत, समिति, गुप्ति (**धम्माणुपेहा**) धर्म और अनुप्रेक्षाएँ (**परीसहजओ**) परीषहजय (**य**) और (**बहुभेया**) बहुत भेद वाले (**चारित्तं**) चारित्र को (**भावसंवरविसेसा**) भावसंवर के भेद (**णादव्वा**) जानने चाहिए।

'निर्जरा का लक्षण और उसके भेद'

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा॥36॥

अन्वयार्थ :- (**जह कालेण**) कर्मों की स्थिति पूर्ण होने पर (**भुत्तरसं**) जिसका फल भोगा जा चुका है, ऐसा (**कम्मपुग्गलं**) कर्म पुद्गल (**जेण भावेण**) जिस भाव से (**सडदि**) छूटता है, इसे भावनिर्जरा कहते हैं और (**तस्सडणं**) ज्ञानावरणादि कर्मों का छूट जाना द्रव्यनिर्जरा

है। **(इदि)** इस प्रकार भाव और द्रव्य के भेद से **(णिज्जरा)** निर्जरा **(दुविहा)** दो प्रकार की **(णेया)** जाननी चाहिए।

'मोक्ष का स्वरूप और भेद'

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो॥ 37॥

अन्वयार्थ :- **(जो)** जो **(अप्पणो)** आत्मा का **(परिणामो)** परिणाम **(सव्वस्स)** सब **(कम्मणो)** कर्मों के **(खयहेदू)** क्षय का कारण है, **(स हु)** वही **(भावमोक्खो)** भाव मोक्ष है **(य)** और **(कम्मपुहभावो)** द्रव्यकर्मों का छूट जाना **(दव्वविमोक्खो)** द्रव्य मोक्ष **(णेओ)** जानना चाहिए।

'पुण्य और पाप का वर्णन'

सुह-असुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च॥ 38॥

अन्वयार्थ :- **(जीवा)** जीव **(सुहअसुहभावजुत्ता)** शुभ और अशुभ भावसहित **(खलु)** ही **(पुण्णं)** पुण्यरूप और **(पावं)** पापरूप **(हवंति)** होते हैं। **(सादं)** सातावेदनीय **(सुहाउ)** शुभआयु **(णामं)** शुभनाम **(गोदं)** और शुभगोत्र ये **(पुण्णं)** पुण्यरूप होते हैं **(च)** तथा **(पराणि)** असातावेदनीय, अशुभआयु, अशुभनाम, अशुभगोत्र ये पापरूप होते हैं।

'व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग'

सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा॥ 39॥

अन्वयार्थ :- **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(सम्मद्दंसणणाणं चरणं)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को **(मोक्खस्स)** मोक्ष का **(कारणं)** कारण **(जाणे)** जानो और **(णिच्छयदो)** निश्चयनय से **(तत्तियमइओ)** सम्यग्दर्शनादिस्वरूप **(णिओ)** अपना **(अप्पा)** आत्मा ही मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

'निश्चय मोक्षमार्ग का प्रकारान्तर से वर्णन'

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥ 40॥

अन्वयार्थ :- (**अप्पाणं**) आत्मा को (**मुयत्तु**) छोड़कर (**अण्णदवियम्हि**) अन्य पुद्गल आदि द्रव्यों में (**रयणत्तयं**) रत्नत्रयरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (**ण**) नहीं (**वट्टइ**) रहता है (**तम्हा**) इसलिए (**तत्तियमइओ**) सम्यग्दर्शन आदि स्वरूप (**आदा**) आत्मा (**हु**) ही (**मोक्खस्स**) मोक्ष का (**कारणं**) कारण (**होदि**) होता है।

'सम्यग्दर्शन का स्वरूप'

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि॥ 41॥

अन्वयार्थ :- (**जीवादीसद्दहणं**) जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान करना (**सम्मत्तं**) सम्यग्दर्शन है (**तं**) वह (**अप्पणो**) आत्मा का (**रूवं**) स्वरूप है (**तु**) और (**जम्हि सदि**) जिसके होने पर (**खु**) ही (**णाणं**) ज्ञान (**दुरभिणिवेसविमुक्कं**) संशयादि रहित होकर (**सम्मं**) सम्यक् (**होदि**) होता है।

'सम्यग्ज्ञान का स्वरूप'

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मं णाणं, सायारमणेयभेयं च॥ 42॥

अन्वयार्थ :- (**अप्पपरसरूवस्स**) अपने स्वरूप का और पर-वस्तु के स्वरूप का (**संसय-विमोह-विब्भम**) संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित (**सायारं**) आकार-विकल्प सहित (**गहणं**) जैसा का तैसा जानना (**सम्मं णाणं**) सम्यग्ज्ञान है (**तु**) और वह सम्यग्ज्ञान (**अणेय-भेयं**) अनेक भेद वाला है।

'दर्शनोपयोग का स्वरूप'

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए॥ 43॥

अन्वयार्थ :- **(अट्ठे)** पदार्थों की **(अविसेसिदूण)** विशेषता न करके "यह काला है" "घड़ा है" इत्यादि **(आयारं)** आकार को **(णेव)** नहीं **(कट्टुं)** कर **(जं)** जो **(भावाणं)** पदार्थों का **(सामण्णं)** सामान्यरूप से **(गहणं)** ग्रहण करना है वह **(दंसणं)** दर्शन है। **(इदि)** इस प्रकार **(समए)** शास्त्र में **(भण्णए)** कहा है।

'दर्शन और ज्ञान का क्रम'

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि॥ 44॥

अन्वयार्थ :- **(छदुमत्थाणं)** छद्‌मस्थों के **(दंसणपुव्वं)** दर्शनपूर्वक **(णाणं)** ज्ञान होता है **(जम्हा)** क्योंकि **(दुण्णि उवओगा)** दोनों उपयोग-दर्शन तथा ज्ञान **(जुगवं)** एक साथ **(ण)** नहीं होते हैं, **(तु)** किन्तु **(केवलिणाहे)** केवलज्ञानी के **(ते दो वि)** वे दोनों ही उपयोग **(जुगवं)** एक साथ होते हैं।

'व्यवहार सम्यक्‌चारित्र और उसके भेद'

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं॥ 45॥

अन्वयार्थ :- **(ववहारणया)** व्यवहारनय से **(असुहादो)** अशुभ क्रिया से **(विणिवित्ती)** विरक्त रहने **(य)** और **(सुहे)** शुभकर्म में **(पवित्ती)** प्रवृत्ति करने को **(चारित्तं)** चारित्र **(जाण)** समझो **(दु)** और **(वदसमिदिगुत्तिरूवं)** 5 व्रत, 5 समिति और 3 गुप्ति स्वरूप इस तरह 13 प्रकार का **(जिणभणियं)** जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहा गया है।

'व्यवहारचारित्र से निश्चयचारित्र का निरूपण'

बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं॥ 46॥

अन्वयार्थ :- **(भवकारणप्पणासट्ठं)** संसार के कारणों का नाश करने के लिए **(जं)** जो **(णाणिस्स)** ज्ञानी का **(बहिरब्भंतर-किरियारोहो)** बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं का रोकना **(तं)** वह **(जिणुत्तं)** जिनेन्द्र भगवान् का कहा हुआ **(परमं)** उत्कृष्ट **(सम्मचारित्तं)** सम्यक्‌चारित्र है।

'ध्यानाभ्यास करने की हेतुपूर्वक प्रेरणा'

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह॥ 47॥

अन्वयार्थ :- **(जं)** क्योंकि **(मुणी)** मुनि **(णियमा)** नियमपूर्वक **(दुविहं पि)** निश्चय और व्यवहार दोनों ही प्रकार के **(मोक्खहेऊं)** मोक्ष के कारणों को **(झाणे)** ध्यान द्वारा **(पाउणदि)** प्राप्त करता है, **(तम्हा)** इसलिए **(जूयं)** तुम लोग **(पयत्तचित्ता)** सावधान चित्त होकर **(झाणं)** ध्यान का **(समब्भसह)** सम्यक् प्रकार अभ्यास करो।

'ध्यान करने का उपाय'

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धीए॥ 48॥

अन्वयार्थ :- **(जइ)** यदि **(विचित्तझाणप्पसिद्धीए)** नाना प्रकार के ध्यानों की प्राप्ति के लिए **(चित्तं)** चित्त को **(थिरं)** स्थिर करना **(इच्छह)** चाहते हो तो **(इट्ठणिट्ठअत्थेसु)** प्रिय एवं अप्रिय पदार्थों में **(मा मुज्झह)** मोह मत करो **(मा रज्जह)** राग मत करो और **(मा दुस्सह)** द्वेष मत करो।

'ध्यान करने योग्य मन्त्रों का उपदेश'

पणतीससोलछप्पण, चदु-दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण॥ 49॥

अन्वयार्थ :- **(परमेट्ठिवाचयाणं)** परमेष्ठी वाचक **(पणतीस)** पैंतीस **(सोल)** सोलह **(छप्पण)** छः और पाँच **(चदु)** चार **(दुगम्)** दो **(च)** और **(एगं)** एक तथा **(गुरूवएसेण)** गुरुओं के उपदेश से **(अण्णं)** अन्य मन्त्र भी **(जवह)** जपो और **(झाएह)** ध्यान करो।

'अरहन्त-परमेष्ठी का स्वरूप'

णट्ठचदुघाइकम्मो, दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥ 50॥

अन्वयार्थ :- (**णट्ठचदुघाइकम्मो**) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का नाश करने वाले (**दंसणसुहणाणवीरियमईओ**) अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य का धारक (**सुहदेहत्थो**) परमौदारिक शरीरधारी (**सुद्धो**) शुद्ध (**अरिहो**) अरहन्त परमेष्ठी (**विचिंतिज्जो**) ध्यान करने योग्य हैं।

'सिद्ध-परमेष्ठी का लक्षण'

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ 51 ॥

अन्वयार्थ :- (**णट्ठट्ठकम्मदेहो**) ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म तथा औदारिकादि शरीर को नष्ट करने वाला (**लोयालोयस्स**) लोकाकाश तथा अलोकाकाश (**जाणओ**) जानने वाला और (**दट्ठा**) देखने वाला (**पुरिसायारो**) मनुष्याकार-चरम शरीर से कुछ कम शरीर वाला (**लोयसिहरत्थो**) लोकाग्रभाग-सिद्धशिला पर रहने वाला (**अप्पा**) आत्मा (**सिद्धो**) सिद्ध परमेष्ठी है, उसका (**झाएह**) ध्यान करो।

'आचार्य-परमेष्ठी का लक्षण'

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ ॥ 52 ॥

अन्वयार्थ :- (**जो**) जो (**दंसणणाणपहाणे**) दर्शनाचार और ज्ञानाचार प्रधान है, जिनमें ऐसे (**वीरियचारित्तवरतवायारे**) वीर्याचार, चारित्राचार और उत्तम तपाचार में (**अप्पं**) अपने को (**च**) और (**परं**) दूसरों को (**जुंजई**) लगाता है, (**सो**) वह (**मुणी**) मुनि (**आयरिओ**) आचार्य परमेष्ठी (**झेओ**) ध्यान करने योग्य है।

'उपाध्याय-परमेष्ठी का लक्षण'

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ 53 ॥

अन्वयार्थ :- (**जो रयणत्तयजुत्तो**) जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

और सम्यक्चारित्र सहित है **(णिच्चं)** सदा **(धम्मोवएसणे)** धर्मोपदेश करने में **(णिरदो)** लवलीन है **(सो)** वह **(जदिवरवसहो)** पंचेन्द्रिय विषयों पर विजय प्राप्त करने वाला प्रधान साधु स्वरूप **(अप्पा)** आत्मा **(उवझाओ)** उपाध्याय परमेष्ठी हैं **(तस्स)** उनको **(णमो)** नमस्कार हो।

'साधु-परमेष्ठी का लक्षण'

दंसणणाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स॥ 54॥

अन्वयार्थ :- **(जो)** जो **(मुणी)** मुनि **(दंसणणाणसमग्गं)** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित **(मोक्खस्स)** मोक्ष के **(मग्गं)** मार्ग स्वरूप **(णिच्चसुद्धं)** नित्यरागादि रहित **(चारित्तं)** चारित्र का **(हु)** भलीभांति **(साधयदि)** साधन करता है, **(सो)** वह **(साहू)** साधु परमेष्ठी है **(तस्स)** उसको **(णमो)** नमस्कार हो।

'ध्येय, ध्याता और ध्यान'

जं किंचि वि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूण य एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्छयं झाणं॥ 55॥

अन्वयार्थ :- **(जदा)** जब **(साहू)** साधु **(एयत्तं)** एकता को **(लद्धूण य)** प्राप्त कर **(जं किंचिवि)** जो कुछ भी **(चिंतंतो)** चिन्तवन करता हुआ **(णिरीहवित्ती)** इच्छा रहित **(हवे)** होता है **(तदा)** उस समय **(तस्स)** साधु का **(तं)** वह **(णिच्छयं)** निश्चय **(झाणं)** ध्यान है।

'परम ध्यान का स्वरूप'

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं॥ 56॥

अन्वयार्थ :- **(किंवि)** कुछ भी **(मा चिट्ठह)** चेष्टा मत करो **(मा जंपह)** वचन मत बोलो **(मा चिंतह)** चिन्तवन मत करो **(जेण)** जिससे **(अप्पा)** आत्मा **(अप्पम्मि)** आत्मा में **(रओ)** लीन होकर **(थिरो)** स्थिर **(होइ)** होता है, **(इणमेव)** यही **(परं)** उत्कृष्ट **(झाणं)** ध्यान **(हवे)** है।

'उपसंहाररूप कथन'

तवसुदवदवं चेदा, झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह॥ 57॥

अन्वयार्थ :- (**जम्हा**) क्योंकि (**तवसुदवदवं**) तप, श्रुत और व्रतवान् (**चेदा**) आत्मा (**झाणरहधुरंधरो**) ध्यानरूपी रथ का धुराधारी (**हवे**) होता है (**तम्हा**) इसलिए (**तल्लद्धीए**) उस ध्यान की प्राप्ति के लिए (**सदा**) हमेशा (**तत्तियणिरदा**) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों में लीन (**होह**) होओ।

'ग्रन्थकर्त्ता की प्रार्थना'

दव्वसंगहमिणंमुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥ 58॥

अन्वयार्थ:- (**तणुसुत्तधरेण**) अल्पज्ञानी (**णेमिचंदमुणिणा**) नेमिचन्द्र मुनि ने (**जं**) जो (**इणं**) यह (**दव्वसंगहं**) द्रव्यसंग्रह (**भणियं**) कहा है, इसका (**दोससंचयचुदा**) रागादि दोषरहित (**सुदपुण्णा**) श्रुत के ज्ञाता (**मुणिणाहा**) प्रधान मुनि (**सोधयंतु**) संशोधन करें।

इदि णेमिचंदमुणिणा विरइयो दव्वसंगहो समत्तो।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑

स्वरूप सम्बोधनम्

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम्॥ 1॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(कर्मभिः संविदादिना)** कर्मों से तथा सम्यग्ज्ञान आदि से क्रमशः **(मुक्तामुक्तैक रूपः)** मुक्त और अमुक्त होता हुआ एक रूप है, **(तम्)** उस **(अक्षयं)** अविनाशी **(ज्ञानमूर्तिं)** ज्ञानमूर्ति **(परमात्मानं)** परमात्मा को **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्धेतु फलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यनन्तः, स्थित्युत्पत्ति व्ययात्मकः॥ 2॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(सोपयोगः)** दर्शन, ज्ञान उपयोग वाला है, **(क्रमात्)** क्रम से **(हेतु फलावहः)** कारण और उसके फल आदि कार्य को धारण करने वाला है, **(ग्राह्यः)** ग्रहण करने योग्य है **(अग्राह्यः)** अग्राह्य है **(अनाद्यन्तः)** अनादि और अनन्त है, **(स्थित्युपत्तिव्ययात्मकः)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप है; **(सः)** वह प्रसिद्ध **(अयं)** यह जीवित शरीर में वर्तमान **(आत्मा)** आत्मा **(अस्ति)** है।

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच् चेतनाचेतनात्मकः॥ 3॥

अन्वयार्थ :- वह आत्मा **(प्रमेयत्वादिभिः)** प्रमेयत्व आदि **(धर्मैः)** धर्मों द्वारा **(अचिदात्मा)** अचित रूप है **(ज्ञानदर्शनः)** ज्ञान और दर्शन गुण से **(चिदात्मकः)** चेतन रूप है, **(तस्मात्)** इस कारण **(चेतनाचेतनात्मकः)** चेतन अचेतन रूप है।

ज्ञानादिभन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः॥ 4॥

अन्वयार्थ :- **(ज्ञानं)** आत्मा का ज्ञान गुण **(पूर्वापरीभूत)** भूतकाल और भविष्यत् काल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है,

(स अयं आत्मा) वह प्रसिद्ध यह आत्मा **(ज्ञानात्)** उस गुण से **(भिन्न न)** सर्वथा भिन्न नहीं है, **(वः)** और **(अभिन्नः न)** सर्वथा अभिन्न अर्थात् एक रूप भी नहीं है, **(कथंचन)** किसी अपेक्षा से **(भिन्नाभिन्नः)** भिन्न और अभिन्न **(इति)** इस प्रकार **(कीर्तितः)** कहा गया है।

स्वदेह प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा॥ 5॥

अन्वयार्थ :- **(अयं)** यह आत्मा **(स्वदेह प्रमितः)** अपने शरीर के बराबर है **(च)** और **(सः)** वह आत्मा **(ज्ञानमात्रः अपि)** ज्ञानगुण मात्र भी यानी ज्ञान के बराबर भी **(नैव)** नहीं है, **(ततः)** इस कारण **(अयं)** यह आत्मा **(सर्वथा)** सब तरह **(सर्वगतः)** समस्त पदार्थों को स्पर्श करने वाला **(न)** नहीं है और सर्वव्यापी समस्त जगत में व्यापने वाला भी सर्वथा **(न)** नहीं है।

नानाज्ञान स्वभावत्वा - देकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक स्वभावत्वा - देकानेकात्मको भवेत्॥ 6॥

अन्वयार्थ :- **(सः)** वह आत्मा **(नानाज्ञान स्वभावत्वात्)** अनेक प्रकार के ज्ञान स्वरूप होने से **(अनेकः अपि)** अनेक होते हुए भी **(चेतनैकस्वभावत्वात्)** एक चेतना स्वभाव होने से **(एकः)** एक होता हुआ भी सर्वथा एक भी **(नैव)** नहीं है। किन्तु **(एकानेकात्मकः)** एक तथा अनेकात्मक **(भवेत्)** होता है।

नावक्तव्यः स्वरूपाद्यैः, निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो, नापि वाचामगोचरः॥ 7॥

अन्वयार्थ :- आत्मा **(स्वरूपाद्यैः)** स्वरूप आदि की अपेक्षा **(अवक्तव्यः न)** अवक्तव्य नहीं है, **(परभावतः)** अन्य अविवक्षित धर्मों की अपेक्षा **(निर्वाच्यः)** आत्मा अवक्तव्य है, **(तस्मात्)** इस कारण आत्मा **(एकान्ततः)** एकान्त से यानी सर्वथा **(न वाच्यः)** न तो वक्तव्य है और **(नापि)** न सर्वथा **(वाचां अगोचरः)** अवक्तव्य है।

स स्याद्विधि निषेधात्मा, स्वधर्म-परधर्मयोः।
समूर्तिर्बोध मूर्तित्वा-दमूर्तिश्च विपर्ययात्॥ 8॥

अन्वयार्थ :- (**सः**) वह आत्मा (**स्वधर्मपरधर्मयोः**) अपने धर्म-भाव और पर-धर्म कथन में (**विधिनिषेधात्मा**) विधि-आत्मक या निषेधात्मक (**स्यात्**) होता है, (**बोधमूर्तित्वाद्**) ज्ञानमूर्ति होने से (**समूर्ति**) आत्मा मूर्तिमान है (**च**) और (**विपर्ययात्**) विपरीत अपेक्षा से (**अमूर्तिः**) अमूर्तिक है।

इत्याद्यनेक धर्मत्वं, बन्धमोक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरुते तत् तत्, कारणैः स्वयमेव तु॥ 9॥

अन्वयार्थ :- (**इत्याद्यनेकधर्मत्वं**) चेतन, अचेतन, मूर्तिक, अमूर्तिक आदि अनेक धर्मत्व को (**बन्धमोक्षौ**) कर्मबन्ध और मोक्ष को (**तु**) और (**तयोः**) उन बन्ध और मोक्ष के (**फलम्**) फल को (**तत्तत्कारणैः**) उन उनके कारणों से (**आत्मा**) आत्मा (**स्वयमेव**) स्वयं ही (**स्वीकुरुते**) स्वीकार करता है।

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरुपायायां, तेषां मुक्तत्वमेव हि॥ 10॥

अन्वयार्थ :- (**यः**) जो आत्मा (**कर्मणां**) अपने राग-द्वेष मोह आदि भावों का तथा उन भावों के द्वारा ज्ञानावरण आदि कर्मों का बंध (**कर्ता**) करने वाला है, (**स एव**) वही आत्मा (**तत्फलानां**) उन कर्मों के शुभ-अशुभ फलों का (**भोक्ता**) भोगने वाला है (**तु**) और (**हि**) निश्चय करके (**बहिन्तरुपायाभ्यां**) बहिरंग और अंतरंग उपायों द्वारा (**तेषाम्**) उनका (**मुक्तत्वं एव**) छूट जाना भी उसी आत्मा को होता है।

सद्दृष्टि-ज्ञान-चारित्र-मुपायः स्वात्म लब्धये।
तत्त्वे याथात्म्य संस्थित्य-मात्मनो दर्शनं मतम्॥ 11॥
यथावद्-वस्तु-निर्णीतिः, सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थ व्यवसायात्म,कथंचित्प्रमितेः पृथक् ॥12॥

दर्शन - ज्ञान - पर्याये - षूत्तरोत्तर भाविषु ।
स्थिर-मालम्बनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुख-दुःखयो ॥13॥
ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादाढ्‍र्यं, चारित्रमथवा परम्॥ 14॥

अन्वयार्थ :- (स्वात्मलब्धये) अपना शुद्ध आत्म-स्वरूप प्राप्त करने के लिए **(उपायः)** अन्तरंग उपाय **(सदृष्टिज्ञान चारित्रम्)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र **(तत्त्वे)** आत्म-तत्त्व में **(यथात्म्य-संस्थित्यम्)** यथार्थ श्रद्धान **(आत्मनः)** आत्मा का **(दर्शनं)** सम्यग्दर्शन **(मतम्)** माना जाता है, **(प्रदीपवत्)** अपने आपको तथा अन्य पदार्थों को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान **(यथावद्वस्तुनिर्णीतिः)** आत्मा का तथा अन्य पदार्थों का यथार्थ निर्णय करना अर्थात् जानना **(सम्यग्ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान है, **(तत्)** वह सम्यग्ज्ञान **(स्वार्थ व्यवसायात्म)** अपने आत्म तत्त्व का तथा अजीव आदि तत्त्वों को निश्चय करने रूप है, **(कथंचित्)** किसी अपेक्षा से वह सम्यग्ज्ञान **(प्रमितेः)** प्रमिति अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति से **(पृथक्)** अलग है, **(उत्तरोत्तरभाविषु)** उत्तर-उत्तर आगे-आगे या उन्नत होने वाली **(दर्शन ज्ञान पर्यायेषु)** सम्यक्‌दर्शन और सम्यग्ज्ञान की पर्यायों में **(स्थिरम्)** स्थिर-अचल **(आलम्बनम्)** आलम्बन करना-ठहरना **(यद्वा)** अथवा **(सुखदुःखयोः)** कर्म-उदय से होने वाले सुख-दुःख में **(माध्यस्थ्यं)** मध्यस्थ भाव होना **(अहम्)** मैं **(एकः)** अकेला हूँ **(च)** और **(अपरः)** मेरा कोई दूसरा **(न)** नहीं है, **(सुखे-दुःखे)** सुख-दुःख में **(ज्ञाता दृष्टा)** मैं ज्ञाता दृष्टा अर्थात् जानने देखने वाला हूँ, **(इति इदं)** इस प्रकार यह **(भावनादाढ्‍र्यं)** आत्मा भावना की दृढ़ता **(अथवा)** या **(परम्)** उत्कृष्ट वीतराग भाव **(चारित्रम्)** सम्यक्‌चारित्र है।

तदेततन्मूल हेतोः स्यात्, कारणं सहकारकम्।
यद् बाह्यं देशकालादि, तपश्च बहिरंगकम्॥15॥

अन्वयार्थ :- (**एतन्मूलहेतोः**) इस अन्तरंग उपादान मूलकारण का (**यत्**) जो (**देशकालादिः**) देशकाल आदि (**बाह्यं**) बाहरी (**च**) और (**तपः**) अनशन आदि बाह्य तप (**सहकारं**) सहकारी (**कारणं**) कारण है, (**तत्**) वह (**बहिरङ्गकम्**) बहिरंग उपाय (**स्यात्**) होता है।

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, राग-द्वेष-विवर्जितम्॥ 16॥

अन्वयार्थ :- (**इति इदं**) इस प्रकार यह (**सर्वं**) सब (**आलोच्य**) आलोचना गुण दोष को विचार करके (**सौस्थ्ये**) अनुकूल स्थिति में (**च**) और (**दौःस्थ्ये**) दुखदायी प्रतिकूल स्थिति में (**शक्तितः**) यथा शक्ति (**नित्यं**) सदा (**रागद्वेष-विवर्जितम्**) राग द्वेष से रहित शुद्ध (**आत्मानं**) आत्मा की (**भावयेत्**) भावना करें।

कषायैः रंजितं चेतः, तत्त्वं नैवावगाहते।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः॥ 17॥

अन्वयार्थ :- (**कषायैः रंजितं**) राग-द्वेष आदि कषायों से रंगा हुआ (**चेतः**) मन (**तत्त्वं**) आत्मा के शुद्ध स्वरूप को (**नैव**) नहीं (**अवगाहते**) विचार पाता है जैसे कि (**नीलीरक्तेऽम्बरे**) नीले रंगे हुए कपड़े पर (**कौंकुमः**) कुंकुम का रंग (**हि**) निश्चय करके (**दुराधेयः**) कठिनाई से चढ़ता है।

ततस्त्वं दोष निर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्व-चिंतापरो भव॥ 18॥

अन्वयार्थ :- (**ततः**) इस कारण (**दोषनिर्मुक्त्यै**) राग, द्वेष, क्षोभ, व्याकुलता, क्रोध आदि दोषों से छूटने के लिए (**सर्वतः**) सभी इष्ट-अनिष्ट विषयों से (**त्वं**) तू (**निर्मोहः**) मोह ममता रहित (**भव**) बन (**उदासीनत्वंआश्रित्व**) शरीर से, संसार के विषय भोगों से उदासीन बनकर (**तत्त्वचिन्तापरः**) आत्मा तत्त्व के चिन्तवन में तत्पर (**भव**) हो जा।

हेयोपादेय तत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः।
निरालम्बो भवान्यस्मा-दुपेये सावलम्बनः॥ 19॥

अन्वयार्थ :- **(हेयोपादेयतत्त्वस्य)** हेय और उपादेय तत्त्व के **(स्थिति)** स्वरूप को **(विज्ञाय)** जानकर के **(अन्यस्मात् हेयतः)** अन्य पदार्थ रूप **(हेय)** अर्थात् त्याग देने योग्य तत्त्व का **(निरालम्बः भव)** आश्रय लेना छोड़ दो **(उपेये)** उपादेय-ग्रहण करने योग्य अपने आत्म तत्त्व का **(सालम्बनः)** आश्रय ग्रहण करो।

स्वं परं चेति वस्तु त्वं, वस्तु रूपेण भावय।
उपेक्षा भावनोत्कर्ष, पर्यन्ते शिवमाप्नुहि॥ 20॥

अन्वयार्थ :- **(त्वं)** तू **(स्वं)** अपने आत्म तत्त्व को **(च)** और **(परं वस्तु)** अन्य वस्तु को **(वस्तुरूपेण)** वस्तु-स्वभाव से **(भावय)** भावना करे, **(इति)** इस प्रकार **(उपेक्षा भावनोत्कर्ष पर्यन्ते)** उपेक्षा अर्थात् रागद्वेष रहितपना, भाव की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर **(शिवम्)** मोक्ष को **(आप्नुहि)** प्राप्त कर।

यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी,कांक्षा न क्वापि योजयेत्॥ 21॥

अन्वयार्थ :- **(यस्य)** जिसके **(मोक्षअपि)** मोक्ष की भी **(आकांक्षा)** अभिलाषा **(न)** नहीं होती **(सः)** वह भव्य मनुष्य **(मोक्ष)** मोक्ष को **(अधिगच्छति)** प्राप्त कर लेता है, **(इति)** ऐसा **(उक्तत्वात्)** सर्वज्ञ देव द्वारा अथवा आगम द्वारा कहा गया है, इस कारण **(हितान्वेषी)** अपना हित खोजने वाला व्यक्ति **(अपि)** किसी भी विषय में **(आकांक्षा)** इच्छा **(न योजयेत्)** न करें।

सापि च स्वात्मनिष्ठत्वात्, सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यति॥ 22॥

अन्वयार्थ :- **(सा अपि)** वह इच्छा भी **(यदि)** यदि **(स्वात्मनिष्ठत्वात्)** अपने आत्मा में ही होने के कारण **(सुलभा)**

सुलभ **(चिन्त्यते)** समझते हो तो **(तात)** हे तात **(आत्माधीने)** स्वाधीन **(सुखे)** सुख पाने में **(यत्नं)** प्रयत्न **(किं न करिष्यसि)** क्या तुम न करोगे? अर्थात् अवश्य करोगे।

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम्।
अनाकुले स्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले॥ 23॥

अन्वयार्थ :- **(स्वं)** अपनी आत्मा को **(परं)** शरीर आदि अन्य पदार्थ को **(विद्धि)** समझो **(किन्तु)** किंतु **(तत्रापि)** ऐसा होने पर भी **(इमम्)** इस भेद भावात्मक **(व्यामोहं)** पक्ष को भी **(छिन्धि)** दूर कर दो, **(केवले)** केवल **(अनाकुले स्वसंवेद्ये)** निराकुलता रूप स्वानुभव से जानने योग्य **(स्वरूपे)** अपने रूप में **(तिष्ठ)** ठहर जाओ।

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै, स्वस्मात् स्वस्या विनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्, स्वोत्थ मानन्दामृतं पदम्॥ 24॥

अन्वयार्थ :- **(स्व)** अपना आत्मा **(स्वेन)** अपने द्वारा **(स्थितं)** स्थित **(स्वं)** अपने स्वरूप को **(स्वस्मै)** अपने ही **(स्वस्मात्)** अपने आत्मा से **(स्वस्य)** अपने आत्मा का **(स्वोत्थं)** अपने आत्मा से उत्पन्न हुआ **(अविनश्वरम्)** अविनश्वर **(आनंदामृतं पदम्)** आनन्द-अमृतमय पद **(स्वस्मिन्)** अपने आत्मा में **(ध्यात्वा)** ध्यान करके **(लभेत्)** प्राप्त करें।

इति स्व तत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं, य एतदाख्याति शृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमात्म सम्पदं, स्वरूप संबोधन पंचविंशतिः॥ 25॥

अन्वयार्थ :- **(इति)** इस प्रकार **(यः)** जो व्यक्ति **(एतत्)** इस **(वाङ्मयम्)** वचनमय **(स्वतत्त्वं)** अपने ज्ञान तत्त्व को **(परिभाव्य)** परिशीलन करके **(आदरात्)** आदर से **(आख्याति)** वांचता है, **(च)** और **(शृणोति)** सुनता है, **(तस्मै)** उसके लिए **(स्वरूप-सम्बोधनपंचविशतिः)** यह 25 श्लोक वाला, आत्म-स्वरूप का बोध कराने वाला स्वरूप संबोधन ग्रन्थ **(परमार्थ सम्पत्)** उत्कृष्ट आत्म-संपत्ति को **(करोति)** करता है (प्रदान करता है)।

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

(छन्द-आर्या)

प्रणिपत्य वर्द्धमानं, प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :- (नागनरामरवन्द्यं) असुर, नर और सुर से वन्दनीय **(देवाधिपं देवं)** देवों के अधिपति देव (देवाधिदेव) **(वर्द्धमानं)** वर्द्धमान **(वीरम्)** महावीर को **(प्रणिपत्य)** प्रणाम करके **(प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां)** प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को **(वक्ष्ये)** कहूँगा।

कः खलु नालंक्रियते, दृष्टादृष्टार्थ साधनपटीयान्।
कण्ठस्थितया विमल-प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया॥ 2 ॥

अन्वयार्थ :- (दृष्टादृष्टार्थ) दृष्ट और अदृष्ट **(साधनपटीयान्)** पदार्थों की साधना करने में प्रवीण **(कःखलु)** निश्चय ही कौन होगा? **(विमल)** (जो) निर्दोष **(प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया)** प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को **(कण्ठस्थितया)** कण्ठ में धारण करके **(न अलंक्रियते)** अपने को विभूषित नहीं करेगा अर्थात् कोई नहीं।

भगवन्! किमुपादेयं, गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्वः, सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम्॥ 3 ॥

अन्वयार्थ :- (भगवन्) हे भगवन्! **(उपादेयं किम्)** ग्रहण करने योग्य क्या है? **(गुरुवचनं)** गुरु के वचन **(हेयं च)** और त्यागने योग्य **(अपि किम्)** भी क्या है? **(अकार्यम्)** अकार्य **(कः गुरुः)** गुरु कौन है? **(अधिगत तत्त्वः)** वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता **(सततम्)** निरन्तर **(सत्त्वहित)** जो प्राणियों के हित में **(अभ्युद्यतः)** तत्पर है।

त्वरितं किं कर्त्तव्यं, विदुषां संसार-सन्ततिच्छेदः।
किं मोक्ष-तरोर्बीजं, सम्यग्ज्ञानं क्रिया-सहितम्॥ 4 ॥

अन्वयार्थ :- (भगवन्!) हे भगवन्! **(विदुषां)** विद्वानों को **(त्वरितं)** शीघ्र **(किम् कर्त्तव्यम्)** क्या करना चाहिये? **(संसार सन्ततिः)** संसार

परम्परा का **(छेदः)** नाश **(मोक्षतरोः)** मोक्ष रूपी वृक्ष का **(बीजं किम्)** बीज क्या है? **(सम्यग्ज्ञानं)** समीचीन ज्ञान **(क्रिया सहितं)** आचरण के साथ।

किं पथ्यदनं धर्मः, कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितः विवेकी किं, विषमवधीरिता गुरवः ॥ 5 ॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(पथि)** मोक्षमार्ग में **(अदनं किम्)** पाथेय (नास्ता) क्या है? **(धर्मः)** धर्म **(इह)** इस संसार में **(कःशुचिः)** कौन पवित्र है? **(यस्य)** जिसका **(मानसम् शुद्धं)** मन शुद्ध है? **(पण्डितः कः)** पण्डित कौन है? **(विवेकी)** विवेकी पुरुष **(विषम् किम्)** विष क्या है? **(गुरवः अवधीरिता)** गुरु का तिरस्कार।

किं संसारे सारं, बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
मनुजेषु दृष्ट-तत्त्वं, स्वपरहितायोद्यतं जन्म॥ 6 ॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(संसारे)** संसार में **(सारं किम्)** सार क्या है? **(बहुशोऽपि)** बार-बार **(विचिन्त्यमानम्)** विचारने पर **(इदम् एव)** यह ही (प्रतीत होता) है कि **(मनुजेषु जन्म)** मनुष्य जन्म पाकर **(दृष्टतत्त्वं)** तत्त्वदर्शी होते हुए **(स्व-परहिताय)** अपने और पराये कल्याण में **(उद्यतं)** तत्पर रहना।

मदिरेव मोहजनकः, कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भव-वल्ली तृष्णा, को वैरी नन्वनुद्योगः॥ 7 ॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(मदिरा इव)** मदिरा की तरह **(मोह जनकः)** मोह (नशा) को उत्पन्न करने वाला **(कः?)** कौन है? **(स्नेहः)** विषयानुराग **(के च दस्यवः)** और कौन-कौन चोर हैं? **(विषयाः)** इन्द्रिय विषय **(भव-वल्ली का)** संसार की बेली क्या है? **(तृष्णा)** तृष्णा **(ननु वैरी कः)** यथार्थ शत्रु कौन है? **(अनुद्योगः)** अकर्मण्यता।

कस्माद्भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणैर्न च व्यथितः॥ 8 ॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(इह)** इस लोक में **(कस्मात् भयं?)** किससे भय होता है? **(मरणात्)** मरण से **(अन्धात्)** अन्धे से भी **(कः विशिष्यते)** विशिष्ट अंधा कौन है? **(रागी)** विषायसक्त प्राणी। **(शूरो कः च?)** और शूरवीर कौन है? **(यो ललना)** जो स्त्रियों के **(लोचन-बाणैः)** नेत्र रूप बाणों से **(न व्यथितः)** विचलित नहीं होता।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः, किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं, यदेतदप्रार्थनं नाम ॥9॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(कर्णाञ्जलिभिः)** कानों की अंजुलि से **(पातुं)** पीने के लिए **(अमृतम् इव)** अमृत के समान **(किम् बुध्यते?)** क्या जाना जाता है? **(सदुपदेशः)** सदुपदेश **(गुरुताया मूलं)** गौरव का कारण (मूल आधार) **(किम्?)** क्या है? **(एतद्यत्)** यह कि **(अप्रार्थनं नाम)** अयाचक वृत्ति।

किं गहनं स्त्री चरितं, कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्र्यमसंतोष, एवं किं लाघवं याञ्चा॥ 10॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(गहनं किम्)** जानने में जटिल क्या है? **(स्त्री चरितं)** स्त्री का चरित्र **(चतुरः कः ?)** चतुर कौन है? **(यो तेन)** जो उनसे (स्त्रियों से) **(न खण्डितः)** ठगाये नहीं गये। **(दारिद्र्यम् किम्)** दरिद्रता (निर्धनता) क्या है? **(असंतोष एव)** संतोष का अभाव। **(लाघवं किम्)** हीनता (लघुता) क्या है? **(याञ्चा)** याचना करना।

किं जीवितमनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी, का निद्रा मूढता जन्तोः॥ 11॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(जीवितम् किम्)** जीवन क्या है? **(अनवद्यं)** निर्दोषता। **(जाड्यं किम्)** जड़ता क्या है? **(पाटवेऽपि)** चतुर होकर भी **(अनभ्यासः)** अभ्यास नहीं करना। **(जागर्ति कः)** जागृत कौन है? **(विवेकी)** हेयोपादेय का ज्ञाता। **(निद्रा कः ?)** निद्रा क्या है? **(जन्तोः मूढता)** प्राणियों की अज्ञानता।

नलिनीदलगतजललव-तरलं किं यौवनं धनमथायु:।
के शशधरकरनिकरा-नुकारिण: सज्जना एव॥ 12॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(नलिनी दलगत)** कमलिनी पत्र पर पड़ी **(जल-लव)** जल बिन्दुवत् **(तरलं किम्)** चंचल क्या है? **(यौवनम् धनम्)** जवानी, धन **(अथ आयु)** और आयु **(शशधर-करनिकरा)** चंद्रकिरणों के समुदाय का **(अनुकारिण: क:)** अनुकरण करने वाले कौन हैं? **(सज्जना एव)** सज्जन पुरुष ही हैं।

को नरक: परवशता, किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं, किं प्रेय: प्राणिनामसव:॥ 13॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(क: नरक:)** नरक क्या है? **(परवशता)** पराधीनता **(सौख्यं किम्?)** सुख क्या है? **(या सर्वसंग विरति:)** जो सम्पूर्ण परिग्रहों से विरक्ति है। **(सत्यं किम्)** सत्य क्या है? **(भूतहितं)** प्राणियों का हित करना **(प्रेय: किम्)** प्रिय वस्तु क्या है? **(प्राणिनाम् असव:)** प्राणियों को अपने प्राण।

किं दानमनाकांक्षं, किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।
कोऽलंकार: शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम्॥ 14॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(दानं किम्?)** दान क्या है? **(अनाकाक्षं)** बदले में कुछ पाने की इच्छा न होना **(मित्रं किम्)** मित्र कौन है? **(यत् पापात् निवर्तयति)** जो पाप से बचावे **(अलंकार: क:)** आभूषण क्या है? **(शीलं)** सच्चरित्रता **(वाचां मण्डनं किम्?)** वाणी का भूषण क्या है? **(सत्यं)** सत्य वचन।

किमनर्थ-फलं मानसमसंगतं का सुखावहा मैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे, को दक्ष: सर्वथा त्याग:॥ 15॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(अनर्थफलं किम्)** पाप का फल क्या है? **(मानसम् असंगतम्)** मन की आकुलता। **(का सुखावहा)** सुख का प्रवाह (स्रोत) क्या है? **(मैत्री)** मैत्री भाव। **(सर्वव्यसनविनाशे)**

सम्पूर्ण बुरी आदतों के नष्ट करने में **(दक्षः कः)** कुशल (समर्थ) कौन है? **(सर्वथा त्यागः)** समस्त (परद्रव्य तथा परद्रव्यजन्य) विभावों को त्रियोगों से त्याग करने वाला।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः,को बधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले, प्रियाणि वक्तुं न जानाति॥ 16॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(अन्धः कः)** अन्धा कौन है? **(यो अकार्यरतः)** जो निंद्यकार्य में रत है। **(बधिरः कः)** बहरा कौन है? **(यः हितानि)** जो हित की बात **(न शृणोति)** नहीं सुनता **(मूकः कः?)** गूंगा कौन है? **(यः काले)** जो समय पर **(प्रियाणि वक्तुं)** मधुर बोलना **(न जानाति)** नहीं जानता।

किं मरणं मूर्खत्वं, किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं, प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम्॥ 17॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(मरणं किम्)** मरण क्या है? **(मूर्खत्वं)** मूर्खपना **(अनर्घ्यं च किम्?)** और अमूल्य वस्तु क्या है? **(यदवसरेदत्तम्)** जो समय पर दी जाय। **(आमरणात्)** मरण पर्यन्त **(शल्यं किम्)** शल्य क्या है? **(यत् प्रच्छन्नं)** जो गुप्त रूप से **(अकार्यं कृतं)** किया गया अकार्य हैं।

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या, खल परयोषित्परधनेषु॥ 13॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(कुत्र यत्नो विधेयो?)** कहाँ प्रयत्न करना चाहिये? **(विद्याभ्यासे)** विद्या के अभ्यास में **(सदौषधे दाने)** अच्छी औषधि (खोजने व) दान करने में **(अवधीरणा क्व कार्या?)** उपेक्षा कहाँ करनी चाहिये? **(खल)** दुर्जन **(परयोषित्)** परस्त्री और **(परधनेषु)** परधन में।

काहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया, करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री॥ 19॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(अहर्निशम्)** दिन-रात **(अनुचिन्त्या का?)** किसका चिन्तन करना चाहिये? **(संसार असारता)** संसार की असारता का **(न च प्रमदा)** न कि स्त्रियों का **(प्रयेसी का विधेया?)** प्रेमिका किसको बनाना चाहिये? **(करुणा-दक्षिण्यं)** करुणा, चतुरता **(मैत्री अपि)** और मित्रता को।

कण्ठगतै-रप्यसुभि:, कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च, गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य॥ 20॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(असुभि:)** प्राणों के **(कण्ठगतै: अपि)** कण्ठगत हो जाने पर भी **(आत्मा)** अपने को **(कस्य समर्प्यते)** किसके अधीन **(नो जातु?)** नहीं करें? **(मूर्खस्य)** मूर्ख के **(विषादस्य)** विषादयुक्त (दु:ख, चिन्ता से युक्त) के **(च गर्वस्य)** घमंडी और **(तथा कृतघ्नस्य)** कृतघ्नी के।

क: पूज्य: सद्वृत्त:, कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।
केन जितं जगदेतत्, सत्यतितिक्षावता पुंसा॥ 21॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(पूज्य: क:)** पूजनीय कौन है? **(सद्वृत्त:)** सच्चरित्र व्यक्ति **(कम् अधनम्)** निर्धन किसको **(आचक्षते?)** कहा जाता है? **(चलितवृत्तम्)** स्खलित चरित्र वाला **(एतत् जगत्)** इस जगत को **(केन जितं)** किसके द्वारा जीता गया? **(सत्यतितिक्षावता)** सत्यवादी और क्षमावान् **(पुंसा)** पुरुष के द्वारा।

कस्मै नम: सुरैरपि, सुतरां क्रियते दया प्रधानाय।
कस्मादुद्विजितव्यं, संसारारण्यत: सुधिया॥ 22॥

अन्वयार्थ :- **(भगवन्!)** हे भगवन्! **(सुरै: अपि)** देवों के द्वारा **(सुतरां)** निरन्तर **(कस्मै नम: क्रियते)** किसको नमस्कार किया जाता है? **(दया प्रधानाय)** दयाप्रधान पुरुष के लिए। **(सुधिया)** बुद्धिमानों को **(कस्माद् उद्विजितव्यं)** किससे डरना चाहिये? **(संसार अरण्यत:)** संसार रूपी वन से।

कस्य वशे प्राणिगणः,सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्टलाभाय॥ 23॥

अन्वयार्थ :- **(हे भगवन्!)** हे भगवन्! **(प्राणिगणः)** प्राणिगण **(कस्य वशे?)** किसके वश में रहते हैं? **(सत्यप्रियभाषिणो)** सत्यवान, प्रियभाषियों के तथा **(विनीतस्य)** विनयशील के। **(क्व स्थातव्यं?)** हमें कहाँ स्थित होना चाहिये? **(दृष्टादृष्टलाभाय)** प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभ के लिए **(न्याय्ये पथि)** न्याय मार्ग में।

विद्युत्विलसितचपलं, किं दुर्जनसंगतं युवतयश्च।
कुलशैलनिष्प्रकम्पाः, के कलिकालेऽपि सत्पुरुषः॥24॥

अन्वयार्थ :- **(हे भगवन्!)** हे भगवन्! **(विद्युत्विलसित)** बिजली की चमक के समान **(चपलं किं)** चंचल क्या है? **(दुर्जनसंगतं)** दुर्जनों की संगति **(युवतयश्च)** और युवतियों के विलास **(कुलशैल)** पर्वतों के समान **(निष्प्रकम्पाः)** निष्प्रकम्प **(के कलिकालेऽपि?)** कलिकाल में भी कौन है? **(सत्पुरुषः)** सत्पुरुष।

किं शौच्यं कार्पण्यं, सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतरवित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्॥ 25॥

अन्वयार्थ :- **(हे भगवन्!)** हे भगवन्! **(सति विभवे)** सम्पत्ति के होते हुये भी **(शौच्यं किम्)** खेद जनक क्या है? **(कार्पण्यं)** कंजूसी। **(सति विभवे)** सम्पत्ति के होते हुये भी **(प्रशस्यम् किम्?)** प्रशंसनीय क्या है? **(औदार्यम्)** उदारता (दानशीलता)। **(तनुतरवित्तस्य)** धनहीन की भी **(प्रशस्यम् किम्?)** प्रशंसनीय बात क्या है? **(तथा)** उसी प्रकार की उदारता **(प्रभविष्णोः)** बलवान का। **(प्रशस्यम् किम्)** प्रशंसनीय गुण क्या है? **(यत् सहिष्णुत्वम्)** जो सहनशीलता है।

चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो, विधूत तमसो विशेषेण॥ 26॥

अन्वयार्थ :- **(हे भगवन्!)** हे भगवन्! **(ननु इह)** इस लोक में **(चिन्तामणिः इव)** चिन्तामणि के समान **(दुर्लभम्)** दुर्लभ क्या है? **(चतुर्भद्रम्)** चार भद्र हैं। **(तद् किम्?)** वे चार कौन है? **(तमसो विशेषेण)** अज्ञान अंधकार के क्षय से **(विधूत भूयो)** पवित्रात्मा हुए वे (भगवन्) **(वदन्ति)** कहते हैं कि-

दानं प्रियवाक्सहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्यागसहितं च वित्तं, दुर्लभमेच्चतुर्भद्रम्॥ 27॥

अन्वयार्थ :- **(प्रियवाक्सहितं)** प्रियवचन सहित **(दानं)** दान, **(अगर्वंज्ञानं)** घमण्ड रहित ज्ञान, **(क्षमान्वितं शौर्यं)** क्षमासहित शूरवीरता **(त्याग सहितं च)** और दान सहित **(वित्तं)** सम्पत्ति **(एतत् चतुर्भद्रम्)** ये चार भद्र (शुभ, कल्याणकारी) **(दुर्लभम्)** अत्यंत दुर्लभ हैं।

इति कण्ठगता विमला, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि, विभान्ति विद्वत्समाजेषु॥ 28॥

अन्वयार्थ :- **(इति)** इस प्रकार **(येषाम्)** जिन पुरुषों के (यह) **(विमला)** निर्दोष **(प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)** प्रश्नोत्तर रत्नमाला **(कण्ठगता)** कण्ठ में पड़ी रहती है **(ते)** वे **(मुक्ताभरणा अपि)** आभूषण रहित (होने पर) भी **(विद्वत्समाजेषु)** विद्वानों की सभा में **(विभान्ति)** सुशोभित होते हैं।

विवेकात् त्यक्तराज्येन, राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण, सुधियां सदलंकृतिः॥ 29॥

अन्वयार्थ :- **(विवेकात्)** हेयोपादेय का ज्ञान हो जाने से **(त्यक्तराज्येन)** विरक्त से राज्य **(अमोघवर्षेण राज्ञा)** अमोघवर्ष राजा के द्वारा **(इयं रत्नमालिका)** यह जो रत्नमालिका **(रचिता)** रची गई (वह)**(सुधियां)** सज्जन पुरुषों का **(सदलंकृतिः)** सच्चा आभूषण है।

❊ ❊ ❊

भजन रचनाकार : श्रुतप्रिय श्रमण अप्रमितसागरजी महाराज

जिन–जिनवाणी जिनेन्द्र वाणी
सुन लो भैया जिनवाणी–2

1. अपने अपने अपने ना ही, क्यों राग करते हो ज्ञानी –2
वीतरागी बन जाओ ज्ञानी – 2

जिन–जिनवाणी...

2. आज अपनों ने धोखा दिया तो, कल फिर धोखा न खाना – 2
सुखी जीवन यदि बिताना – 2

जिन–जिनवाणी...

3. अपने साथ अपने न जाते, जाओ अपने में ही ज्ञानी – 2
पाओ अपने में अपने को – 2

जिन–जिनवाणी...

4. साथ निभाया जिसका तुमने, साथ कभी न जाते वो – 2
राग फिर क्यूं दिखलाते हो – 2

जिन–जिनवाणी...

5. अपनी अपनी अपनी चिंता, सबको है अपनी चिंता – 2
कर लो ज्ञानी अपनी चिंता – 2

जिन–जिनवाणी...

6. अपने से दूर ले जाने वाला, अपनापन है अपना – 2
छोड़ो अपनापन अपना – 2

जिन–जिनवाणी...

7. अपने अपने अपन ही है, जग में न कोई अपना – 2
सब जानो अपना सपना – 2

जिन–जिनवाणी...

8. अपना सुख अपनों ने छीना, अपनों ने ही दुःख दीना – 2
छोड़ो अपनों के साथ जीना – 2

जिन–जिनवाणी...

9. सच्चाई है अपने जीवन की, अपने अपना देखते – 2
देखो तुम भी अपना ज्ञानी – 2

जिन–जिनवाणी...

10. जो न समझे तुमको हे ज्ञानी, साथ उसके जीना नहीं – 2
दिल से दूर करना वहीं – 2

जिन–जिनवाणी...

11. जो भी तुमको अच्छा लगता है, दूर यदि वह हो जाये – 2
मानो अपना भाग्य बुरा है – 2

जिन–जिनवाणी...

12. माना जिसे हर पल अपना, मानो ज्ञानी उसे सपना – 2
अन्यथा पीड़ित होना होगा –

जिन–जिनवाणी...

13. दिखता अपना अपना सा जो, हो न अपना अपना तो – 2
अपने को ही अपना लेना – 2

जिन–जिनवाणी...

14. छोड़ो पर से अपनत्व अपना, वे सब तेरे पराये हैं – 2
जोड़ो अपने को अपने से – 2

जिन–जिनवाणी...

15. अपनों को अपनाके तुमने, दूर किया है अपने से – 2
दूर होना तुम अपनों से – 2

जिन–जिनवाणी...

16. अपना कहने वाले तुमको, पराये कहके जायेंगे – 2
जब आप काम न आयेंगे – 2

जिंन–जिनवाणी...

21. चंददेव-थुदी (चन्द्रदेव-स्तुति)
22. पुप्फयंतदेव-थुदी (पुष्पदंतदेव-स्तुति)
23. सीयलणाह-थुदी (शीतलनाथ-स्तुति)
24. सेयदेव-थुदी (श्रेयांसदेव-स्तुति)
25. वासुपुज्जदेव-थुदी (वासुपूज्य-स्तुति)
26. विमलदेव-थुदी (विमलदेव-स्तुति)
27. अणंतदेव-थुदी (अंनतदेव-स्तुति)
28. धम्मदेव-थुदी (धर्मदेव-स्तुति)
29. संतिदेव-थुदी (शन्तिदेव-स्तुति)
30. कुंथुदेव-थुदी (कुन्थुदेव-स्तुति)
31. अरदेव-थुदी (अरदेव-स्तुति)
32. मल्लिदेव-थुदी (मल्लिदेव-स्तुति)
33. मुणिसुव्वय-थुदी (मुनिसुव्रत-स्तुति)
34. णमिदेव-थुदी (नमिदेव-स्तुति)
35. णेमिदेव-थुदी (नेमिदेव-स्तुति)
36. पासदेव-थुदी (पार्श्वदेव-स्तुति)
37. वीरदेव-थुदी (वीरदेव-स्तुति)
38. विरागट्ठगं (विरागाष्टक)
39. विमस्स-वंदणा (विमर्श-वंदना)

❋ संस्कृत भाषा में-

40. आदिविद्या-स्तुतिः
41. हितमणिमाला
42. सद्भावना-पंचविंशतिः
43. जिनशासन-सहस्रनाम
44. सरस्वती-बृहन्नामस्तोत्रम्

45. अरिष्टनेमिनाथ–स्तोत्रम्
46. शासनालंकार–स्तोत्रम्
47. जिनबिम्ब–स्तोत्रम्
48. जिनदेवाष्टक–स्तोत्रम्
49. आदिवीर–शंकर–स्तोत्रम्
50. वर्धमान–कर्मशंकर–स्तोत्रम्
51. वृषभादि–मंगलाष्टकम्
52. समन्तभद्र–स्तोत्रम्
53. निजानन्द–स्तोत्रम्
54. स्तुत्यष्टकम्
55. नेमिनाथ–स्तोत्रम्
56. पार्श्व–स्तवनम्
57. शान्ति–स्तवनम्
58. अयि गिरि सरस्वती–स्तुतिः
59. गोम्मटेश–स्तुतिः
60. विशुद्धगुरु–स्तोत्रम्
61. सूरिकुन्थुसागर स्तुतिः

❋ अपभ्रंश भाषा में

62. वारसाणुवेक्खु (द्वादशानुप्रेक्षा)

❋ हिन्दी भाषा में –

63. गुरु–शिष्य (भाग–1)
64. गुरु–शिष्य (भाग–2)
65. गुरु–शिष्य (भाग–3)
66. गुरु–शिष्य (भाग–4)
67. अनुपमेय– माँ

68. मृत्यु
69. पथ
70. अपनी आवाज
71. अंतर्यात्रा
72. अंतर्जल्प
73. अंतर्ध्वनि
74. अंतर्मुखी
75. अंतर्मन की बातें
76. अपने लिए
77. जीवन-नीति
78. संदेश
79. ॐ इग्नोराय नमः
80. घोर इग्नोराय नमः
81. दृष्टान्त से स्वानत
82. शान्तता ठेवा
83-132 सही बातें (उड़ान, अनुभव आदि 50 भागों में)

(ii) अनुवादित रचना साहित्य-

❋ प्राकृत भाषा में -

133. इट्ठोवएस-भासं (इष्टोपदेशभाष्य-3575 श्लोक प्रमाण)
134. सरूवसंबोहण-परिसीलणं (स्वरूपसंबोधन-परिशीलन-3975 श्लोक प्रमाण)
135. समाहितंत-अणुसीलणं (समाधितंत्र-अनुशीलन-5511 श्लोक प्रमाण)
136. साणुहव-तरंगिणी (स्वानुभव-तरंगिणी-1011 श्लोक प्रमाण)
137. णियाणुहव-तरंगिणी (निजानुभव-तरंगिणी-2300 श्लोक प्रमाण)
138. अप्प-बोहो (आत्मबोध-1635 श्लोक प्रमाण)
139. रयणत्तयवड्ढिणी टीगा (रत्नत्रयवर्धिनी टीका-8656 श्लोक प्रमाण)

140. सच्चत्थबोहो (सत्यार्थबोध/कार्याधीन)
141. कम्मविवागो (कर्मविपाक/कार्याधीन)
142. णियमदेसणा (नियमदेशना/कार्याधीन)
143. बोधवाक्यामृत
144. सूक्तिसुधा
145. दिव्व-वयणं (दिव्यवचनं)
146. भव्व-वयणं (भव्यवचनं)
147. सुद्धोवओगो (शुद्धोपयोगः /कार्याधीन)

* संस्कृत भाषा में-

148. आत्मबोधः

* अपभ्रंश भाषा में-

149. अप्पबोहो
150. बोध-वाक्यामृत
151. सूक्ति-सुधा

* कन्नड़ भाषा में-

152. सरस्वती-स्तोत्रम्
153. उवसग्गहरं थोत्तं
154. गणधरवलय-स्तोत्रम्
155. श्री परमर्षिस्वस्ति-मंगल-स्तोत्रम्
156. सीयलेस-थोत्तं
157. निर्ग्रन्थ-गुरु-पूजा

* हिन्दी भाषा में-

158. झाणज्झयण-पाहुड (श्रीमत्कुंदकुंदाचार्य कृत)
159. सुभाषितार्णव (अज्ञातकृत 1300 से अधिक श्लोक प्रमाण)
160. गणधरवलय-स्तोत्र

(iii) संकलित साहित्य-

161. देशना-बिंदु
162. देशना-संचय
163. तत्त्वबोध
164. तत्त्वतरंगिणी
165. वंदना-पथ
166. पुरानी बातें (भाग-1)
167. पुरानी बातें (भाग-2)
168. आदिच्च-किरिया-सायरो (हिन्दी-प्राकृत क्रियाकोश)
169. आदिच्च-अव्वय-सायरो (हिन्दी-प्राकृत अव्ययकोश)
170. व्यसन-रहस्य
171. पुरानी बातें (भाग-3)

(iv) संपादित साहित्य में-

* भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. कुंथुसागर जी कृत)
* धर्मपरीक्षा (आ. अमितगतिस्वामी कृत)
* तच्चबोहो (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
* विसुद्धवयणामिदं (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
* सारसुत्तं (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
* बोहिसुत्तं (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
* मर्यादा (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा रचित)
* साधुवचनं (हाईकू) (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा रचित)
* विशुद्ध-निधि (श्रमण आस्तिक्यसागर जी कृत)

पूज्यवर अभी तक लगभग 35,000 श्लोक प्रमाण प्राकृत/संस्कृत/श्लोक रचना/अनुवाद कर चुके हैं। प्रायः करके लिपिबद्ध साहित्य अभी अप्रकाशित है, लगभग 20-25 कृतियाँ ही प्रकाशित हैं। हम प्रयासरत हैं कि शीघ्रातिशीघ्र समग्र साहित्य प्रकाशित होकर पाठकों को प्राप्त हो।

- समर्पण समूह, भारत

विशुद्धि जारी है
या
विशुद्धि जा रही है...

ॐ Ignoraay नमः

आदित्यवचनं/ YouTube

Muni Aditya Sagar

Muni Aditya Sagar

PDF Scanner

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे